अन्तर्यात्रा

आचार्य रजनीश

अन्तर्यात्रा

★

आचार्य श्री रजनीश

जीवन जागृति केन्द्र
५३, एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला
१४६, डॉ० डी० एन० रोड, बम्बई-१

प्रथम संस्करण १९६९
मूल्य रु० [illegible]

जीवन जागृति केन्द्र ५३, एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला, १४६, डॉ० डी० एन० रोड, बम्बई-१ द्वारा प्रकाशित तथा श्री शांतीलाल जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा मुद्रित

अन्तर्यात्रा

आजोल साधना शिविर में दिये गये
आचार्य श्री रजनीश के प्रवचन

મારા જીવનમાં મહત્વનું
પુસ્તક અંતરયાત્રા જ છે.
ઓશોનું આ પ્રથમ પુસ્તક
વાંચ્યા બાદ ઓશો નો ચાહક
બની ગયો.

दो शब्द : **किशोरीरमण टण्डन**

संकलन : **निकलंक**

दो शब्द

किशोरावस्था की एक घटना याद आती है। पिताजी के एक मित्र चंदू भाई आए हुए थे—बड़े ही मननशील साधक थे। हम सब उन्हें संतों जैसा आदर देते थे। शायद दूसरे लोग नहीं; क्योंकि वह गृहस्थ थे, गेरुए वस्त्र धारण नहीं करते थे। उनके लिए चाय लाते समय मेरे हाथ से एकाएक प्याला छूटकर फर्श पर गिरा और चूर-चूर हो गया। चंदू भाई ने सहज भाव से मुसकाते हुए कहा—"कोई बात नहीं। संतुलन बिगड़ जाने से योग भंग हो गया होगा।" और मुझे ऐसा लगा जैसे जीवन में एक सूत्र हाथ लग गया हो—यद्यपि पूर्णसूत्र नहीं, क्योंकि उसे पूर्णरूप से ग्रहण करने की परिपक्व बुद्धि मुझ में नहीं थी तब। और जब कुछ समझने की उम्र हुई उस समय तक चंदू भाई दिवंगत हो चुके थे।

फिर एक और घटना घटी: जोधपुर में मेरे घर के निकट ही एक विधवा ग्वालिन रहती थी—जमनाबाई। ढलती उम्र, श्वेत केश, फिर भी चेहरा एक अद्‌भुत शांतिमय कांति से देदीप्यमान। केवल एक भैंस थी उसके पास। उसी का दूध-घी बेच कर गुजारा करती। अक्षर ज्ञान से बिल्कुल कोरी। पिता जी का कहना था कि वेदांत को सही अर्थों में समझने और तदनुरूप जीवन को ढालने की बात किसी को सीखनी है तो जमनाबाई से सीखे।

एक दिन जमनाबाई तालाब से अपनी भैंस को नहला-धुलाकर

एक हाथ में उसकी रस्सी थामे, दूसरे हाथ से कमर पर रख एक कलसे को संभाले और सिर पर एक के ऊपर एक, तीन छोटे-बड़े घड़ों को उठाए घर लौट रही थी कि सामने से राम बाबा (जो हर समय जोर जोर से "राम-राम-राम" बोलते रहते थे) आते दिखाई दिए। जमनाबाई ने गर्दन को थोड़ा झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। रामबाबा कहने लगे, "जमनाबाई, तेरी जिंदगी बस भैंस की चाकरी में ही बीत जाएगी। कुछ परलोक का भी ध्यान कर। तू मेरी तरह राम नाम का जाप क्यों नहीं करती ?" और जमनाबाई ने जो उत्तर दिया उसे सुनकर मैं दंग रह गया। उसने कहा, "राम बाबा, देख रहे हैं न, मेरे सिर पर पानी से भरे तीन घड़े हैं। फिर भी आपको प्रणाम करते वक्त मेरा पूरा ध्यान अपने घड़ों पर था कि कहीं वे डगमगा न जाएं। ऐसे ही मैं तो गृहस्थी के काम में सारे दिन जुटी रहती हूं लेकिन मेरी 'सुरत' तो 'ऊपर वाले' से लगी रहती है।" और मुझे लगा कि जो सूत्र चाय का प्याला टूटने पर खंडित रूप में हाथ लगा था उसका कुछ भाग और हाथ लग गया।

बाद में गाँधी जी की प्रेरणा से सीरिया के महान् कवि एवं दार्शनिक खलील जिब्रान की प्रसिद्ध कृति "दि प्राफेट" का हिन्दी अनुवाद कर रहा था। "प्रेम और श्रम" परिच्छेद का अनुवाद करते वक्त प्रतीत हुआ जैसे सूत्र कुछ और बढ़ा। जिब्रान ने लिखा है—

"यदि तुम हृदय के सम्पूर्ण प्रेम और एकाग्रता से भोजन बनाने में असमर्थ हो, तो वह भोजन, खाने वाले की मुश्किल से आधी भूख मिटा पावेगा। और भले ही तुम्हारा कण्ठ गंधर्वों जैसा क्यों न हो, किन्तु यदि तुम्हारे गायन में तुम्हारा सम्पूर्ण प्रेम और एकाग्रता नहीं है, तो तुम्हारा गायन सुनने वालों के कान बहरे किए बगैर नहीं रहेगा।

तभी से सूत्र को पूरा करने की एक लालसा, एक छटपटाहट घर कर गयी। लेकिन छूटे हुए अंश को पाने का कोई उपाय, कोई अवसर नहीं मिला।

३० वर्ष बीत गए !

संयोग से एक दिन अपने प्रिय मित्र महीपाल जी के पास बैठा हुआ था। बातों-बातों में उन्होंने आचार्य रजनीश का जिक्र करते हुए उनका कुछ साहित्य और ज्योति-शिखा (त्रैमासिक) के कुछ अंक पढ़ने को दिए। पढ़कर ऐसा लगा जैसे एकाएक एक नई प्रकाश किरण मिल गई हो, एक नया द्वार खुल गया हो। लगा कि जिस अधूरे सूत्र की पूर्णता की खोज थी इतने वर्षों से, संभव है कि अब उसकी पूर्ति हो जाए।

हुआ भी यही। प्रस्तुत पुस्तक 'अंतर्यात्रा' के प्रारंभिक परिच्छेद में ही वह सूत्र पूरा हाथ लग गया:

"जो वीणा का नियम है, वही जीवन वीणा का भी नियम है। जीवन के तार बहुत ढीले हों, तो भी संगीत पैदा नहीं होता और बहुत कसे हों, तो भी संगीत पैदा नहीं होता। और जो जीवन का संगीत पैदा करने चलता है, वह पहले देख लेता है कि तार बहुत कसे तो नहीं हैं, तार बहुत ढीले तो नहीं हैं......।" फिर आचार्य रजनीश स्वयं ही प्रश्न प्रस्तुत करते हैं—"वह जीवन वीणा है कहां?" और स्वयं ही उत्तर देते हैं—"मनुष्य के शरीर के अतिरिक्त और कोई जीवन वीणा नहीं है। मनुष्य के शरीर में तार हैं, जो न तो बहुत कसे होने चाहिएं और न बहुत ढीले। उस संतुलन में ही मनुष्य संगीत के जगत में प्रविष्ट होता है। उस संगीत को जानना ही आत्मा को जानना है। जब एक व्यक्ति अपने भीतर के संगीत को जान लेता है तो वह आत्मा को जान लेता है और जब वह समस्त के भीतर छिपे संगीत को जान लेता है, तो वह परमात्मा को जान लेता है।"

आचार्य रजनीश का यह सूत्र गणित के उस स्वयं सिद्ध गुर की तरह लगा जिसे कहीं भी सही ढंग से प्रस्थापित करने पर गणित के पेचीदे से पेचीदे प्रश्न का सही-सही उत्तर मिल जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक "अंतर्यात्रा" का प्रत्येक परिच्छेद एक के बाद एक नया द्वार खोलता चला जाता है और हम अपने भीतर....और भीतर .....और भीतर प्रवेश करते चले जाते हैं। यह यात्रा शुरू होती है 'अहम्' की खोज से, "मैं" की खोज से और पूरी होती है प्रेम की उपलब्धि पर, परमात्मा की उपलब्धि पर। जो व्यक्ति इस खोज में निकलता है, वह मैं को तो नहीं पाता, परमात्मा को पा लेता है। बूंद मिटे, तो ही सागर हो सकती है। 'स्व' मिटे तो ही 'सर्व' हो सकता है। यह सर्व ही तो ईश्वर है।

यदि बात यहीं समाप्त हो जाती, तो शायद पुनरावृत्ति बनकर रह जाती क्योंकि अनेक धर्मग्रन्थों और धर्मगुरुओं ने भी थोड़े हेर-फेर के साथ यही कहा है। किंतु आचार्य रजनीश उससे भी आगे कहते हैं, जो औरों ने कहने का साहस नहीं किया। किसी ने उनसे प्रश्न किया—'क्या आप ईश्वर में विश्वास करते हैं?' और उन्होंने उत्तर दिया :

'नहीं'। क्योंकि मैं विश्वास पर ही विश्वास नहीं करता हूं। नहीं—इसलिए भी कि ईश्वर विश्वास की वस्तु नहीं है।

वह जाना जा सकता है। और विश्वास है अज्ञात। वह है न जानने में जानने जैसा भाव।

जो है उसकी समग्रता को ही मैं ईश्वर कहता हूं। इसलिए ईश्वर है, ऐसा कहना भी पुनरुक्ति है।

"जो है' वही ईश्वर है। और समग्र को जानने के लिए 'स्व यं' का मिटना आवश्यक है।

स्वानुभव बिना यह बात इतनी दृढ़ता, इतनी बुलंदी और इतने आत्मविश्वास के साथ नहीं कही जा सकती।

आज हम सभ्यता के जिस 'ऐटमी युग' में जी रहे हैं, वह युग अब एक बड़ा प्रश्न चिन्ह बनकर हमारे सामने खड़ा हो गया है। आखिर विज्ञान की इस बेपनाह प्रगति का अंत कहाँ है? मानव द्वारा प्रकृति को दी जाने वाली निरंतर चुनौती आखिर हमें कहाँ ले जा कर दम लेगी? मान लो हम चाँद पर पहुंच भी गए..... फिर.....? राधाकृष्णन्—महान दार्शनिक एवं चिंतक---के शब्दों में----"आज का मानव भौतिकता की दृष्टि से दानव और आध्यात्मिकता की दृष्टि से बौना होता जा रहा है।"

आचार्य रजनीश भौतिक और आध्यात्मिक दोनों फिलासफियों से जीवनोपयोगी तत्त्वों को लेकर जड़-चेतन संबंधी एकाँगी और अतिरेक-वादी दृष्टिकोण का परित्याग कर व्यापक सक्रिय सामंजस्य के धरातल पर नवीन लोक-जीवन के रूप में भरे-पूरे मनुष्य अथवा मानवता का निर्माण करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जो इस युग की सर्वोपरि आवश्यकता है।

कविवर श्री सुमित्रानंदन पंत की काव्यकृति "चिदंबरा" की "आत्मिका" कविता के अनुसार—

सत्य तथ्य विज्ञान ज्ञान
दो पक्ष, एक बहु के द्योतक नित,
लोक श्रेय जीवन उद्भव हित
रहे विषम सम चरण समन्वित :

मेरी धारणा के अनुसार आचार्य रजनीश का व्यक्तित्व एक मौलिक वैचारिक क्रान्ति द्वारा उपनिषद के ऋषि के रूप में सृष्टि रहस्य को उद्घाटित करने की चेष्टा कर रहा है, सुकरात के रूप में बड़े-बड़े जनसमूहों को विवेक से काम लेने की शिक्षा दे रहा

है, कन्फ्यूशियस के रूप में सफल जीवन के सिद्धान्त प्रतिष्ठित कर रहा है और लाओत्से की तरह सारी कृत्रिमता त्याग कर स्वरूप में लौट आने की सलाह दे रहा है।

—किशोरी रमण टण्डन

'पराग' सम्पादकीय,
टाइम्स आफ इण्डिया,
बम्बई–१

प्रथम प्रवचन : उद्घाटन

साधना की पहली सीढ़ी : शरीर

साधना शिविर की इस पहली बैठक में साधक के लिए जो पहला चरण है उस सम्बन्ध में मैं आपसे बात करना चाहूंगा। साधक के लिए पहली सीढी क्या है ? विचारक के लिए सीढ़ियां अलग होती हैं, प्रेमी के लिए सीढ़ियां अलग होती हैं। साधक के लिए अलग ही यात्रा करनी होती है। साधक के लिए पहली सीढ़ी क्या है ?

साधक के लिए पहली सीढ़ी शरीर है। लेकिन शरीर के सम्बन्ध में न तो कोई ध्यान है, न शरीर के सम्बन्ध में कोई विचार है। और थोड़े समय से नहीं, हजारों वर्षों से शरीर उपेक्षित है। यह उपेक्षा दो प्रकार की है। एक तो उन लोगों ने शरीर की उपेक्षा की जिन्हें हम भोगी कहते हैं। जो जीवन में खाने, पीने और कपड़े पहनने के अतिरिक्त और किसी अनुभव को नहीं जानते। उन्होंने शरीर की उपेक्षा की है, शरीर का अपव्यय किया है, शरीर को व्यर्थ किया है, शरीर की वीणा को खराब किया है। और वीणा खराब हो जाये तो उससे संगीत पैदा नहीं हो सकता। यद्यपि संगीत वीणा से बिल्कुल भिन्न बात है। संगीत बात ही और है, वीणा बात ही और है। लेकिन वीणा के बिना संगीत पैदा नहीं हो सकता है। जिन लोगों ने शरीर को भोग की दिशा से व्यर्थ किया है वे एक तरह के लोग हैं, और दूसरी तरह के वे लोग हैं जिन्होंने योग की और त्याग की दिशा में शरीर के साथ अनाचार किया है। शरीर को कष्ट दिया है, शरीर का दमन भी किया है, शरीर के साथ शत्रुता भी की है। न तो शरीर को भोगने वालों ने शरीर की अर्थवत्ता को समझा है और न शरीर को कष्ट देने वाले तपस्वियों ने शरीर की अर्थवत्ता को समझा है।

शरीर की वीणा पर दो तरह के अनाचार और अत्याचार हुए हैं। एक भोगी की तरफ से, दूसरा योगी की तरफ से। और इन

दोनों ने ही शरीर को नुकसान पहुंचाया है। पश्चिम में एक तरह से शरीर को नुकसान पहुंचाया गया है, पूर्व में दूसरी तरह से। लेकिन नुकसान पहुंचाने में हम सब एक साथ सहभागी हैं। वेश्यागृहों में जाने वाले लोग और मधुशालाओं में जाने वाले लोग शरीर को एक तरह का नुकसान पहुंचाते हैं। धूप में नग्न खड़े रहने वाले लोग और जंगल की तरफ भागने वाले लोग शरीर को दूसरी तरह से नुकसान पहुंचाते हैं। और वे कोई भी नहीं समझते कि शरीर की वीणा से ही जीवन का संगीत उत्पन्न हो सकता है। यद्यपि जीवन का संगीत शरीर से बिल्कुल अलग बात है, बिल्कुल भिन्न और दूसरी बात है, लेकिन शरीर की वीणा के अतिरिक्त और किसी माध्यम से उसकी कोई उपलब्धि संभव नहीं है। इस तरफ अबतक कोई ध्यान ठीक से नहीं दिया गया है।

पहली बात है शरीर और शरीर की तरफ साधक का सम्यक् ध्यान क्योंकि शरीर के ही किन्हीं केन्द्रों पर आत्मा का सम्पर्क है और उसी से जीवन है। शरीर के किन्हीं केन्द्रों से आत्मा निकटतम रूप से संबंधित है वहीं से जीवन की धारा शरीर में प्रवाहित होती है। आत्मा और शरीर के संपर्क के जो केन्द्र हैं, जो स्थल हैं उनका जिस साधक को कोई ख्याल नहीं है वह कभी भी आत्मा को उपलब्ध नहीं हो सकता है। अगर मैं आप से पूछूं कि आप के शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र और स्थल क्या हैं, तो शायद आप अपने सिर की तरफ हाथ उठायें। मनुष्य की गलत शिक्षा ने मनुष्य के शरीर में केवल सिर को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। सिर मनुष्य की जीवन धारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र नहीं है। मस्तिष्क मनुष्य की जीवन धारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र नहीं है। जैसे हम किसी पौधे के पास जायें और पूछें कि पौधे में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और जीवन्त क्या है, तो ऊपर ही फूल दिखाई पड़ जायेंगे और कोई भी कह देगा कि ये फूल ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। फूल सर्वाधिक महत्वपूर्ण दिखाई पड़ते हैं, लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण फूल नहीं हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे जड़ें हैं जो दिखाई नहीं पड़तीं।

मस्तिष्क मनुष्य के पौधे पर लगा हुआ फूल है। वह मनुष्य के शरीर की जड़ नहीं है। फूल सबसे बाद में आते हैं और अंतिम होते हैं। जड़ें सबसे प्रथम होती हैं और अगर जड़ें भूल जायें तो फूल कुम्हला जायेंगे। फूलों का अपना कोई जीवन नहीं होता। और अगर जड़ें संभाल ली जायें तो फूल अपने आप संभल जाते हैं, उन्हें संभालने के लिए अलग से कोई आयोजन नहीं करना होता है। लेकिन पौधे को देखने पर ऐसा लगेगा कि फूल सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। ऐसे ही मनुष्य में भी लगता है कि मस्तिष्क सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मस्तिष्क अंतिम बात है मनुष्य के शरीर में। वह मनुष्य के शरीर की जड़ (Roots) नहीं है।

माओत्से तुंग ने अपने बचपन का एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि मैं छोटा था, मेरी मां के झोपड़े के पास एक बड़ी सुन्दर बगिया थी। वह बगिया इतनी सुन्दर थी, उसमें इतने सुन्दर फूल आते थे कि दूर दूर से लोग उसे देखने आते थे। फिर मेरी मां बूढ़ी हो गई और बीमार पड़ी। न तो वह अपनी बीमारी से चिन्तित थी, न अपने बुढ़ापे से। उस की चिन्ता एक ही थी कि उसकी बगिया का क्या होगा। माओ छोटा था। उसने अपनी मां को कहा कि तू बेफिक्र रह मैं तेरी बगिया की फिक्र कर लूंगा। और माओ सुबह से सांझ तक बगिया की फिक्र करता रहा। एक महीने बाद उसकी मां ठीक हुई, तो जैसे ही वह थोड़ी चल सकी, उठकर बगिया में आ गई और देखकर घबरा गई। पौधे सब सूख गये थे। फूल सब कुम्हलाकर गिर गए थे। वह बहुत हैरान हुई। उसने माओ को कहा कि पागल तू तो सुबह से सांझ तक बगिया में रहता था। तुमने क्या किया? यह सब फूल तो नष्ट हो गये। यह बगिया तो कुम्हला गई। सब पौधे तो मरने के करीब आ गये। तू करता क्या था? माओ रोने लगा। वह खुद भी परेशान था। वह रोज दिन भर मेहनत करता था, लेकिन न मालूम क्या बात थी कि बगिया सूखती गई। वह रोने लगा और कहा कि मैंने तो बहुत फिक्र

की। मैं तो एक एक फूल को चूमता था और प्रेम करता था। एक एक पत्ते को झाड़ता था, धूल पोंछता था, लेकिन पता नहीं क्या हुआ। मैं फिक्र भी करता था लेकिन फूल कुम्हलाते गए, पत्ते सूखते गये और बगिया धीरे धीरे मुरझाती गई। उसकी मां हंसने लगी और उसने कहा "तू पागल है। तुझे अभी पता नहीं कि फूलों के प्राण फूलों में नहीं होते और न पत्तों के प्राण पत्तों में होते हैं।"

पौधे के प्राण वहां होते हैं, जहां किसी को दिखाई ही नहीं पड़ता। वे उन जड़ों में ही होते हैं, जो जमीन के नीचे छिपी होती हैं और उन जड़ों की अगर कोई फिक्र न करे तो फूल और पत्ते नहीं संभाले जा सकते वे कितने ही चूमे जायें, कितना ही उनको प्रेम किया जाये, कितनी ही उनकी धूल झाड़ी जाये, पौधे कुम्हला ही जायेंगे। लेकिन फूलों की कोई बिल्कुल भी फिक्र न करे और जड़ों को संभाल ले, तो फूल अपने आप संभल जाते हैं। जड़ों में से फूल आते हैं, फूलों में से जड़ें नहीं आती हैं। लेकिन अगर हम किसी आदमी से पूछें कि मनुष्य के शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा क्या है तो अनजाने ही उसका हाथ सिर की तरफ उठेगा और वह कहेगा कि सिर सब से ज्यादा महत्वपूर्ण है या अगर वह स्त्री है तो हो सकता है हाथ हृदय की तरफ उठ जाये और वह कहे, "हृदय सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।"

हृदय भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं है और मस्तिष्क भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं है। पुरुषों ने सारा बल मस्तिष्क पर दिया है और स्त्रियों ने सारा बल हृदय पर दिया है। लेकिन वे दोनों ही बिन्दु शरीर में महत्वपूर्ण बिन्दु नहीं हैं। ये दोनों ही बिन्दु बाद के विकास हैं। मनुष्य की जड़ें इनमें नहीं हैं। मनुष्य की जड़ों से मेरा क्या मतलब है? जैसे पौधे की जड़ें होती हैं पृथ्वी में, उन्हीं जड़ों से वह जीवन और रस खींचता है, उसी से जीवित रहता है। ऐसे ही मनुष्य के शरीर में किसी बिन्दु पर वे जड़ें हैं जो आत्मा से जीवन और रस खींचती हैं और जिनके कारण शरीर जीवित होता है। जिस दिन वे जड़ें

शिथिल हो जाती हैं, शरीर समाप्त हो जाता है। भूमि में पौधे की जड़ें हैं। मनुष्य के शरीर की जड़ें आत्मा में प्रविष्ट हैं। लेकिन मस्तिष्क नहीं है वह जगह और न ही हृदय वह जगह है जहां से मनुष्य प्राणों से जुड़ता है और अगर हमें उन जड़ों का कोई पता न हो तो हम कभी भी साधना के जगत में प्रविष्ट नहीं हो सकते।

कहां हैं फिर मनुष्य की जड़ें? शायद आपके ख्याल में ही नहीं है। कुछ सीधी और सरल सी बातें भी अगर हजारों साल तक ध्यान से भूली रहें तो विस्मृत हो जाती हैं। मां के पेट में बच्चा पैदा होता है, बड़ा होता है, तो मां से वह किस जगह से जुड़ा होता है? मस्तिष्क से, या हृदय से? नहीं, वह नाभि (Navel Centre) से जुड़ा होता है। जीवन की धारा उसे नाभि में उपलब्ध होती है। हृदय भी बाद में विकसित होता है, मस्तिष्क भी बाद में विकसित होता है। मां की जीवन-धारा उसे नाभि से उपलब्ध होती है। मां के शरीर में बच्चे की जड़ें नाभि से फैली होती हैं। न केवल मां के शरीर में उसकी जड़ें नाभि से फैली होती हैं, बल्कि स्वयं के प्राणों में भी उसकी जड़ें नाभि से फैली होती हैं। मनुष्य के शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु नाभि है। उसके बाद हृदय विकसित होता है उसके बाद मस्तिष्क विकसित होता है। ये बाद की फैली हुई टहनियां हैं। इन पर फूल भी लगते हैं। मस्तिष्क पर ज्ञान के फूल लगते हैं। हृदय पर प्रेम के फूल लगते हैं। ये फूल ही हमें भुला लेते हैं और हमको लगता है कि यही फूल सब कुछ हैं, जबकि मनुष्य के शरीर की और प्राणों की जड़ें नाभि में होती हैं। वहां कोई फूल नहीं लगते। वह बिल्कुल अदृश्य है, वह दिखाई नहीं पड़ता। पिछले पांच हजार वर्षों में मनुष्य के जीवन में जो विकृति आयी है, वह इसी बात से आयी है कि हमने सारा बल या तो मस्तिष्क पर दिया है या हृदय पर दिया है। हृदय पर भी बहुत कम बल दिया है। अधिक बल तो मस्तिष्क पर ही दिया है। बचपन से ही सारी शिक्षा मस्तिष्क की

शिक्षा है। नाभि की तो दुनियां के किसी कोने में कोइ शिक्षा नहीं है। सारी शिक्षा मस्तिष्क की शिक्षा है। मस्तिष्क तो बड़ा होता चला जाता है और जड़ें छोटी होती चली जाती हैं। मस्तिष्क के फूल की तो फिक्र करते हैं हम और जड़ें हमारी विलीन होती चली जाती हैं। फिर जीवन की धारा क्षीण बहने लगती है और आत्मा से हमारे सम्पर्क शिथिल हो जाते हैं। धीरे-धीरे तो अब हम उस जगह आ गये हैं कि आदमी यह भी कहने लगा है कि आत्मा, कौन कहता है कि आत्मा है? कौन कहता है कि परमात्मा है? हमें तो कुछ पता नहीं चलता है! पता नहीं चलेगा। पता नहीं चल सकता है, क्योंकि कोई आदमी अगर वृक्ष के पूरे शरीर पर ढूंढ़ ले और कहे कहां हैं जड़ें, हमें तो कुछ पता नहीं चलता है तो ठीक ही कह रहा है। वृक्ष के ऊपर कहीं कोई जड़ें नहीं हैं। जड़ें जहां हैं वहां तक हमारी पहुंच बन्द हो गई है। वहां तक हमारा ख्याल जाना बन्द हो गया है। और बचपन से ही चूंकि मस्तिष्क का ही सारा प्रशिक्षण है, सारा शिक्षण है तो हमारा सारा ध्यान (Attention) मस्तिष्क में ही उलझकर समाप्त हो जाता है। जीवन भर हम मस्तिष्क के आसपास ही घूमते रहते हैं। उससे नीचे हमारा ध्यान प्रवेश ही नहीं करता।

साधक की यात्रा नीचे की तरफ है, जड़ों की तरफ है। मस्तिष्क से उतरना है हृदय तक और हृदय से उतरना है नाभि तक और नाभि के बाद ही कोई आत्मा में प्रवेश पा सकता है। उसके पहले कभी नहीं पा सकता। आमतौर पर हमारे जीवन की गति नाभि से मस्तिष्क की तरफ है। साधक की गति बिल्कुल उल्टी होगी। मस्तिष्क से नाभि की तरफ उसे नीचे उतरना है। इन तीन दिनों में मैं आपसे क्रमशः बात कहूंगा कि मस्तिष्क से हृदय तक कैसे उतरें और हृदय से नाभि तक कैसे उतरें और फिर नाभि से आत्मा तक प्रवेश कैसे हो सकता है। आज तो सिर्फ शरीर के सम्बन्ध में ही कुछ बातें कहनी जरूरी हैं।

पहली बात तो यही ध्यान में लेने की आवश्यकता है कि

मनुष्य के प्राणों का केन्द्र नाभि है। वहीं से बच्चा जीवन पाना शुरू करता है, वहीं से उसके सारे जीवन की शाखाएं, प्रशाखाएं फैलनी शुरू होती हैं, वहीं से उसे ऊर्जा मिलती है, वहीं से शक्ति मिलती है। लेकिन उस ऊर्जा के केन्द्र पर हमारा ध्यान नहीं है, जरा भी नहीं है और उस ऊर्जा के केन्द्र को, उस शक्ति के केन्द्र को जानने की जो भी व्यवस्था है उस पर भी हमारी कोई दृष्टि नहीं है। बिल्कुल उसे भूल जाने की जो व्यवस्था है उस पर ही हमारी पूरी दृष्टि है और पूरी शिक्षा है। इसीलिए पूरी शिक्षा गलत हो गई है। सारी शिक्षा मनुष्य को धीरे धीरे पागलपन की तरफ ले जा रही है। अकेला मस्तिष्क केवल पागलपन की तरफ ही ले जा सकता है। क्या आप को पता है कि जो मुल्क जितना ज्यादा शिक्षित हो गया है उतनी ही वहां पागलों की संख्या बढ़ गई है। अमेरिका में आज पागलों की संख्या सर्वाधिक है। यह गौरव की बात है। यह इस बात का सबूत है कि अमेरिका सबसे ज्यादा शिक्षित है, सब से ज्यादा सभ्य है। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सौ वर्षों तक यही व्यवस्था चली, तो अमेरिका में ठीक आदमी खोजना मुश्किल हो जाएगा। आज भी प्रत्येक चार आदमियों में तीन आदमियों के मस्तिष्क डांवाडोल स्थिति में हैं। सिर्फ अमेरिका में ही तीस लाख लोग रोज अपनी मानसिक चिकित्सा के लिए डाक्टर से सलाह ले रहे हैं। धीरे धीरे शरीर के डाक्टर कम और मन के डाक्टर अमेरिका में बढ़ते जाते हैं। क्योंकि शरीर के डाक्टर ही यह कहते हैं कि आदमी की ८० प्रतिशत बीमारियां मन की हैं, शरीर की नहीं हैं। और जैसे जैसे समझ बढ़ती है यह प्रतिशत बढ़ता जाता है। पहले वे कहते थे चालीस प्रतिशत, फिर वे कहने लगे पचास प्रतिशत, अब वे कहते हैं ८० प्रतिशत बीमारी मन की हैं, शरीर की नहीं। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि २०-२५ साल के बाद वे कहेंगे ९९ प्रतिशत बीमारियां मन की हैं, शरीर की नहीं। यह उनको कहना पड़ेगा, क्योंकि मनुष्य के मस्तिष्क

पर ही सारा बल दिया जा रहा है। मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया है। आपको अन्दाजा नहीं है कि मस्तिष्क बड़ी महीन, बहुत बारीक, बहुत नाज़ुक (Delicate) चीज है। आदमी का मस्तिष्क दुनिया की सबसे ज्यादा नाज़ुक मशीन है। उस मशीन पर इतना भार दिया जा रहा है कि यही आश्चर्य है कि वह बिल्कुल टूट के पागल क्यों नहीं हो जाती। सारा भार मस्तिष्क पर है और मस्तिष्क कितना नाज़ुक है इसकी हमें कोई कल्पना नहीं है। एक आदमी की छोटी-सी खोपड़ी में कितने पतले स्नायु हैं, जिनपर सारा बोझ पड़ता है, चिन्ता पड़ती है, सारा दुःख पड़ता है, सारा ज्ञान पड़ता है, सारी शिक्षा पड़ती है, सारा जीवन का भार पड़ता है। वह नाज़ुक कितना है इसका हमें कोई अन्दाज ही नहीं है। शायद आपको ख्याल भी न हो, एक छोटे से सिर के भीतर कोई सात करोड़ तन्तु हैं। उनकी संख्या ही आप को बता सकती है कि वे कितने छोटे होंगे। बहुत नाज़ुक हैं। उससे ज्यादा नाज़ुक कोई यंत्र नहीं है। उससे नाज़ुक कोई पौधा नहीं है। यह इससे ही ख्याल में आ सकता है कि मनुष्य के छोटे से सिर के भीतर सात करोड़ स्नायु हैं। ये स्नायु इतने हैं कि अगर एक आदमी के सिर के स्नायुओं को एक के बाद एक फैलाया जाये तो पूरी पृथ्वी की परिक्रमा एक आदमी के मस्तिष्क के स्नायु ले लेंगे। इस छोटे से सिर के भीतर इतनी बारीक व्यवस्था है, इतनी नाज़ुक व्यवस्था है। इस नाज़ुक मस्तिष्क पर ही पिछले पाँच हजार वर्षों में सबसे ज्यादा जोर दिया गया है। उसका परिणाम होना स्वाभाविक था। उसका परिणाम यह हुआ कि ये तन्तु टूटने शुरू हो गये, ये तन्तु विक्षिप्त होने शुरू हो गये, ये तन्तु पागल होने शुरू हो गये।

विचार का अति भार मनुष्य को पागलपन के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं ले जा सकता। सारी जीवनधारा ही मस्तिष्क के आसपास घूमने लगी है। यह जो मस्तिष्क के आसपास घूमती हुई जीवनधारा है, साधक को इसी जीवनधारा को, गहरे और नीचे, केन्द्र

की तरफ उतरना है। वापस लौटाना है। ये से वापस लौट सकेगी इस का पहला सूत्र शरीर के सम्बन्ध में हमें समझ लेना है। अभी तक शरीर को या तो भोगने की दृष्टि से देखा जाता है या त्यागने की दृष्टि से देखा जाता है। शरीर को साधना का एक मार्ग परमात्मा का एक मन्दिर और जीवन के केन्द्र को खोज लेने की एक सीढ़ी की तरह नहीं देखा जाता है। ये दोनों ही बातें भूल भरी हैं। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है और जो भी उपलब्ध करने जैसा है उस सबका मार्ग शरीर के भीतर और शरीर से होकर ही जाता है। शरीर की स्वीकृति एक मन्दिर की भांति है, एक मार्ग की भांति है। जब तक यह सूत्र मन में न हो तब तक या तो शरीर के हम भोगी होते हैं या शरीर के हम त्यागी होते हैं और दोनों ही स्थितियों में शरीर के प्रति हमारी भाव दशा सम्यक्, ठीक और संतुलित नहीं होती।

बुद्ध के पास एक युवक दीक्षित हुआ था। वह युवक राजकुमार था। उसने जीवन के सब तरह के भोग देखे थे। भोग में ही वह जिया था। फिर वह संन्यासी हो गया। बुद्ध के भिक्षुक बहुत आश्चर्य से भर गए। उन्होंने कहा यह व्यक्ति संन्यासी कैसे हो गया। यह कभी राजमहल के बाहर नहीं निकला, यह कभी रथ के नीचे नहीं चला, यह जिन रास्तों पर चलता था वहां मखमली कालीन बिछा दिये जाते थे। यह भिखारी होगा इसकी कल्पना भी न थी। यह इसको क्या पागलपन सूझा है। बुद्ध ने कहा—"आदमी का मन हमेशा अति पर डोलता है। एक अति से दूसरी अति पर चलता है, लेकिन मध्य में कभी भी नहीं खड़ा होता। जैसे घड़ी का पेंडुलम इस कोने से उस कोने तक चलता है, लेकिन बीच में कभी भी नहीं ठहरता है, ऐसे ही मनुष्य का मन एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अब तक यह शरीर भोग की अति पर जिया। अब यह शरीर त्याग की अति पर जियेगा।" और यही हुआ। वह राजकुमार जो कभी बहुमूल्य कालीनों के नीचे नहीं चला था जब और भिक्षुओं के साथ रास्ते पर चलता तो सारे भिक्षु राजपथ

पर चलते, वह पगडण्डियों पर चलता जिन पर कांटे होते । जब सारे भिक्षु वृक्षों की छाया में बैठते तब वह धूप में खड़ा होता । सारे भिक्षु दिन में एक बार भोजन लेते, वह दिन भर उपवास रखता । छः महीने में उसने शरीर को सुखाकर कांटा बना लिया । उसकी सुन्दर देह काली पड़ गयी । उसके पैर में घाव पड़ गये ।

छह महीने बाद बुद्ध उसके पास गये और उससे कहा, "श्रोण ! एक बात मुझे पूछनी है । मैंने सुना है कि जब तू राजकुमार था, तो तू वीणा बजाने में बहुत कुशल था । क्या यह सच है ?" उस भिक्षु ने कहा, "हां, लोग कहते थे, मुझ जैसी वीणा बजाने वाला और कोई भी नहीं ।" तो बुद्ध ने कहा, "फिर मैं एक प्रश्न पूछने आया हूं, हो सकता है तू उत्तर दे सके । मैं पूछता हूं कि वीणा के तार अगर बहुत ढ़ीले हों तो संगीत पैदा होता है या नहीं ?" श्रोण हंसने लगा । उसने कहा 'कैसी बात पूछते हैं! यह तो बच्चे भी जानते हैं कि वीणा के तार बहुत ढ़ीले होंगे तो उसमें संगीत पैदा नहीं होगा क्योंकि ढ़ीले तारों पर टंकार पैदा नहीं हो सकती, चोट नहीं की जा सकती । ढ़ीले तार खींचे नहीं जा सकते, उनसे ध्वनि तरंगें पैदा नहीं हो सकतीं । ढ़ीले तारों से कोई संगीत पैदा नहीं हो सकता ।" तो बुद्ध ने कहा, "और तार अगर बहुत कसे हों तो ?" श्रोण ने कहा, "बहुत कसे तारों से भी संगीत पैदा नहीं होता । क्योंकि बहुत कसे तार छूते ही टूट जाते हैं ।" तो बुद्ध ने कहा "संगीत कब पैदा होता है ?" वह श्रोण कहने लगा, संगीत तो तब पैदा होता है जब तार ऐसी दशा में होते हैं जब न तो हम कह सकते हैं कि वे बहुत कसे हैं, और न कह सकते हैं कि बहुत ढ़ीले हैं । तारों की एक ऐसी अवस्था भी है जब न तो वे ढ़ीले होते हैं और न कसे होते हैं । एक बीच का बिन्दु भी है, एक मध्य बिन्दु भी है । संगीत तो वहीं पैदा होता है और कुशल संगीतज्ञ इसके पहले कि गीत उठाये तारों को देख लेते हैं कि तार ढ़ीले तो नहीं हैं, तार कसे तो नहीं हैं ।" तो बुद्ध ने कहा, "बस, उत्तर मुझे मिल

गया और यही मैं तुझसे कहने आया हूं । जैसे तू वीणा बजाने में कुशल था, ऐसे ही जीवन की वीणा बजाने में मैंने भी कुशलता पायी है और जो वीणा का नियम है वही जीवन वीणा का भी नियम है । जीवन के तार बहुत ढ़ीले हों तो भी संगीत पैदा नहीं होता और बहुत कसे हों तो भी संगीत पैदा नहीं होता है और जीवन का संगीत पैदा करने जो चलता है वह पहले देख लेता है कि तार बहुत कसे तो नहीं हैं, तार बहुत ढीले तो नहीं हैं ।" वह जीवन वीणा है कहां?

मनुष्य के शरीर के अतिरिक्त और कोई जीवन वीणा नहीं है । मनुष्य के शरीर में कुछ तार हैं जो न तो बहुत कसे होने चाहिएँ और न बहुत ढीले होने चाहिएँ । उस संतुलन (Balance) में ही मनुष्य संगीत के जगत में प्रविष्ट होता है । उस संगीत को जानना ही आत्मा को जानना है । जब एक व्यक्ति अपने भीतर के संगीत को जान लेता है, तो वह आत्मा को जान लेता है और जब वह समस्त के भीतर छिपे संगीत को जान लेता है तो वह परमात्मा को जान लेता है ।

मनुष्य के शरीर की इस वीणा के तार कहां कहां हैं ? पहली तो बात यह है कि मस्तिष्क में बहुत से तार हैं जो बहुत कसे हुए हैं । जो इतने कसे हुए हैं कि उनसे संगीत तो पैदा होता ही नहीं, छूने पर केवल विक्षिप्तता पैदा होती है और कुछ भी पैदा नहीं होता । और हम सारे लोग ही मस्तिष्क के तारों को बहुत कसे हुए बैठे हैं। चौबीस घंटे कसे हुए हैं। सुबह से लेकर सांझ तक खींचे हुए हैं । और कोई सोच रहा हो कि रात में ये तार ढीले हो जाते हैं तो गलती में है । रात भी हमारा सारा मस्तिष्क कसा हुआ और खिंचा हुआ रहता है। आदमी का मस्तिष्क नींद में क्या करता है यह जानने के लिए जो वैज्ञानिक प्रयोग चल रहे है उनके बड़े आश्चर्यजनक परिणाम निकले हैं । उनका कहना है कि आदमी दिन भर जो करता है, रात भर भी वही करता है । दिन भर अगर दूकान चलाता है, तो रात भर भी दूकान चलाता है । मस्तिष्क अगर दिन भर चिन्ता करता है, तो रात भर भी चिन्ता करता है ।

अगर दिन में क्रोध करता है, तो रात में भी क्रोध करता है । रात प्रतिबिंब है पूरे दिन का, उसकी ही प्रतिछाया (Reflection), उसकी ही प्रतिध्वनि है। जो दिन भर मन पर होता है, रात उसके ही प्रति-बिम्ब मन पर गूंजते रहते हैं । दिन में जो काम अधूरा रह जाता है रात उसे मन पूरी तरह करने की कोशिश करता है। अगर किसी पर क्रोध किया है, क्रोध अधूरा रह गया है, अटका हुआ रह गया है, तो रात में मन उसे रिलीज करता है । पूरी तरह क्रोध को करके वीणा का तार अपनी जगह बैठने की कोशिश करता है । अगर दिन में कोई आदमी उपवास करता है, तो रात भोजन करता है सपने में । दिन में जो अधूरा रह गया है वह रात में पूरा करने की कोशिश करता है। तो जो हम दिन में करते हैं वही पूरी रात मन करता है ।

चौबीस घंटे मन खिचा हुआ है । मन का कोई विश्राम नहीं है । मन के तार कभी भी ढीले नहीं होते। मन के तार बहुत खिंचे हुए हैं, एक बात । और दूसरी बात हृदय के तार हैं बिल्कुल ढीले । हृदय के तार हमारे कसे हुए ही नहीं हैं । प्रेम जैसी चीज को हम जानते ही नहीं । हम क्रोध को जानते हैं, हम द्वेष को जानते हैं। हम ईर्ष्या को जानते हैं, हम घृणा को जानते हैं । कभी कभी हम प्रेम करते हैं शायद हम कहेंगे लेकिन हम घृणा भी करते हैं। और आपको पता है क्या ऐसा हृदय भी हो सकता है, जो घृणा भी करे और प्रेम भी करे ? यह वैसे ही है जैसे हम कहें कि एक आदमी कभी कभी जिन्दा भी होता है और कभी मुर्दा भी होता है । यह बात हमारे विश्वास में नहीं आयेगी, क्योंकि आदमी या तो जिन्दा हो सकता है या मुर्दा हो सकता है। यह दोनों बातें साथ साथ कभी भी नहीं हो सकती हैं कि एक आदमी जिन्दा भी हो और मुर्दा भी । यह असम्भव है, यह सम्भव नहीं है। या तो हृदय घृणा को ही जानता है या प्रेम को ही जानता है । इन दोनों के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता है । क्योंकि जिस हृदय में प्रेम होता है उस हृदय में घृणा असंभव हो जाती है ।

राबिया नाम की एक फकीर औरत थी। राबिया के पास एक दूसरा फकीर आकर ठहरा। राबिया जिस धर्मग्रन्थ को पढ़ती थी उसमें से उसने एक पंक्ति को काट दिया। एक लकीर उसने काट दी थी। धर्मग्रन्थों में कोई काटता नहीं, क्योंकि धर्मग्रन्थों में कोई सुधार क्या करेगा ? उस फकीर ने वह किताब पढ़ी और उसने कहा, "राबिया, किसने तुम्हारे धर्मग्रन्थ को नष्ट कर दिया, यह तो अपवित्र हो गया, इसमें एक लाइन कटी हुई है, यह किसने काटी है ?" राबिया ने कहा, "यह मैंने ही काटी है।" फकीर हैरान हुआ। उसने कहा, "तूने यह लाइन क्यों काटी ?" उस पंक्ति में लिखा हुआ था कि शैतान को घृणा करो। राबिया ने कहा, "मैं मुश्किल में पड़ गयी हूं। जिस दिन से मेरे मन में परमात्मा के प्रति प्रेम जगा है उस दिन से मेरे भीतर घृणा विलीन हो गयी है। मैं घृणा चाहूँ भी तो नहीं कर सकती हूँ और अगर शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाये, तो मैं प्रेम ही कर सकती हूं। मेरे पास कोई उपाय नहीं रहा, क्योंकि घृणा करने के पहले मेरे पास घृणा होनी चाहिए। मैं आपको घृणा करूं, इसके पहले मेरे हृदय में घृणा होनी चाहिए। नहीं तो मैं करूंगी कहाँ से और कैसे ?"

एक ही हृदय में घृणा और प्रेम का सहअस्तित्व (Co-existence) संभव नहीं है। ये दोनों बातें उतनी विरोधी हैं जितनी जीवन और मृत्यु। ये दोनों बातें एक साथ, एक ही हृदय में नहीं हो सकती हैं। तो फिर हम जिसको प्रेम कहते हैं वह क्या है ?

थोड़ी कम जो घृणा है उसे हम प्रेम कहते हैं। थोड़ी ज्यादा जो घृणा है उसे हम घृणा कहते हैं। वह घृणा की ही मात्राएं (Gradations) हैं, वह घृणा के ही थोड़े और ज्यादा अनुपात हैं। प्रेम वहाँ जरा भी नहीं है । अनुपात से भूल पैदा होती है। आप शायद समझते होंगे कि ठंड और गर्मी दो अलग चीजें हैं। दोनों अलग चीजें नहीं हैं। गर्मी और ठंड एक ही चीज के अनुपात हैं। वही चीज,

जब गर्मी का अनुपात कम हो जाता है, तो ठंडी मालूम होने लगती है। वही चीज, अनुपात गर्मी का बढ़ जाये, तो गर्म मालूम होने लगती है। ठंड गर्मी का ही एक रूप है। ये दोनों ठीक विरोधी मालूम होने लगते हैं कि दोनों अलग अलग हैं, दुश्मन हैं एक दूसरे के। दुश्मन नहीं हैं, एक ही चीज के घने और गैर घने रूप हैं। ऐसे ही घृणा को हम जानते हैं। घृणा के ही कम घने रूपों को हम प्रेम समझ लेते हैं और घृणा के ही तीव्र घने रूपों को हम घृणा समझ लेते हैं। लेकिन प्रेम घृणा का कोई रूप ही नहीं है। प्रेम घृणा से बिल्कुल ही अलग बात है। प्रेम का घृणा से कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारे हृदय और उसके तार बिल्कुल ढीले हैं। उन ढीले तारों से प्रेम का कोई संगीत पैदा नहीं होता। न कोई आनन्द का संगीत पैदा होता है।

जीवन में आपने आनन्द को जाना है कभी? कह सकते हैं किसी क्षण को कि यह आनन्द का था और मैंने आनन्द पहचाना और जाना? कठिन है ईमानदारी से यह कहना कि मैंने कभी आनन्द जाना, कभी प्रेम जाना। यह कहना भी कठिन है कि कभी शांति जानी। हम क्या जानते हैं? हम अशांति जानते हैं। हां, अशांति कभी कभी कम होती है मात्रा में तो उसी को हम शांति समझ लेते हैं। असल में हम इतने अशांत रहते हैं कि अगर अशांति थोड़ी कम हो जाती है तो शांति का भ्रम देती है। एक आदमी बहुत बीमार है, थोड़ी बीमारी कम होती है तो वह कहता है कि मैं स्वस्थ हो रहा हूं, क्योंकि बीमारी इतनी घिरी है आस पास कि थोडी सी बीमारी कम हो तो उसे लगता है मैं स्वस्थ हूं। लेकिन स्वास्थ्य और बीमारी का क्या संबंध? स्वास्थ्य तो बात ही अलग है। बहुत कम लोग ही स्वास्थ्य को जान पाते हैं, ज्यादा तर तो बीमारी को ही जानते हैं। ज्यादा अशांति को जानते हैं, कम अशांति को जानते हैं लेकिन शांति को नहीं जान पाते। ज्यादा घृणा को जानते हैं, कम घृणा को जानते

हैं, ज्यादा क्रोध को जानते हैं, कम क्रोध को जानते हैं। आप शायद सोचते होंगे कभी कभी क्रोध आता है। झूठी है यह बात। आप चौबीस घंटे क्रोध में होते हैं। कभी ज्यादा होते हैं, कभी कम होते हैं। चौबीस घंटे आप क्रोध में हैं। जरा-सा मौका मिल जाये और क्रोध प्रकट होना शुरू हो जायेगा। मौके की तलाश है क्रोध भीतर तैयार है सिर्फ अवसर की खोज है कि कोई बाहर से मौका दे दे। क्योंकि बिना मौके के अगर आप क्रोध करेंगे तो लोग आपको पागल समझेंगे। अगर आपको बहुत समय तक मौका न दिया जाये तो आप बिना मौके के भी क्रोध करना शुरू कर देंगे यह आपको शायद पता न होगा। अगर एक आदमी को एक कमरे में बन्द कर दिया जाये, सारी सुविधाएँ दे दी जायें और उससे कहा जाये कि वह रोज इस बात को नोट करता रहे कि, क्या उसके चित्त में बिना किसी कारण के भी फर्क पड़ते हैं? और वह नोट करेगा तो उस बन्द कमरे में कभी उसे अच्छा लगने लगेगा, कभी उसे बुरा लगने लगेगा, कभी वह उदास हो जायेगा, कभी वह खुश हो जायेगा, कभी क्रोधित अनुभव करेगा कभी क्रोधित नहीं अनुभव करेगा। वहाँ कोई मौका नहीं है, वहाँ सब स्थितियां समान चल रही हैं। इसलिए एकान्त से आदमी डरता है, क्योंकि एकान्त में बाहर कोई बहाना नहीं होता है और सब चीजें भीतर ही मान लेनी पड़ती हैं। कोई भी आदमी एकाँत में रख दिया जाये तो छह महीने से ज्यादा स्वस्थ नहीं रह सकता है, पागल हो जायगा।

एक सम्राट ने मिस्र में यह प्रयोग किया था। किसी फकीर ने उसको यह कहा था। लेकिन सम्राट ने कहा कि मैं नहीं मानता हूं। तो उस फकीर ने कहा, "तुम्हारे नगर में कोई सबसे स्वस्थ आदमी हो तो उसे छह महीने के लिए एकांत में बन्द कर दो।" नगर में खोजा गया। एक स्वस्थ युवक सब तरह से प्रसन्न था। नयी शादी हुई थी, ठीक कमाता था, बहुत मजे में था। उसे पकड़वा लिया गया और सम्राट

ने उससे कहा, "तुम्हें हम कोई कष्ट नहीं देंगे। हम सिर्फ एक प्रयोग कर रहे हैं, तुम्हारे घर के लोगों की अच्छी व्यवस्था रहेगी, भोजन का, कपड़े का सब इंतजाम रहेगा और तुम्हारे लिए भी सब व्यवस्था रहेगी। सिर्फ छह महीने तुम्हें अकेले रहना पड़ेगा।"

एक बड़े भवन में उसको बन्द कर दिया गया। सारी सुविधाएं जुटा दी गईं, लेकिन एकान्त इतना था कि जो आदमी पहरे पर खड़ा था वह भी उसकी भाषा नहीं समझता था। दो-चार दिन में ही वह आदमी घबराने लगा। सब सुविधा थी। कोई कठिनाई नहीं थी। ठीक वक्त पर भोजन मिलता था। ठीक वक्त पर सोना मिलता था। शाही महल था। सब इन्तजाम था। वह जो करना चाहे, कर सकता था बैठकर वहाँ। सिर्फ इतना था कि किसी से बात नहीं कर सकता था, किसी से मिल नहीं सकता था। दो-चार दिन में ही बेचैनी शुरू हो गई। आठ दिन बाद वह चिल्लाने लगा—बाहर निकालो! मैं यहां नहीं रहना चाहता हूं!

कौन सी तकलीफ आ गई थी? भीतर से तकलीफें आनी शुरू हो गई थीं। जिनको वह कल तक समझता था, बाहर से आती हैं वे, अकेले में पता चला कि भीतर से आती हैं। छह महीने होते-होते वह आदमी पागल हो गया। छह महीने बाद जब उसे निकाला गया, तो वह पूरा पागल हो चुका था। वह अपने से ही बातें करने लगा था। अपने को ही गाली देने लगा था। अपने पर ही क्रोध करने लगा था। अपने से ही प्रेम करने लगा था। कोई दूसरा तो मौजूद नहीं था। छह महीने बाद वह पागल की तरह बाहर निकाला गया। उसके ठीक हो जाने में छह साल लगे।

आपमें से कोई भी पागल हो जाएगा। दूसरे लोग मौका दे देते हैं। आप पागल नहीं हो पाते। आपको बहाना मिल जाता है कि इस आदमी ने गाली दी है, इसलिए मैं क्रोध से भर गया हूं। कोई आदमी किसी के गाली देने से क्रोध से नहीं भरता है। भीतर क्रोध मौजूद है।

गाली केवल मौका बनती है उसके निकल आने का। एक कुएं में पानी भरा हुआ है। हम बाल्टी डालते हैं, तो पानी निकल आता है। अगर कुएं में पानी न हो तो हम बाल्टी कितनी ही डालें, वहां से कुछ निकलने वाला नहीं है। बाल्टी पानी नहीं निकाल सकती। बाल्टी की क्या ताकत है पानी निकालने की। कुएं में पानी होना चाहिए। कुएं में पानी है तो बाल्टी पानी निकाल सकती है। कुएं में पानी नहीं है, तो बाल्टी नहीं निकाल सकती। आपके भीतर क्रोध नहीं है, आपके भीतर घृणा नहीं है, तो दुनिया की कोई ताकत आपके भीतर से क्रोध और घृणा बाहर नहीं निकाल सकती है। वह जो बीच के क्षण हैं, जब कोई कुएं में बाल्टी नहीं डालता है, तब यह भ्रम पैदा हो सकता है कि कुएं में पानी नहीं है। जब कोई डालता है तब तो पानी निकलता है लेकिन जब कोई बाल्टी नहीं डालता है तो कुछ नहीं होता है, शायद हम सोचते हों कि कुएं में अब पानी नहीं है, तो हम गलती में हैं। ठीक ऐसे ही जब हमें कोई मौका नहीं देता है, तो हमारे भीतर से क्रोध नहीं निकलता है, घृणा नहीं निकलती है, द्वेष नहीं निकलता। तो हम ख्याल में न रहें कि हमारे कुएं में पानी नहीं है। कुएं में पानी मौजूद है और प्रतीक्षा कर रहा है कि कोई बाल्टी लेकर आयेगा और मैं निकलूंगा। लेकिन हमारे भीतर यह जो खाली मौके हैं इन्हीं को हम समझ लेते हैं प्रेम के क्षण, शान्ति के क्षण। ये झूठी बात है।

गांधी ने एक दफा कहा कि दुनिया में युद्ध होता है फिर लोग कहते हैं शांति हो जाती है। लेकिन गाँधी ने कहा, मेरी समझ में ऐसा नहीं आता। या तो युद्ध होता है या युद्ध की तैयारी चलती है। शांति तो कभी नहीं आती। शांति धोखा है। जैसे अभी दुनिया में कोई युद्ध नहीं हो रहा है। दूसरा महायुद्ध बन्द हो गया अब तीसरे महायुद्ध की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। तो हम कहेंगे ये शांति के दिन हैं। ये झूठी बात है। ये शांति के दिन नहीं हैं। यह तीसरे महायुद्ध की तैयारी है। सारी दुनिया में तैयारी चल रही है युद्ध की। युद्ध होता है या युद्ध की

तैयारी होती है। अभी तक दुनिया ने शांति के कोई दिन नहीं देखे। आदमी के भीतर भी क्रोध होता है या क्रोध की फिर तैयारी होती है—अक्रोध की कोई अवस्था आदमी नहीं जानता। अशांति होती है, प्रकट होती है या तैयारी होती है। भीतर जो तैयारी के क्षण हैं उनको हम समझ लेते हैं, शांति के क्षण, तो हम भ्रम में पड़ जाते हैं।

हृदय के तार बिल्कुल ढीले हैं। उनसे क्रोध ही पैदा होता है। उनसे विकृति ही पैदा होती है। लेकिन उनसे कोई संगीत पैदा नहीं हो सकता। मस्तिष्क के तार बहुत खिंचे हुए हैं। उनसे पागलपन पैदा होता है और हृदय के तार बिल्कुल ढीले हैं उनसे क्रोध, वैमनस्य, द्वेष, घृणा ये सब पैदा होते हैं। हृदय के तार थोड़े कसे हुए होने चाहिएं, ताकि उनसे प्रेम पैदा हो सके और मस्तिष्क के तार थोड़े शिथिल होने चाहिएं ताकि उनसे विवेक पैदा हो सके, विक्षिप्तता नहीं। और अगर ये दोनों तार ठीक सन्तुलन में आ जायें तो जीवन के संगीत की संभावना पैदा हो सकती है।

तो हम दो बातों पर विचार करेंगे। एक तो यह कि मस्तिष्क के तार कैसे शिथिल किये जा सकें और हृदय के तार कैसे कसे जा सकें। हृदय के तार पर कैसे कसाव लाया जा सके और मस्तिष्क के तारों को कैसे शिथिल (Relax) किया जा सके। इन दोनों बातों की जो साधना है उसको ही मैं ध्यान (Meditation) कहता हूं। और ये दोनों बातें अगर पैदा हो जायें तो फिर तीसरी बात पैदा हो सकती है। वह जो हमारा असली केन्द्र है जीवन का—नाभि, उस तक भी उतरना सम्भव है। इन दोनों केन्द्रों पर संगीत पैदा हो जाये तो भीतर गति हो सकती है। वह संगीत ही नाव बन जाता है, हमें और गहरे ले जाने को। जितना संगीत पूर्ण होता है, व्यक्तित्व जितना भीतर संगीत-मय होता है उतना हम गहरे उतर सकते हैं। और जितना भीतर विसंगीत होता है उतना ही हम उथले रह जाते हैं। हम बाहर रह जाते हैं। आने वाले दो दिनों में इस बाबत विचार करेंगे और

न केवल विचार करेंगे बल्कि प्रयोग करेंगे कि जीवन वीणा के इन तारों को, हम कैसे संतुलन में ला सकते हैं। अभी जो तीन बातें मैंने कहीं वे ख्याल में रख लेने की हैं, ताकि आगे जो बातें मैं कहूँगा उनसे आप उनको जोड़ सकें। पहली बात मनुष्य की आत्मा न तो मस्तिष्क से जुड़ी है और न हृदय से। मनुष्य की आत्मा जुड़ी है नाभि से। मनुष्य के शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु नाभि है। वही केन्द्र है, वह शरीर के ही मध्य में नहीं है, जीवन के भी मध्य में वही है। बच्चा पैदा उससे ही होता है। जो लोग जीवन के सत्य में प्रवेश करते हैं उनके लिए भी नाभि ही द्वार बनती है। शायद यह आपको ख्याल में न होगा कि दिन भर आप श्वास फेफड़ों से लेते हैं लेकिन रात आपकी श्वास नाभि से चलनी शुरू हो जाती है। दिन भर आपका सीना उठता-फैलता है, लेकिन रात जब आप सो जाते हैं, आपका पेट उठने-गिरने लगता है। छोटे बच्चे को आपने श्वास लेते देखा होगा, तो छोटे बच्चों का फेफड़ा ऊपर नहीं उठता है। पेट ऊपर उठता हुआ दिखाई पड़ता है। छोटे बच्चे अभी नाभी के ज्यादा करीब हैं। जैसे-जैसे आदमी बड़ा होने लगता है वैसे-वैसे उसका श्वास ऊपर वापस लौटने लगता है और नाभि तक उसके कम्पन बन्द हो जाते हैं। अगर आप रास्ते पर जा रहे हैं, साइकिल चला रहे हैं या कार चला रहे हैं और एकदम से ऐक्सीडेंट की हालत आ जाये तो आप हैरान होंगे कि आपको पहली चोट नाभि पर लगेगी, न मस्तिष्क पर लगेगी, न हृदय पर लगेगी। अगर एक आदमी एकदम से आपके ऊपर छुरा लेकर आ जाये, तो आपको पहला जो कम्पन होगा, वह नाभि पर होगा और कहीं नहीं होगा। अगर अभी भी आप घबरा जायें एकदम से, तो पहला कम्पन नाभि पर होगा। जीवन पर जब भी संकट पैदा होता है, तो नाभि पर पहले कम्पन होते हैं—क्योंकि जीवन का केन्द्र नाभि है। जीवन के स्रोत वहीं से जुड़े हैं और चूंकि वहां हमारा ध्यान बिल्कुल ही नहीं रहा है, इसलिए आदमी बिल्कुल ही अधर में लटका

रह गया है। नाभि का केन्द्र एकदम अस्वस्थ है, उस पर ध्यान ही नहीं है। उसके विकास की भी कोई व्यवस्था नहीं है। आप हैरान होंगे यह बात जानकर कि नाभि का केन्द्र विकसित होने के लिए कुछ व्यवस्था होनी चाहिए। जैसे हमने मस्तिष्क को विकसित करने के लिए स्कूल और कालेज बना छोड़े हैं वैसे ही नाभि के केन्द्र को विकसित करने के लिए कुछ व्यवस्था अत्यन्त जरूरी है। कुछ बातें हैं जिनसे नाभि का केन्द्र विकसित होता है। कुछ बातें हैं जिनसे विकसित नहीं होता है। जैसे मैंने कहा, अगर भय की स्थिति खड़ी हो जाये, तो सबसे पहले नाभि कंप जाती है। इसलिए जो आदमी जितना अभय की साधना करेगा उसकी नाभि उतनी ही स्वस्थ होती चली जायेगी। जो आदमी जितने साहस की साधना करेगा उसकी नाभि, उसका केन्द्र उतना ही विकसित होगा। जितना अभय बढ़ेगा उतनी नाभि मजबूत और पुष्ट होगी और जीवन से सम्बन्ध गहरे होंगे। इसलिए दुनिया के सारे महत्वपूर्ण साधकों ने अभय (Fearlessness) को साधकों का अनिवार्य गुण माना है। अभय का और कोई मूल्य नहीं है। अभय का मूल्य यही है कि वह नाभि के केन्द्र को पूरी तरह जीवंत कर देता है। उसके सारे विकास को पूरा खुल के प्रकट कर देता है।

नाभि के केन्द्र पर सर्वाधिक ध्यान देना आवश्यक है। मस्तिष्क के केन्द्र से ध्यान को धीरे-धीरे हटाना जरूरी है। हृदय के केन्द्र से भी धीरे-धीरे ध्यान को हटाना जरूरी है ताकि वह नीचे और गहरे से गहरे में प्रविष्ट हो जाये। उसके लिए दो प्रयोग सुबह और रात्रि हम ध्यान के करेंगे। सुबह का प्रयोग मैं आपको समझाता हूँ। फिर पन्द्रह मिनट के लिये हम प्रयोग के लिए बैठेंगे और उस प्रयोग को करेंगे। निश्चित ही अगर मस्तिष्क से चेतना को नीचे ले जाना है तो मस्तिष्क को बिल्कुल शिथिल छोड़ देना जरूरी है, ढीला (Relax) छोड़ देना जरूरी है। हम मस्तिष्क को खींचे

रहते हैं पूरी ताकत से। ख्याल ही भूल गया है कि हम खींचे हुए चले जा रहे हैं। पूरी तरह खींचे हुए हैं यह ख्याल में नहीं है। तो पहले उसे शिथिल छोड़ देना जरूरी है। तो अभी जब हम ध्यान के लिए बैठेंगे तो उसमें तीन बातें हैं। पहली बात—पूरी तरह मस्तिष्क को बिल्कुल ऐसे शिथिल छोड़ देना है, इतना शांत और ढीला छोड़ देना है, जैसे आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। लेकिन आपको कैसे समझ में आयेगा कि आपने शिथिल छोड़ दिया? अगर मैं इस मुट्ठी को जोर से खींचूं, तो मुझे पता चलता है कि सारी नसें खिंची हुई हैं। फिर मैं इसे ढीला छोड़ता हूँ, तो मुझे पता चलेगा कि सारी नसें ढीली छूट गयी हैं। और चूंकि हमारा मस्तिष्क पूरे वक्त ही खिंचा हुआ है इसलिए हमें पता ही नहीं चलता है कि खींचा हुआ होना क्या है और ढीला हो जाना क्या है, तो एक काम करेंगे—पहले मस्तिष्क को जितना खींच सकते हैं, खींच लेंगे। जितना मस्तिष्क के सारे स्नायुओं को खींच सकें, पूरी तरह खींच लेंगे। जितना तनाव (Tense) कर सकें, कर लेंगे। फिर एकदम ढीला छोड़ेंगे। तो आपको पता चलेगा कि खिंचा हुआ होना और ढीला होना, दोनों में क्या फर्क है। अभी जब हम ध्यान के लिए बैठेंगे तो एक मिनट के लिए जितना मस्तिष्क को आप खींच सकें, जितना तनाव दे सकें उतना खींच लेंगे और फिर मैं कहूँगा कि अब ढीला छोड़ दें तो आप बिल्कुल ढीला छोड़ देंगे और आपको क्रमशः पता चल जायेगा कि खिंचा होना क्या है और ढीला हो जाना क्या है। वह आपको अनुभव में आ जाना चाहिए तो फिर आप धीरे-धीरे मस्तिष्क को ढीला छोड़ने में समर्थ हो जायेंगे। तो पहला काम है मस्तिष्क को बिल्कुल ढीला छोड़ देना। मस्तिष्क के साथ ही पूरे शरीर को ढीला छोड़ देना है। इतने आराम से बैठ जाना है जिससे शरीर पर कहीं भी कोई जोर न पड़े। कहीं कोई भार न पडे। फिर आप क्या करेंगे? शिथिल होते ही चारों तरफ होती हुई आवाजें आपको सुनाई देने लगेंगी। ये पक्षी बोल

रहे हैं। यह कहीं पनचक्की की आवाज हो रही है। कहीं कोई कौवा बोलेगा। कहीं कोई और आवाज होगी। यह सब आवाजें आपको सुनाई पड़नी शुरू हो जायेंगी। क्योंकि मस्तिष्क जितना शिथिल होगा उतना ही संवेदनशील (Sensitive) हो जायगा। एक-एक चीज़ साफ सुनाई पड़ने लगेगी। आपको अपनी हृदय की धड़कन भी सुनाई पड़ने लगेगी। श्वास का आना-जाना भी सुनाई पड़ने लगेगा, अनुभव होने लगेगा। फिर चुपचाप बैठकर, यह सब चारों तरफ जो हो रहा है, उसे अनुभव करना है, और कुछ भी नहीं करना है। आवाज सुनाई पड़ रही है, उसे चुपचाप सुनना है। पक्षी बोलेंगे उसे चुपचाप सुनना है। भीतर श्वास चल रही है उसे चुपचाप देखते रहना है और कुछ भी नहीं करना है। आपको अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करना है। क्योंकि आपने अपनी तरफ से कुछ भी किया कि मस्तिष्क खिचना शुरू हो जायेगा। आपको तो एक शिथिल जागरूकता (Relaxed awareness) में बैठे रहना है। सब हो रहा है, आप चुपचाप सुन रहे हैं। और आप हैरान हो जायेंगे जैसे ही आप शांति से सुनेंगे, वैसे ही और गहरी शान्ति भीतर उतरनी शुरू हो जायगी। जितने आप गहरे से सुनेंगे, उतनी और गहराई भीतर बढ़ती चली जायेगी। दस मिनट में ही आप पायेंगे कि आप शांति के अद्‌भुत केन्द्र बन गये हैं। सब शांत हो गया है।

तो यह हम सुबह का पहला प्रयोग करेंगे। पहली बात मस्तिष्क को खींचेंगे आप पूरी तरह से। जब मैं कहूंगा पूरी तरह मस्तिष्क को खींच लें, तो आंख बन्द करके पूरी तरह मस्तिष्क को जितना आप खींच सकते हैं, जितना तनाव से भर सकते हैं उतना खींच लेंगे। फिर मैं कहूँगा छोड़ दें ढीला, तो एकदम से ढीला छोड़ देंगे, और ढीला छोड़ते चले जायेंगे। उसी तरह शरीर को ढीला छोड़ देंगे। आँख बन्द रहेगी। बैठे हुए जो भी आवाजें सुनाई पड़ रही हैं उन्हें चुपचाप सुनते रहेंगे। दस मिनट केवल चुपचाप सुनते रहना है और

कुछ भी नहीं करना है। इन्हीं दस मिनट में पहली दफा आपको लगना शुरू होगा कि भीतर कोई शाँति धारा बहनी शुरू हो गई है। प्राण नीच की तरफ उतरने शुरू हो जायग। मस्तिष्क से वे नीचे की तरफ डूबने शुरू हो जायेंगे।

द्वितीय प्रवचन

मस्तिष्क से हृदय और हृदय से नाभि की ओर

मस्तिष्क के आधार पर निर्मित जो मनुष्य है उसकी जीवन दिशा और धारा गलत चली गयी हैं। पिछले पांच हजार वर्षों में हमने केवल मस्तिष्क को ही, बुद्धि को ही दीक्षित और शिक्षित किया है। परिणाम बहुत घातक उपलब्ध हुए हैं। करीब-करीब सारे मनुष्य किसी विक्षिप्तता के किनारे खड़े होगये हैं। थोड़ा-सा धक्का लग जाये और कोई भी आदमी पागल हो सकता है। मस्तिष्क बिलकुल टूटने की सीमा पर खड़ा हुआ है। जरा सा धक्का लगा और मस्तिष्क जवाब दे देता है। और यह भी आश्चर्य की बात है कि पिछली आधी सदी में, पचास वर्षों में, दुनिया के श्रेष्ठतम विचारक करीब-करीब सभी पागल होते देखे गये हैं। पश्चिम में तो पिछले पचास वर्षों में एक भी बड़ा विचारक नहीं था, जिसने मानसिक रूप से विक्षिप्तता को अनुभव न किया हो। बड़े कवि, बड़े चित्रकार, बड़े विचारक, बड़े दार्शनिक, बड़े वैज्ञानिक, अनिवार्य रूपेण मन की विकृतियों से पीड़ित होते दिखायी पड़ते हैं। और धीरे-धीरे जैसे मनुष्य जाति अधिक अंशों में शिक्षित होती जा रही है, वैसे-वैसे यह पागलपन के प्रभाव सामान्य जन तक भी पहुँच रहे हैं। एक नया मनुष्य पैदा करना हो, तो मनुष्य के जीवन का केन्द्र बदल देना अत्यन्त आवश्यक है। और वह केन्द्र मस्तिष्क की बजाय नाभि के जितना निकट होगा, उतना ही जीवन धारा के करीब पहुंच जायेगा।

यह मैं क्यों कहता हूं? इस सम्बन्ध में दो-चार बातें समझ लेनी जरूरी हैं। मां के पेट में जो बच्चा निर्मित होता है, जो भ्रूण निर्मित होता है, वह नाभि से ही मां से संयुक्त होता है। माँ की जीवन-धारा नाभि के द्वारा उस बच्चे में प्रवाहित होती है। माँ की जीवन-धारा भी एक अत्यन्त अज्ञात, एक अत्यन्त अनजान विद्युत की धारा है जो उस बच्चे की नाभि से पूरे व्यक्तित्व को पोषित करती है। फिर बच्चा माँ से अलग होता है। उसका जन्म होता है। जन्म होते ही नाभि काट

देनी पड़ती है। माँ से पृथक होने की शुरूआत हो जाती है। माँ से पृथक होना अत्यन्त जरूरी है, अन्यथा बच्चे का कोई अपना जीवन नहीं हो सकता। जिस माँ के शरीर के साथ एक हो कर बच्चा बड़ा होता है उसी माँ से एक सीमा पर उसे अलग हो जाना पड़ता है। और यह अलग हो जाने की घटना उसकी नाभि से जो सम्बन्ध था माँ का, उसके विच्छेद से होती है। यह सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है। जो जीवन-धारा उसे नाभि से मिलती है वह एक दम बन्द हो जाती है। उसके सारे प्राण तड़फड़ा उठते हैं। उसके सारे प्राण उस धारा की माँग करने लगते हैं, जो उसे कल तक मिली थी। लेकिन आज अचानक सारी धारा टूट गयी। बच्चा जो रोना शुरू करता है, वह जो पीड़ा अनुभव करता है, जन्म के बाद, वह पीड़ा भूख की पीड़ा नहीं है। वह पीड़ा जीवन-धारा के टूट जाने और विच्छिन्न हो जाने की पीड़ा है। सारी जीवन-धारा से उसका सम्बन्ध टूट गया है, जिससे कल तक उसने जीवन पाया था--वह सब टूट गया है। वह बच्चा तड़फड़ाता है और रोता है। जो बच्चा नहीं रोता तो जो लोग जानते हैं वे कहेंगे कि कुछ बात गड़बड़ हो गयी है। यह बच्चा अगर नहीं रो रहा है तो, उसका मतलब यह है कि वह बच्चा जी नहीं सकेगा। जीवन-धारा से विच्छिन्न हो जाने का उसे कोई पता नहीं चला है। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि उसके भीतर मृत्यु करीब-करीब निकट है। वह बच्चा जी नहीं सकेगा। इसलिये बच्चे को रुलाने की पूरी तरह कोशिश की जाती है। उसका रोना बहुत जरूरी है, क्योंकि जीवन-धारा से टूटे हुए सम्बन्धों का उसे पता चलना चाहिए। अगर वह जीवित है, और उसे पता नहीं चलता है, तो यह बड़ी खतरनाक बात है।

बच्चा नये रूप में अपनी जीवन-धारा को फिर से जोड़ने की कोशिश करता है। माँ के दूध के साथ उसकी जीवन-धारा फिर

से संयुक्त होती है। इसलिए बच्चे का दूसरा सम्बन्ध हृदय से होता है। माँ के हृदय के साथ उसके अपने हृदय का केन्द्र भी धीरे-धीरे विकसित होता है और नाभि का केन्द्र भूल जाता है। नाभि का केन्द्र भूल जाना जरूरी है क्योंकि वह उससे छूट गया है। उसके सम्बन्ध उससे बन्द हो गये हैं। जो विद्युत धारा नाभि से मिलती थी वह बच्चा होठों से लेना शुरू कर देता है। वह माँ से फिर वापस जुड़ जाता है। एक दूसरा चक्र, एक दूसरा विद्युत वृत्त खड़ा हो जाता है और वह उससे संयुक्त हो जाता है। यह जानकर आपको हैरानी होगी कि अगर बच्चे को माँ के दूध पर जीवन नहीं मिले, पालन न मिले तो बच्चे की जीवन-धारा हमेशा के लिए क्षीण रह जाती है। उसे और तरह से भी दूध पिलाया जा सकता है, लेकिन अगर माँ के हृदय का उसे निरन्तर स्पर्श न मिले, तो उसका जीवन हमेशा के लिए कुण्ठित हो जाता है और हमेशा के लिए उसके जीवन की सम्भावना क्षीण हो जाती है। जो बच्चे माँ के दूध पर नहीं पाले जाते, वे बच्चे कभी भी जीवन में बहुत आनन्द को और शांति को उपलब्ध नहीं हो सकते। पश्चिम का सारा युवक समाज और धीरे-धीरे भारत का भी, जो अत्यन्त विद्रोह से भर रहा है, उसके बहुत गहरे में और बुनियाद में यह बात है कि पश्चिम के बच्चे माँ के दूध पर नहीं पाले जा रहे हैं। जीवन के प्रति उनकी आस्था और जीवन के प्रति उनका सम्बन्ध प्रीतिपूर्ण नहीं है। बचपन से उनकी जीवन-धारा ने धक्के पाये हैं और वे अप्रीतिपूर्ण हो गये हैं। उन धक्कों से माँ से विच्छिन्न होने में वे जीवन से ही विच्छिन्न हो गये हैं। क्योंकि बच्चे के लिए प्राथमिक रूप से माँ के अतिरिक्त और कोई जीवन नहीं होता। सारी दुनिया में, जहाँ भी स्त्रियाँ शिक्षित हो रही हैं वे बच्चे को अपने निकट पालना पसन्द नहीं करतीं और उसके परिणाम घातक होने शुरू हुए हैं। आदिवासी समाजों में बच्चे बहुत देर तक माँ के दूध पर पलते हैं। जितना समाज शिक्षित

होता जाता है, बच्चे मां के दूध से उतनी ही जल्दी अलग कर दिये जाते हैं। जो बच्चे जितनी जल्दी माँ के दूध से अलग कर दिये जायेंगे, वे अपने जीवन में शाँति को उतनी ही कठिनाई से अनुभव कर सकेंगे। उनके जीवन में एक गहरी अशाँति हमेशा के लिए प्रारम्भ से ही शुरू हो जायेगी। और इस अशाँति का बदला किससे लेंगे? इसका बदला माँ-बाप से ही लिया जायगा, और सारी दुनिया में बच्चे माँ-बाप से बदला ले रहे हैं। उनको भी पता नहीं है कि यह कौन-सी प्रतिक्रिया उनके भीतर पैदा हो रही है, यह कौन सा एक विद्रोह उनके भीतर पैदा होरहा है, यह कौन-सी आग उनके भीतर पैदा हो रही है? लेकिन अनजान में, बहुत गहरे में उनका मन जानता है कि यह विद्रोह माँ से बहुत शीघ्र छुड़ा लिए जाने का परिणाम है। उनकी जीवन चेतना इस बात को जानती है, हालाँकि उनकी बुद्धि नहीं जानती। इसका परिणाम यह होगा कि वे मां से, पिता से, सबसे इसका बदला लेंगे। और जो बच्चा माँ और पिता के विरोध में है वह बच्चा परमात्मा के भी पक्ष में नहीं हो सकता। कोई सम्भावना नहीं है कि वह परमात्मा के पक्ष में हो जाये। क्योंकि परमात्मा के प्रति जो सबसे पहली भावनाएं उठनी शुरू होती हैं, वे वही हैं जो माँ और पिता के प्रति उठती हैं। सारी दुनिया में परमात्मा को पिता कहना अकारण नहीं है। परमात्मा को पिता की शक्ल में देखना अकारण नहीं है। बच्चे के पहले जीवन अनुभव मां और पिता के प्रति ही अगर कृतज्ञता के हैं, धन्यता के हैं और श्रद्धा के हैं, तो ही वे अनुभव परमात्मा के प्रति विकसित होंगे, अन्यथा नहीं हो सकते। लेकिन बच्चे को तोड़ लिया जाता है। उसकी जीवन-धारा दूसरी बार मां के हृदय से संबंधित होती है लेकिन एक सीमा पर आकर बच्चे को माँ के दूध से भी अलग होना पड़ता है। लेकिन ठीक समय वह कब आता है? वह उतनी जल्दी नहीं आजाता है जितनी जल्दी हम सोचते हैं। बच्चे और थोड़ी ज्यादा देर तक माँ के हृदय के करीब

होने चाहिएं, अगर उनके जीवन में प्रेम और हृदय का ठीक से विकास करना है। वे बहुत जल्दी छीन झपट कर अलग किये जाते हैं। माँ को उन्हें अलग नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने आप अलग होने देना चाहिए। एक सीमा पर आकर वे अपने से अलग होंगे। उनको कोशिश करके अलग करना वैसे ही है जैसे कोई माँ जल्दी में चार महीने के बच्चे या पाँच महीने के बच्चे को पेट से बाहर निकाल लेना चाहे। यह उतना ही खतरनाक है, उससे कम खतरनाक नहीं, कि कोई माँ जबकि बच्चा खुद उसका दूध छोड़े, उससे पहले उसे अपने से अलग करना चाहे। माँ की यह कोशिश खतरनाक है और इस कोशिश में बच्चे के हृदय का दूसरा केन्द्र ठीक से विकसित नहीं होता और आप हैरान होंगे, चूंकि बात आ गई इसलिए आपसे कहना उचित समझूंगा। सारी दुनिया में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का सबसे ज्यादा आकर्षण का केन्द्र स्त्रियों का हृदय क्यों बना रहता है? यह सब बच्चे माँ के दूध से बहुत जल्दी अलग कर लिये गये हैं। सारी दुनिया में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का जो आकर्षण है वह उसके हृदय के प्रति ही क्यों बना रहता है? वह उनके स्तनों के प्रति ही क्यों बना रहता है? ये सब बच्चे माँ से बहुत जल्दी अलग कर लिये गये हैं। इनकी जीवन चेतना को कहीं गहरे में स्त्रियों के स्तन के निकट रहने की कामना शेष रह गई है, पूरी नहीं हो पाई है, अन्यथा कोई कारण नहीं है, अन्यथा कोई वजह नहीं है। आदिवासी समाजों में जहाँ बच्चे माँ के स्तन के पास पूरे समय तक रहते हैं वहाँ स्तन के प्रति पुरुषों का कोई आकर्षण नहीं है। लेकिन हमारी कविताएं, हमारे उपन्यास, हमारी फिल्में, हमारे नाटक, हमारे चित्र सभी स्त्रियों के स्तन के पास क्यों केन्द्रित हैं? यह उन पुरुषों द्वारा बनाई गई बातें हैं, जो पुरुष अपने बचपन में माँ के स्तन के निकट पूरी तरह नहीं रह पाये। वह कामना अब नये रूपों में प्रगट होनी शुरू होती है और फिर कहते हैं कि अश्लील चित्र बनते हैं, अश्लील किताबें लिखी जाती हैं, अश्लील गीत लिखे

जाते हैं। फिर हम कहेंगे कि बच्चे रास्तों पर स्त्रियों को धक्का देते हैं, पत्थर मारते हैं। यह सब बेवकूफियाँ हम पैदा करवाते हैं और फिर इसके पीछे रोते हैं और इनको दूर करने के उपाय करते है।

बच्चे को बहुत देर तक मां के स्तन के निकट रहना अत्यन्त अनिवार्य है। उसके मानसिक विकास में, उसके शारीरिक विकास में, उसके चित्त के विकास में, उसके हृदय का केन्द्र ठीक से विकसित नहीं हो पाता। वह अधूरा रह जाता है। वह रुका हुआ रह जाता है, अवरुद्ध रह जाता है। और जब हृदय का केन्द्र अवरुद्ध रह जाये तो एक और अनहोनी घटना घटनी शुरू होती है। और वह यह कि जो काम हृदय पूरा नहीं कर पाया, जो काम नाभि पूरा नहीं कर पाई उस काम को मनुष्य अपने मस्तिष्क से पूरा करने की कोशिश करता है। यह कोशिश और ही उपद्रव ले आती है, क्योंकि प्रत्येक केन्द्र का अपना काम है, प्रत्येक केन्द्र अपना काम पूरा कर सकता है। किसी दूसरे केन्द्र का काम पूरा नहीं कर सकता। न तो हृदय नाभि का काम कर सकता है और न हृदय का काम मस्तिष्क कर सकता है। लेकिन मां से जैसे ही बच्चा अलग कर दिया जाता है; उसके पास अब एक ही केन्द्र रह जाता है, जिस पर सारा भार पड़ जाता है। वह मस्तिष्क का केन्द्र होता है। फिर शिक्षा भी उसी की, उपदेश भी उसी के, स्कूल भी उसी के, विद्यालय भी उसी के, जीवन में विकास भी उन्हीं प्रयासों के, जिनके मस्तिष्क ज्यादा विकसित और ज्यादा सम्पन्न हों। एक दौर शुरू होता है और सारा काम जीवन का मस्तिष्क से लेने का शुरू हो जाता है। जो आदमी मस्तिष्क के द्वारा प्रेम करेगा, उसका प्रेम झूठा होगा। क्योंकि मस्तिष्क का प्रेम से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रेम तो हृदय से हो सकता है, मस्तिष्क से नहीं हो सकता। लेकिन हृदय के केन्द्र हमारे ठीक से विकसित नहीं हैं, तो हम मस्तिष्क से काम लेना शुरू करते हैं। तो प्रेम भी हम सोचते

हैं, विचारते हैं। प्रेम का सोचने विचारने से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन प्रेम भी हममें मानसिक रूप से सोच-विचार की तरह प्रकट होता है। इसीलिए सारी दुनिया में इतनी कामुकता (Sexuality) व्याप्त हो गई है। कामुकता का एक ही अर्थ है कि सैक्स का केन्द्र और सैक्स के केन्द्र का काम मस्तिष्क से लिया जाता है, बुद्धि से लिया जाता है। और बुद्धि में जब काम प्रविश्ट हो जाएगा, तो जीवन नष्ट हो जाता है। और हमारी बुद्धि में काम प्रविष्ट हो गया है।

काम का, सैक्स का जो केन्द्र है वह नाभि ही है, क्योंकि जीवन की सबसे बड़ी ऊर्जा सैक्स है, सबसे बड़ी ऊर्जा काम है। उसी से जन्म है, उसी से जीवन, उसी से जीवन का विकास है। लेकिन नाभि के केन्द्र हमारे अविकसित हैं तो हम दूसरे केन्द्र से उनका काम लेना शुरू करते हैं। पशुओं में काम है लेकिन कामुकता नहीं है। इसलिए पशुओं का काम भी एक सौन्दर्य है, एक अभिनव आनन्द है। और मनुष्य की कामुकता एक कुरूपता (ugliness) है, क्योंकि वह काम भी चिन्तन बन गया है उसके मन में जाकर। वह काम का भी चिन्तन कर रहा है। एक आदमी भोजन करता हो, भोजन करना बहुत अच्छा है। लेकिन एक आदमी चौबीस घंटे भोजन के सम्बन्ध में चिन्तन करता हो, तो वह आदमी पागल है। भोजन करना बिल्कुल ठीक है और भोजन बहुत जरूरी है और भोजन करना ही है। लेकिन भोजन के सम्बन्ध में अगर कोई चिन्तन करता हो २४ घंटे, तो समझना चाहिए कि उस आदमी के केन्द्र डांवाडोल हो गये। जो काम उसे पेट से लेना चाहिए था, उसे वह बुद्धि से ले रहा है और बुद्धि कोई भोजन नहीं पचा सकती है। और न बुद्धि तक भोजन पहुँचाया जा सकता है। बुद्धि केवल सोच सकती है, विचार कर सकती है। और बुद्धि जितना भोजन के सम्बन्ध में विचार करेगी उतना ही काम पेट का छिन जाएगा और पेट अस्तव्यस्त हो जाएगा। आप कभी सोच करके देखें। आप भोजन कर लेते हैं फिर आप

कभी विचार नहीं करते हैं। वह अपने आप पच जाता है। पेट पचाने का काम करता है। वह अचेतन केन्द्र (unconscious centre) है, वह अपना काम करता है। आपको सोचना-विचारना नहीं पड़ता है। लेकिन आप किसी दिन सजग होकर इस बात का विचार करें कि अब पेट में भोजन पहुँच गया होगा, पच रहा होगा, ऐसा हो रहा होगा, ऐसा हो रहा होगा, वैसा हो रहा होगा। और आप पायेंगे कि आपका भोजन उस दिन पचना असम्भव हो गया है। जितना चिन्तन प्रविष्ट होगा उतनी पेट की जो अचेतन प्रक्रिया है उसमें बाधा पड़ जाएगी। भोजन के साथ ऐसी दुर्घटना कम घटती है, सिर्फ उन लोगों को छोड़कर जो उपवासवादी होते हैं। अगर कोई आदमी अकारण उपवास करता है तो धीरे-धीरे भोजन उसके चिन्तन में प्रविष्ट हो जाएगा। वह भोजन तो नहीं करेगा, उपवास करेगा, लेकिन फिर भोजन का चिन्तन करेगा और यह चिन्तन बहुत खतरनाक है। भोजन करना तो जीवन के लिए अत्यन्त जरूरी है लेकिन भोजन का चिन्तन रुग्णता है। और जो आदमी भोजन का चिन्तन करने लगे उसके जीवन में सब तरह के विकास होने बन्द हो जाएंगे। उसका चिन्तन इस व्यर्थ की बात में ही समाप्त होगा।

सेक्स के साथ यौन के साथ, काम के साथ ऐसी ही घटना घट गई है। उसे हमने केन्द्र से झपटकर छीन लिया है और चिन्तन कर रहे हैं उसका तो ऐसे हमारे जीवन के जो तीन महत्त्व पूर्ण केन्द्र हैं उन सबका काम धीरे-धीरे बुद्धि के हाथ में सौंप दिया गया है। यह ऐसा ही है जैसे कोई आदमी आँख से ही सुनने की भी कोशिश करे। यह वैसा ही है जैसे कोई आदमी मुंह से देखने की भी कोशिश करे। यह वैसा ही है जैसे कोई आदमी कान से भी देखने की कोशिश करे या स्वाद लेने की कोशिश करे। इस आदमी को हम कहेंगे कि पागल है क्योंकि आँख देखने का यन्त्र है, कान सुनने का यन्त्र है, कान आँख नहीं हो सकते, आँख सुन नहीं सकती। और

अगर हम ऐसी कोशिश करेंगे तो उसका कुल परिणाम व्यक्तित्व में एक अराजकता ही हो सकती है। ऐसे ही तीन केन्द्र हैं मनुष्य के। जीवन का केन्द्र नाभि है, भाव का केन्द्र हृदय है। विचार का केन्द्र मस्तिष्क है। विचार इन तीनों केन्द्रों में सबसे ऊपरी केन्द्र है। उससे गहरा केन्द्र भाव का है। उससे भी गहरा केन्द्र प्राणों का है। शायद आप सोचते होंगे कि हृदय बन्द हो जाने से जीवन धारा बन्द हो जाती है, लेकिन अभी वैज्ञानिक इस नतीजे पर सहज ही पहुँच गये हैं कि हृदय की गति बन्द हो जाने के बाद भी ६ मिनट के भीतर हृदय फिर से चलाया जा सके तो आदमी पुनरुज्जीवित हो सकता है। हृदय का सम्बन्ध समाप्त हो जाने पर भी ६ मिनट के पीछे तक नाभि का जीवन केन्द्र सक्रिय रहता है। ६ मिनट के भीतर अगर हृदय को फिर से चलाया जा सके या नया हृदय डाला जा सके तो आदमी पुनरुज्जीवित हो जाएगा। आदमी के मरने की तब कोई जरूरत नहीं। लेकिन अगर नाभि केन्द्र से जीवन हट गया तो फिर किसी भी हृदय को बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। हमारे भीतर सर्वाधिक गहरा और बुनियादी केन्द्र नाभि का है। इस नाभि केन्द्र के लिए सुबह मैंने थोड़ी सी बातें कीं। अभी हमने जो आदमी बनाया है वह सिर के बल खड़ा हुआ है। जैसे एक आदमी शीर्षासन करता है। शीर्षासन करने वाला सिर को आधार बना लेता है, सिर की जगह पैरों को ऊपर उठा देता है। अगर एक आदमी २४ घंटे शीर्षासन करता रहे तो उसकी क्या स्थिति होगी, आप समझ सकते हैं। वह आदमी सुनिश्चित ही पागल हो जाएगा। वह पागल हो ही गया है, नहीं तो २४ घंटे ऐसे खड़े ही नहीं रहता। और कोई कारण भी नहीं था। लेकिन जीवन को हमने ऐसा ही उल्टा कर दिया है।

हम सब सिर के बल खड़े हुए हैं। जीवन का आधार हमने सिर बना लिया है। सोचना और विचारना यह हमारे जीवन के

आधार हो गये हैं। धर्म कहता है सोचना और विचारना जीवन का आधार नहीं है, बल्कि सोचने और विचारने से मुक्त हो जाना, निर्विचार हो जाना जीवन का आधार है। लेकिन हम तो सोच विचार से ही जीते हैं और सोच विचार से ही हम सारे जीवन का मार्ग निर्दिष्ट करने की कोशिश करते हैं। इससे सारे मार्ग भटक गये हैं। सोचने विचारने से कभी कोई मार्ग उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि न तो भोजन पचता है आपके सोचने से, न आपकी नाड़ियों में खून बहता है आपके सोचने से, न आपकी स्वांस चलती है आपके सोचने से। कभी आपने सोचा है कि जीवन की कोई भी महत्त्वपूर्ण क्रिया आपके सोचने से सम्बन्धित नहीं है बल्कि जीवन की सब क्रियायें आपके अत्यधिक सोचने से कुंठित होती हैं। उनको बाधा पड़ती है। इसलिए रोज रात को आपका गहरी नींद में खो जाना जरूरी होता है ताकि आपकी सारी क्रियाएं ठीक से चल सकें। ताकि आपको बाधा न दे पायें और सुबह आप वापस ताजगी अनुभव कर सकें। जिस आदमी की नींद खो जाये उस आदमी का बचना फिर कठिन हो जाता है, क्योंकि सोच विचार जीवन की बुनियादी क्रियाओं में पूरे समय बाधा डालता है। तो थोड़ी देर को प्रकृति आपको गहरी नींद में डुबा देती है। वह एक मूर्च्छा में ले जाती है। सारा सोच विचार बन्द हो जाता है और आपके वास्तविक केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं। हमारे वास्तविक केन्द्रों का भी एक नाता है। मैं आपसे बुद्धि से जुड़ सकता हूँ। मेरे विचार आपको ठीक मालूम पड़ें, मेरे विचार आपको प्रभावी मालूम पड़ें तो मेरा और आपका बुद्धिगत नाता होगा। यह कम से कम नाता है। यह कम से कम सम्बन्ध है। बुद्धि का कोई गहरा सम्बन्ध नहीं होगा। उससे गहरे सम्बन्ध हृदय के होते हैं, प्रेम के होते हैं। लेकिन प्रेम के सम्बन्ध आपके सोच-विचार से नहीं होते। प्रेम के सम्बन्ध बिल्कुल अनजान में आपके बिना सोचे विचारे घटित होते हैं। उससे भी गहरे जीवन के सम्बन्ध होते हैं। जैसे

जो नाभि से प्रभावित होते हैं, हृदय से भी प्रभावित नहीं होते, वे तो और भी गहरे और गूढ़ होते हैं। उनकी तो व्याख्या ही करनी मुश्किल होती है कि मेरा क्या सम्बन्ध है, क्योंकि हमें पता ही नहीं होता।

लेकिन जैसा मैंने आपसे कहा कि माँ की जीवन-धारा बच्चे की नाभि को प्रभावित करती रहती है। एक विद्युत् माँ की नाभि से बच्चे की नाभि तक बहती रहती है। जीवन में वह बच्चा जब भी किसी ऐसी स्त्री के करीब पहुँचेगा, जिससे वैसे ही विद्युत् धारा प्रवाहित हो रही है जैसी उसके माँ से प्रवाहित होती थी तो बिल्कुल अनजान में ही सम्बन्ध में वह घिर जाएगा। उसकी समझ में नहीं आयेगा कि यह क्या सम्बन्ध बनना शुरू हुआ। उस अनजाने सम्बन्ध को हम प्रेम कहते रहे हैं। वह हमारी पहचान में नहीं आता है इसलिए उसको हम अन्धा कहते हैं। निश्चित प्रेम अन्धा है जैसे कान अन्धा है, जीभ अन्धी है लेकिन आँख बहरी है, ऐसे ही प्रेम अन्धा है। क्योंकि वह बहुत गहरे उन तलों से उठता है जिनकी हमें कोई खबर नहीं है। हमें समझना मुश्किल हो जाता है कि क्या कारण हैं इस प्रेम के उठने के। किन्हीं लोगों से हमें अचानक तीव्र रूप से दूर हटने का विकर्षण पैदा होता है। कोई कारण समझ में नहीं आता कि इनसे हम क्यों दूर हटना चाहते हैं। अगर आप की विद्युत्धारा और उनकी विद्युत्धारा जो नाभियों से प्रभावित होती हैं, विरोधी हैं तो समझ में नहीं आयेगा लेकिन आपको दूर हटना पड़ेगा। आपको ऐसा लगेगा कि कोई चीज दूर कर रही है और किसी व्यक्ति के पास आप अचानक खिंचे चले जाना चाहते हैं। आपकी समझ में नहीं आता। कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। आपकी विद्युत्धारा और उसकी विद्युत्धारा निकट है, सजातीय है, करीब है, इसीलिए एक दूसरे से सम्बन्धित हो रही है। इसीलिए वैसी प्रतीति आपको होती है।

तीन तरह के सम्बन्ध मनुष्य के जीवन में होते हैं। बुद्धि के

सम्बन्ध, जो बहुत गहरे नहीं हो सकते। गुरु और शिष्य में ऐसे बुद्धि के सम्बन्ध होते हैं। प्रेम के सम्बन्ध, जो बुद्धि से ज्यादा गहरे होते हैं। हृदय के सम्बन्ध, माँ बेटे में, भाई-भाई में, पति पत्नी में इसी तरह के सम्बन्ध होते हैं जो हृदय से उठते हैं। और उससे भी गहरे सम्बन्ध होते हैं जो नाभि से उठते हैं। नाभि से जो सम्बन्ध उठते हैं उन्हें ही हम मित्रता कहते हैं। ये प्रेम से भी ज्यादा गहरे होते हैं। प्रेम टूट सकता है, मित्रता कभी भी नहीं टूटती। जिसे हम प्रेम करते हैं उसे हम कल घृणा भी कर सकते हैं। लेकिन जो मित्र है वह कभी भी शत्रु नहीं हो सकता है। और हो जाये तो जानना चाहिए कि मित्रता नहीं थी। मित्रता के सम्बन्ध नाभि के सम्बन्ध हैं जो और भी अपरिचित गहरे लोक के सम्बन्ध हैं। इसलिए बुद्ध ने नहीं कहा लोगों से कि तुम एक दूसरे को प्रेम करो। बुद्ध ने कहा—मैत्री। यह अकारण नहीं था। बुद्ध ने कहा कि हमारे जीवन में मैत्री होनी चाहिए। किसी ने बुद्ध को पूछा कि आप प्रेम क्यों नहीं कहते? बुद्ध ने कहा, मैत्री प्रेम से बहुत गहरी बात है। प्रेम टूट भी सकता है, मैत्री कभी टूटती नहीं। और प्रेम बाँधता है मैत्री मुक्त करती है। प्रेम किसी को बाँध सकता है अपने से, मालिक बन सकता है किसी का लेकिन मित्रता किसी की मालिक नहीं बनती, किसी को रोकती नहीं, बाँधती नहीं है, बल्कि मुक्त करती है. और प्रेम इसलिए भी बन्धन हो जाता है कि प्रेमियों का आग्रह होता है "हमारे अतिरिक्त और किसी से भी प्रेम नहीं," लेकिन मित्रता का कोई आग्रह नहीं होता। एक आदमी के हजारों मित्र हो सकते हैं, लाखों मित्र हो सकते हैं। क्योंकि मित्रता बड़ी व्यापक गहरी अनुभूति है। जीवन की सबसे गहरी केन्द्रता से वह उत्पन्न होती है। इसलिए मित्रता अन्ततः परमात्मा की तरफ ले जाने वाला सबसे बड़ा मार्ग बन जाती है। जो सबका मित्र है वह आज नहीं, कल परमात्मा के निकट पहुंच जाएगा। क्योंकि सबसे नाभि केन्द्रों से उसके संबंध स्थापित हो रहे हैं और एक दिन वह विश्व

नाभि केन्द्र से भी सम्बन्धित हो जाने को है।

ये जो नाते हैं, ये जो सम्बन्ध हैं जीवन के, वे केवल बौद्धिक नहीं होने चाहिएँ। अकेले बौद्धिक नहीं होने चाहिएँ, हार्दिक भी होने चाहिएँ। और अकेले हार्दिक भी नहीं होने चाहिएँ, उससे भी गहरे नाभिगत होने चाहिएँ। हमें यह बात आज बहुत स्पष्ट नहीं है लेकिन आज नहीं कल हमें पता चल सकेगा कि हम जीवन की बहुत दूर धाराओं से जुड़े हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़तीं। हम जानते हैं कि चाँद बहुत दूर है, लेकिन तो भी समुद्र के पानी पर कोई अनजाना प्रभाव छोड़ता रहता है। चाँद के साथ समुद्र का पानी ऊपर उठने लगता है और चाँद के साथ नीचे गिरने लगता है। हमें पता है सूरज बहुत दूर है लेकिन किन्हीं अदृश्य धागों से वह जीवन से बंधा है। सुबह सूरज निकलता है और जीवन में क्रान्ति घटित हो जाती है। जो सब सोया हुआ था, जो सब मुर्दा सा पड़ा था, जो बेहोश था वह होश में आने लगता है। कोई-कोई चीज जागने लगती है। फूल खिलने लगते हैं और पक्षी गीत गाने लगते हैं। सूरज की अदृश्य धारा कोई प्रभाव हम तक पहुंचाती है।

और भी जीवन की अदृश्य धाराएं हैं जो इसी भांति हम तक पहुंचती हैं और हमारे जीवन को संचालित करती रहती हैं। निरन्तर संचालित करती रहती हैं। सूरज ही नहीं, चाँद ही नहीं, आकाश के तारे ही नहीं बल्कि जीवन की ही एक विद्युत धारा है जो हमें कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती और जो निरन्तर हमारे केन्द्रों को प्रभावित करती है और संचालित करती है। और जितना ग्राहक (Receptive) हमारा केन्द्र होगा, वह जीवन धारा उतनी ही हमारे जीवन को प्रभावित कर सकती है। जो केन्द्र हमारा जितना कम ग्राहक होगा उतना ही वह जीवनधारा से प्रभावित होने से वंचित रह जाएगा। सूरज निकलता है, फूल खिल जाते हैं। लेकिन अगर हम फूल के चारों तरफ दीवाल उठा दें और सूरज की रोशनी फूल

तक न पहुंच पाये तो फूल नहीं खिलेगा, वह कुम्हला जाएगा। बन्द दीवाल में फूल कुम्हला ही जाएगा। सूरज जबरदस्ती घुसकर उस फूल को नहीं खोल सकता। फूल को खुला होना चाहिए। फूल को तैयार होना चाहिए। फूल के लिए मौका देना चाहिए--सूरज को कि वह आये और खोल दे। सूरज किसी एक फूल को ढूंढ़ने नहीं जा सकता कि कौन फूल दीवाल भीतर छिपा है तो उसके दीवाल के भीतर पहुंचे। सूरज को कोई पता भी नहीं है फूलों का। यह तो बिल्कुल ही एक अचेतन जीवन प्रभाव है। सूरज निकलता है, फूल खिलते हैं। लेकिन अगर कोई फूल दीवाल के भीतर बन्द है तो नहीं खिलेगा। वह मुर्झा जाएगा और मर जाएगा।

जीवनधारा चारों तरफ से बह रही है और जिसके नाभिकेन्द्र खुले हुए नहीं हैं वे उस धारा से वंचित रह जाएंगे। उनको उस धारा का कोई पता भी नहीं चलेगा। उन्हें बोध ही नहीं होगा कि धारा भी आयी थी और हमें प्रभावित कर सकती थी। हमारे भीतर कुछ छिपा था उसे खोल सकती थी। यह कैसे सम्भव होगा कि हमारे जीवन का केन्द्र खुला हुआ फूल बन जाये ताकि जो भी चारों तरफ से अदृश्य विद्युतधाराएं आ रही हैं वे उससे सम्पर्क स्थापित कर सकें? किस रास्ते से यह होगा? दो-चार बातें स्मरणीय हैं।

पहली बात, आपकी श्वास (Breathing) की प्रक्रिया जितनी गहरी हो उतना ही आप नाभि को प्रभावित करने में और विकसित करने में समर्थ हो सकते हैं। लेकिन हमें इसका कोई ख्याल नहीं है। हमें इस बात का पता ही नहीं है कि सांस हम कितनी ले रहे हैं या कितनी कम ले रहे हैं, या जरूरत के अनुसार ले रहे हैं या नहीं ले रहे हैं। जितने हम ज्यादा चिंतित होते हैं, जितने चिन्तन से भरते जाते हैं, मस्तिष्क पर जितना बोझ बढ़ता है, आपको ख्याल भी न होगा, सांस की धारा उतनी ही क्षीण और अवरुद्ध होती है। क्या आपने कभी ख्याल किया है कि क्रोध में आपकी सांस दूसरी

तरह से चलती है और शांति में दूसरी तरह से चलती है। क्या आपने कभी ख्याल किया है कि तीव्र कामवासना मन में चलती हो तो सांस और तरह से चलती है और मन मधुर भावों से भरा हो तो सांस और तरह से चलती है। क्या आपने ख्याल किया है कि बीमार आदमी की सांस और तरह से चलती है, स्वस्थ आदमी की और तरह से चलती है। सांस का स्पन्दन प्रतिक्षण आपकी चित्तदशा के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। ठीक इससे उल्टी बात भी होती है। अगर सांस के स्पन्दन बिल्कुल संगीतपूर्ण हों तो आपका चित्त भी उसी के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। चित्त को बदलिये तो सांस बदलती है या सांस को बदलिये तो चित्त पर परिणाम होते हैं। जिस व्यक्ति को भी जीवन केन्द्रों को विकसित करना है और प्रभावित करना है उसे पहली बात है लयबद्ध-सांस (Rhythmic-breathing)। चलते, उठते, बैठते इतनी लयबद्ध, इतनी शांत, इतनी गहरी सांस कि सांस का एक अलग संगीत, दिन रात मालूम होने लगे। आप चल रहे हैं रास्ते पर, कोई काम तो नहीं कर रहे हैं। बड़ा आनन्दपूर्ण होगा कि आप गहरी, शांत, धीमी और लयबद्ध सांस लें। दो फायदे होंगे। जितनी देर तक लयबद्ध सांस रहेगी उतनी देर तक आपका चिन्तन कम हो जाएगा, उतनी देर तक मन के विचार बन्द हो जाएंगे। अगर सांस बिल्कुल सम हो तो मन के विचार एकदम बन्द हो जाते हैं, शान्त हो जाते हैं। सांस मन के विचारों को बहुत दूर तक प्रभावित करती है। और फिर सांस ठीक से लेने में कुछ खर्च भी नहीं करना होता है। सांस ठीक से लेने में कोई समय भी नहीं लगाना होता है। सांस ठीक से लेने में कहीं से कोई समय निकालने की भी जरूरत नहीं होती। गहरे शांत सांस लेने की यह प्रक्रिया अगर जारी रहे तो थोड़े ही दिन में वह सहज हो जाएगी और आपको उसका बोध भी नहीं रहेगा। सांस सहज ही गहरी और धीमी चलने लगेगी। जितनी सांस की धारा

गहरी और धीमी होगी उतना ही आपका नाभिकेन्द्र विकसित होगा। सांस प्रतिक्षण जाकर नाभिकेन्द्र पर चोट पहुँचाती है। अगर सांस ऊपर से ही लौट आती है तो नाभिकेन्द्र धीरे-धीरे सुस्त हो जाता है और ढीला हो जाता है। उसतक चोट ही नहीं पहुँचती। पुराने लोगों ने इस सम्बन्ध में एक सूत्र खोज निकाला था। लेकिन आदमी इतना नासमझ है कि सूत्रों को दोहराने लगता है। उनका अर्थ नहीं देख पाता और उनको समझ नहीं पाता। जैसे वैज्ञानिकों ने पानी का एक सूत्र निकाल लिया--एच टु ओ (H_2O)। अर्थात् उद्जन और आक्सीजन दोनों के मिलने से पानी बनता है। दो अणु उद्जन के और एक अणु आक्सीजन का तो एच टु ओ सूत्र बना लिया। अब कोई आदमी अगर बैठ जाये और दोहराने लगे एच टु ओ, एच टु ओ, एच टु ओ, जैसे लोग राम-राम, ओम्-ओम् दोहराते हैं तो उसको हम पागल कहेंगे। क्योंकि सूत्र को दोहराने से क्या होता है। सूत्र तो केवल सूचक है किसी बात का। वह बात समझ में आ जाये तो सूत्र सार्थक है।

ओम् आप निरन्तर सुनते होंगे। लोग बैठे दोहरा रहे हैं, ओम्-ओम् का जाप कर रहे हैं। उन्हें पता नहीं है कि ओम् तो एच टु ओ जैसा ही एक सूत्र है। ओम् में तीन अक्षर हैं। अ है, उ है, म् है। शायद आपने कभी ख्याल न किया हो अगर आप मुंह बन्द करके जोर से 'अ' कहें तो 'अ' की ध्वनि भीतर मस्तिष्क में गूंजती हुई मालूम होगी। 'अ' जो है वह मस्तिष्क के केन्द्र का सूचक है। अगर आप भीतर 'उ' कहें तो 'उ' की ध्वनि हृदय में गूँजती हुई मालूम होगी। 'उ' हृदय का सूचक है। और अगर आप 'म्' कहें भीतर, ओम् का तीसरा हिस्सा, तो वह नाभि के पास आपको गूँजता हुआ मालूम पड़ेगा। यह 'अ, उ और म्' क्रमशः मस्तिष्क, हृदय और नाभि के सूचक शब्द हैं। अगर आप 'म्' कहें तो आपको सारा जोर नाभि पर पड़ता हुआ मालूम पड़ेगा। अगर आप 'उ' कहें तो जोर हृदय पर जाता

हुआ मालूम पड़ेगा। अगर आप 'अ' कहें तो 'अ' मस्तिष्क में ही गूँजकर विलीन हो जाता है।

ये सूत्र हैं। 'अ' से 'उ' की तरफ और 'उ' से 'म्' की तरफ जाना है। बैठकर ओम् ओम् दोहराने से कुछ नहीं होता। तो इस दिशा में ले जाने वाली अर्थात् 'अ' से 'उ' की तरफ और--उ से म् की तरफ ले जाने वाली प्रक्रियायें ध्यान देने की हैं। उसमें गहरी सांस पहली प्रक्रिया है। सांस जितनी गहरी, जितनी लयबद्ध, जितनी संगीतपूर्ण होगी उतनी ही आपके भीतर जीवन-चेतना नाभि के आसपास विस्तृत होने लगेगी, फैलने लगेगी।

नाभि एक जीवित केन्द्र बन जाएगी और थोड़े ही दिनों में आपको अनुभव होने लगेगा कि नाभि से कोई शक्ति बाहर फिरने लगी। और थोड़े ही दिनों में आपको यह अनुभव होने लगेगा कि कोई शक्ति नाभि के करीब आकर खिंचने भी लगी। आप पायेंगे कि एक जीवंत (Living) केन्द्र नाभि के पास विकसित होना शुरू हो गया है। जैसे ही यह अनुभव होगा, और बहुत से अनुभव इसके आसपास प्रगट होने शुरू हो जाएंगे। शारीरिक रूप से नाभि के केन्द्र को विकसित करने के लिए सांस पहली चीज है। मानसिक रूप से कुछ गुण नाभि को विकसित करने में सहयोगी होते हैं जैसा कि मैंने सुबह आपसे कहा अभय उनमें से एक है। जितना आदमी भयभीत होगा उतना ही नाभि के निकट नहीं पहुँच पायेगा। जितना आदमी निर्भय होगा उतना ही नाभि के निकट पहुँचेगा। इसीलिए मेरा बच्चों की शिक्षा में अभय पर जोर है। कभी भूलकर बच्चे को मत कहना कि बाहर अंधेरा है, वहां मत जाओ। आपको पता नहीं आप उसके नाभिकेन्द्र को हमेशा के लिए नुकसान पहुँचा रहे हैं। जहां अंधेरा हो वहां बच्चों से कहना कि जरूर बाहर जाओ। बाहर अंधेरा तुम्हें बुलाता है। नदी पूर पर आयी हो तो बच्चों को मत कहना कि इसमें मत उतरो क्योंकि आपको पता नहीं, बाढ़ आयी नदी में जो

बच्चा उतरने की हिम्मत करता है उसका नाभि केन्द्र विकसित होता है और जो बच्चा नहीं उतरता है उसका नाभि केन्द्र कमजोर और क्षीण होता जाता है। बच्चे पहाड़ पर चढ़ते हों तो चढ़ने देना। बच्चे वृक्षों पर चढ़ते हों तो चढ़ने देना। जहां साहस और अभय उनको उपलब्ध होता हो वहां उनको जाने देना। अगर किसी कौम में दस पचास हजार बच्चे प्रतिवर्ष मर जायें--पहाड़ों पर चढ़ने में, नदियों में तैरने में, वृक्षों पर चढ़ने में--तो कोई हर्जा नहीं है। लेकिन अगर पूरी कौम के बच्चे भय से मर जायें और अभय से खाली हो जायें तो वह पूरी कौम जिन्दा दिखाई पड़ती है लेकिन वस्तुतः पूरी कौम मर गई होती है। हमारे देश में यह दुर्भाग्य घटित हुआ है। हम धर्म की बहुत बातें करते हैं, लेकिन साहस की जरा भी नहीं। और हमें यह पता ही नहीं है कि बिना साहस के कभी कोई धार्मिक होता ही नहीं। क्योंकि साहस के अभाव में जीवन के केन्द्रीय तत्त्व ही अविकसित रह जाते हैं। इतना साहस चाहिए कि मृत्यु के सामने कोई खड़ा हो सके। हमारी कौम धर्म की इतनी बातें करती है लेकिन मरने से हम इतना डरते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। होना उल्टा चाहिए कि जो लोग आत्मा को जानते हों पहचानते हों उनको मरने से बिल्कुल नहीं डरना चाहिए, क्योंकि मृत्यु है ही नहीं। लेकिन हम आत्मा की इतनी बातें करते हैं और मृत्यु से इस भांति डरते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। शायद हम आत्मा की इतनी बातें इसीलिए करते हों कि हम मृत्यु से डरते हैं। आत्मा की बातें करने से हमको राहत मिलती है कि आत्मा तो अमर है हम नहीं मरेंगे। शायद भय के कारण ही हम आत्मा की अमरता की बात करते हैं। सच्चाई कुछ ऐसी ही मालूम पड़ती है। तो जीवन में अभय विकसित होना चाहिए। अदम्य अभय विकसित होना चाहिए। और इसके लिए जीवन में जो भी खतरे के मौके हों उनका स्वागत करना चाहिए।

नीत्से से किसी ने पूछा था एक बार, कि हम अपने व्यक्तित्व

को कैसे विकसित करें ? तो उसने एक बड़ा अजीब सूत्र दिया, जिसका ख्याल भी नहीं आ सकता था। उसने कहा "खतरे में जियो ! (Live Dangerously !)" लेकिन हम तो सोचते हैं सुरक्षा (Security) में जियें। बैंक बैलेंस हो, मकान हो, कोई डर न हो, पुलिस वाले हों, फौज हो और हम चुपचाप उसके भीतर जियें। हमको पता ही नहीं है कि इस व्यवस्था और इस सुविधा जुटाने में हम मर ही गये हैं। जीने का कोई सवाल ही नहीं रहा। क्योंकि जीने का एक ही अर्थ है, खतरे में जीना। जीने का कोई दूसरा अर्थ होता ही नहीं। मुर्दे बिल्कुल सुरक्षित हैं। क्योंकि वे अब मर भी नहीं सकते हैं। उनको कोई मार भी नहीं सकता है। कब्रें बिल्कुल सुरक्षित हैं।

एक सम्राट ने महल बनवाया था और सुरक्षा की दृष्टि से उसने उस महल में एक ही दरवाजा रखा था। पड़ौस का सम्राट उसे देखने आया। देखकर बहुत खुश हुआ। उसने कहा ऐसा मकान तो मैं भी बनवाना चाहता हूं। यह तो बड़ी सुरक्षित जगह है। इसमें कोई शत्रु आ ही नहीं सकता। एक ही दरवाजा था और दरवाजे पर बहुत पहरेदार थे। फिर वह सम्राट बिदा होने लगा। रास्ते में भीड़ इकट्ठी हो गई। और जब उस सम्राट ने जाते वक्त कहा कि मैं बहुत खुश हुआ, मैं भी एक ऐसा मकान बनवाऊंगा तो एक बूढ़ा आदमी जो वहाँ खड़ा था, हँसने लगा। सम्राट ने पूछा, तुम क्यों हँसते हो ? उसने कहा, आप भी ऐसा ही मकान बनवायें तो एक गलती मत करना जो इन्होंने की है। सम्राट ने पूछा "कौन सी गलती ?" वह बूढ़ा बोला– यह एक दरवाजा भी मत रखना। सब दरवाजे बन्द कर देना। फिर आप खतरे के बिल्कुल बाहर हो जाएंगे। दीवार के अन्दर खतरे अनुपस्थित हो जाते हैं। और हम इस भय के न रह जाने को अभय समझ लेते हैं, यह गलती है। अभय, भय की अनुपस्थिति नहीं है। अभय, भय की उपस्थिति में कोई दूसरी ही घटना है जो भीतर घटती है। वह भय की अनुपस्थिति नहीं है। अभय भय की

उपस्थिति में सामना करने का साहस है। लेकिन यह हमारे जीवन में विकसित नहीं हो पाता है। मंदिरों में प्रार्थना करने से आप परमात्मा के निकट नहीं पहुंचेंगे। लेकिन जहाँ जीवन का भय आपको बुलाता हो, साहस बुलाता हो, जहाँ खतरे बुलाते हों वहाँ पहुंचने से जरूर परमात्मा के निकट पहुंचेंगे। खतरे में और असुरक्षा में आपके भीतर जो छिपा केन्द्र है, सोया हुआ, वह जागता है और सजग होता है। वहाँ उसे चुनौती मिलती है। वह केन्द्र नाभि का वहीं विकसित होता है। पुराने दिनों में संन्यासी ने यही असुरक्षा स्वीकार की थी। घर छोड़ दिया, इसलिए नहीं कि घर बुरे थे। पीछे पागल लोग यही समझने लगे कि घर बुरा था इसलिए छोड़ दिया। पत्नी बच्चे छोड़ दिये इसलिए नहीं कि पत्नी बच्चे जंजीर थे, गलत है यह बात। लेकिन जहाँ-जहाँ सुरक्षा थी, संन्यासी उसको छोड़ देता था। असुरक्षा में प्रवेश करता था। वहाँ प्रविष्ट होता था जहाँ कोई सहारा नहीं, जहाँ कोई मित्र नहीं, जहाँ कोई परिचित नहीं, जहाँ कोई अपना नहीं। जहाँ बीमारी होगी, मौत होगी, खतरे होंगे। एक पैसा पास नहीं—ऐसी असुरक्षा में प्रवेश करता था। तो वह जो असुरक्षा (insecurity) में जाता था वही संन्यासी था। लेकिन पीछे संन्यासियों ने भी बहुत अच्छी सुरक्षा कर ली। गृहस्थों से भी ज्यादा अच्छी सुरक्षा कर ली। गृहस्थ को बेचारे को कमाना पड़ता है, संन्यासी को कमाना भी नहीं पड़ता है। वे और भी सुरक्षित है। उनको तो मिल जाता है। उनको वस्त्र भी मिलते हैं, मकान भी मिलते हैं। कोई कमी उन्हें नहीं रही। सिर्फ फर्क यह पड़ा कि उन्हें यह बनाना भी नहीं पड़ता। बनाने की झंझट और असुरक्षा भी खत्म हो गई कि बना पायेंगे कि नहीं बना पायेंगे। उन्हें तो कोई न कोई बना देता है, कोई न कोई व्यवस्था जुटा देता है। तो संन्यासी और भी खूंटे से बंधा हुआ आदमी होगया। इसलिए संन्यासी हिम्मत नहीं करता। संन्यासी बहुत कमजोर मालूम होता है आज की दुनिया में। जरासी हिम्मत नहीं कर सकता। एक संन्यासी

कहता है "मैं जैन हूं"। एक संन्यासी कहता है 'मैं हिन्दू हूं'। एक संन्यासी कहता है 'मैं मुसलमान हूं'। संन्यासी भी हिन्दू, जैन और मुसलमान हो सकते हैं। संन्यासी तो सबका है। लेकिन सबका कहने में डर है। क्योंकि सबका कहने का मतलब कहीं यह न हो जाये कि किसी के हम नहीं हैं तो जो रोटी देते हैं, मकान बनाते हैं उनसे साथ छूट जाएगा। वे कहेंगे कि आप हमारे नहीं, सबके हैं तो सबके पास जायें। हम तो आप जैन साधु हो तो आप के लिए व्यवस्था करते हैं, हिन्दू साधु हो तो व्यवस्था करते हैं, मुसलमान साधु हो तो हम व्यवस्था करते हैं। हम तो मुसलमान हैं, हम मुसलमान साधुओं की ही व्यवस्था करते हैं। इसी डर से साधु कहता है कि हम मुसलमान हैं। साधु कहता है हम हिन्दू हैं। ये सुरक्षा की ही तलाश है। यह नये घर की खोज है। पुराना घर छोड़ा है, नया घर चाहिए। बल्कि अब तो हालत ऐसी है कि जो समझदार है और जिनको अच्छा घर चाहिए वे घर बनाते ही नहीं—संन्यासी हो जाते हैं। हम तो नासमझ हैं। अपना घर बनायें और पाप में भी पड़ें और नर्क में भी जाएँ। दूसरे से घर बनवा लें उसमें रहें भी, स्वर्ग भी जाने का मज़ा लें, पुण्य भी कमायें और झंझट से भी बचें। तो संन्यासियों ने एक अपने तरह की सुरक्षा खड़ी करली है। लेकिन मूलतः संन्यासी का अर्थ है खतरे में जीने की कामना। मूलतः अर्थ होता है—कोई छाया नहीं, कोई साथी नहीं। कल का कोई भरोसा नहीं।

क्राइस्ट एक बगिया के पास से निकलते थे। उन्होंने अपने मित्रों को कहा कि देखते हो इस बगिया में खिलते हुए फूलों को। उन्हें पता नहीं कि कल सूरज निकलेगा कि नहीं निकलेगा। इन्हें पता नहीं कि कल पानी मिलेगा कि नहीं मिलेगा, लेकिन आज अपने आनन्द में खिले हुए हैं। आदमी अकेला है जो कल की व्यवस्था आज ही कर लेता है। परसों की व्यवस्था भी कर लेता है। ऐसे भी आदमी हैं कि उनकी कब्र कैसी बने, इसका भी इन्तजाम कर लेते हैं। जो समझदार

हैं वे तो अपना स्मारक मरने के पहले ही बना लेते हैं। हम सब इन्तजाम कर लेते हैं और यह भूल ही जाते हैं कि कल का इन्तजाम जो आदमी आज कर लेता है वह आज को कल के इन्तजाम में ही खत्म कर देता है। कल फिर वह आने वाले कल का इन्तजाम करेगा और उसकी हत्या कर देगा। वह रोज आने वाले कल का इन्तजाम करेगा और आज की हत्या करता चला जाएगा। जबकि आज के अतिरिक्त कभी कुछ आता ही नहीं। कल कभी आता ही नहीं। जब भी आता है आज ही आता है। सुरक्षा खोजने वाले मन की प्रवृत्ति है कि वह आज की हत्या कर देता है कल के लिए। वर्तमान की हत्या करदेता है भविष्य के लिए और भविष्य कभी आता नहीं। कल कभी आता नहीं। आखिर में वह पाता है कि सारा जीवन उसके हाथ से निकल गया।

जो आज जीने की हिम्मत करता है और जो कल की फिक्र भी नहीं करता ऐसा आदमी खतरे में जी रहा है। कल अज्ञात है। किसी चीज का कोई भरोसा नहीं। आज जो पत्नी प्रेम करती है, हो सकता है कल प्रेम न करे। आज जो पिता प्रेम करता है, हो सकता है कल प्रेम न करे। कोई भरोसा है कल का? आज आप हैं कल आप न हों। आज कपड़े हैं, कल कपड़े न हों। कल की इस असुरक्षा (Insecurity) को जो पूरी तरह स्वीकार करता है उस आदमी के भीतर वह केन्द्र विकसित होना शुरू होता है जिसे मैं नाभि केन्द्र कह रहा हूं। उसके भीतर एक बल खड़ा होता, है एक ऊर्जा खड़ी होती है, एक वीर्य खड़ा होता है। उसके भीतर एक हिम्मत का सम्बल खड़ा होता है। उसी स्तम्भ के ऊपर जीवन आगे यात्रा करता है।

तो शारीरिक दृष्टि से श्वास और मानसिक दृष्टि से साहस ये दो बातें नाभि केन्द्र के विकास के लिए प्राथमिक रूप से जरूरी हैं।

जापान में इधर कोई सात आठ सौ वर्षों से एक अलग ही तरह के आदमी को पैदा करने की उन्होंने कोशिश की। उसे वे समुराई

कहते थे। वह साधु भी होता था और सैनिक भी होता था। यह बात बड़ी बेबूझ है, क्योंकि साधु और सैनिक का क्या सम्बन्ध? जापान में जो ध्यान के मंदिर थे वे भी बड़े अजीब थे। ध्यान के मंदिर जहां ध्यान सिखाया जाता था वहां युयुत्सु भी सिखाते, जुड़ो भी सिखाते, कुस्ती लड़ने की कला भी सिखाते, तलवार चलाना भी सिखाते, तीर चलाना भी सिखाते। अगर हम वहां जाकर देखते तो हैरान हो जाते कि ध्यान के मंदिर में तलवार चलाने की क्या जरूरत! और कुस्ती लड़ना सिखाने का क्या सम्बन्ध है ध्यान से! ध्यान के मन्दिर के सामने तलवारों के भी म्यान बने रहते हैं। बड़ी अजीब बात थी। लेकिन कुछ कारण था। जापान के साधकों ने धीरे-धीरे यह बात अनुभव की कि जिस साधक के जीवन में साहस और बल के पैदा होने की सम्भावना नहीं होती उस साधक का केवल मस्तिष्क ही रह जाता है। उसका कोई और गहरा केन्द्र विकसित नहीं होता। वह पंडित ही हो सकता है, साधु नहीं हो पाता। वह तथाकथित ज्ञानी हो सकता है कि उसे गीता भी मालूम है, कुरान भी मालूम है और बाइबिल भी मालूम है, उपनिषद् भी मालूम हैं। तोते की तरह उसे सब कंठस्थ है लेकिन जीवन का उसे कोई अनुभव नहीं होता।

अभी मेरे एक मित्र जापान से लौटे तो किसी ने उनको एक मूर्ति भेंट कर दी। वह उस मूर्ति को देख बड़े हैरान हुए। उनको वह मूर्ति बिल्कुल समझ में नहीं आ सकी कि यह मूर्ति कैसी है। वह लौटे तो मेरे पास मूर्ति लेकर आये और बोले कि किसी ने मुझे भेंट की तो मैं ले तो आया, लेकिन मैं बराबर सोचता रहा कि यह मूर्ति है कैसी? इसका मतलब क्या है? इस मूर्ति में एक सैनिक है और उसके हाथ में एक नंगी तलवार है। और जिस हाथ में नंगी तलवार है उस तरफ का चेहरा तलवार की चमक में चमक रहा है। चेहरे का वह हिस्सा ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे हो सकता है अर्जुन का रहा हो। उसके दूसरे हाथ में एक दिया है और दिये

की ज्योति उसके चेहरे के दूसरे हिस्से पर पड़ रही है। चेहरे का वह हिस्सा ऐसा मालूम होता है जैसे बुद्ध का रहा हो, महावीर का रहा हो, क्राइस्ट का रहा हो। एक हाथ में तलवार है और एक हाथ में दिया है। हमारी समझ में यह बात नहीं आती क्योंकि या तो हाथ में तलवार होना चाहिए या दिया होना चाहिए। दोनों चीजें एक ही आदमी के हाथ में कैसे हो सकती हैं? उनकी समझ में कुछ नहीं पड़ता था। उन्होंने आकर मुझे कहा कि मैं बड़ा हैरान हूँ। यह मामला क्या है? मैंने कहा, "यह जो दिया है यह उसी आदमी के हाथ में हो सकता है जिसके हाथ में तलवार हो। तलवार पकड़ने का, तलवार चलाने का सवाल नहीं है। तलवार तो कमजोर लोग चलाते हैं। लेकिन जिनकी जिंदगी एक तलवार हो जाती है वे तलवार नहीं चलाते। उन्हें तलवार चलाने की जरूरत नहीं रह जाती। उनकी पूरी जिंदगी एक तलवार होती है। हाथ में तलवार होने से यह मत समझ लेना कि वे तलवार चलाने वाले ही हैं। कि वे किसी की हत्या करेंगे, किसी को काटेंगे। हत्या तो वही करता है जो अपनी हत्या से डरता है, अन्यथा कोई हत्या नहीं करता। हिंसक तो सिर्फ भयभीत ही होता है और तलवार अहिंसक के हाथ में ही हो सकती है। असल में अहिंसक एक तलवार ही होता है। खुद एक तलवार होता है तो ही अहिंसक हो सकता है। और यह जो दिया है, यह जो शांति का दिया है, यह उसी के हाथ में शोभा पा सकता है जिसके प्राणों में वीर्य की तलवार पैदा हो गई हो। ऊर्जा की, शक्ति की तलवार पैदा हो गई हो।

जब एक तरफ व्यक्तित्व पूरी तरह शक्तिसत्ता से भर जाता है और दूसरी तरफ पूरी शान्ति से, तभी परिपूर्ण व्यक्तित्व (Integrated Personality) उत्पन्न होता है। अब तक दुनिया में दो ही तरह की बातें हुई हैं। या तो लोगों ने दिये हाथ में रख लिये हैं और बिल्कुल कमजोर हो गये हैं। इतने कमजोर कि उनका दिया भी कोई फूँक दे तो वह इन्कार भी नहीं कर सकते कि आप

हमारा दिया क्यों फूँक रहे हैं। वे सोचेंगे कि यह चला जाये तो हम फिर जला लेंगे, या नहीं भी गया तो अंधेरे में ही रह लेंगे। ऐसा भी क्या हर्जा है। झंझट कौन करे। तो एक ये दिया पकड़ने वाले लोग हैं जिनकी दिया बचाने की भी कोई सामर्थ्य नहीं है। भारत ऐसी ही कमजोर कौमों में से एक कमजोर कौम हो गई है। और यह कमजोर कौम इसलिए हुई कि हमने जीवन की शक्ति के वास्तविक केन्द्र विकसित नहीं किये। हमने केवल बुद्धि से गीता कंठस्थ करली और महावीर के वचन याद कर लिये और बैठकर व्याख्या करने लगे। गुरु शिष्य बैठे हैं और जमाने भर की फजूल की बातों पर चर्चा कर रहे हैं जिनका जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सारा मुल्क, पूरी की पूरी कौम इसीलिए कमजोर हो गई है, दीन हीन हो गई है, नपुंसक हो गई है। और दूसरी तरफ ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने दिये की फिक्र ही छोड़ दी, सिर्फ तलवार लेकर चलाने में लग गये। उनके पास दिया न होने से अंधेरे में दिखता नहीं कि वह किसको काट रहे हैं—अपने लोगों को काट रहे हैं कि दूसरे को काट रहे हैं। वे सिर्फ काटे चले जाते हैं। उनसे कोई दिया जलाने की बात कहे तो कहते हैं बकवास मत करो। जितनी देर में दिया जलायेंगे उतनी देर में और तलवार चला लेंगे। और जिस धातु से दिया बनायेंगे उससे एक तलवार और बन जायेगी। इतना तेल कौन खराब करे, इतनी धातु कौन खराब करे। जिन्दगी तो एक तलवार चलाना है। तो पश्चिम के लोग अंधेरे में ही तलवार चलाये जा रहे हैं और पूर्व के लोग बिना तलवार के दिया लिये बैठे हैं। वे दोनों ही रो रहे हैं। सारी दुनिया रो रही है। ठीक आदमी पैदा नहीं हो सका है। ठीक आदमी का जीवन तलवार भी होता है और शान्ति का दिया भी होता है, ये दोनों बातें जिस व्यक्तित्व में फलित होती हैं उस व्यक्ति को ही मैं योगी कहता हूँ, और किसी व्यक्ति को योगी नहीं कहता।

नाभि केन्द्र कैसे विकसित हो, इसके पहले सूत्र पर आज हमने बात की। इस सम्बन्ध में आपके मन में बहुत से प्रश्न उठे होंगे। उठने चाहिएँ। उन प्रश्नों पर रात की बैठक में बात कर सकूँगा।

तृतीय प्रवचन

नाभि-यात्रा के तीन चरण :
सम्यक् आहार, सम्यक् श्रम,
सम्यक् निद्रा

मनुष्य का जीवन कैसे आत्म-केन्द्रित हो, कैसे वह स्वयं का अनुभव कर सके, कैसे आत्म-उपलब्ध हो सके, इस दिशा में आज दिन की चर्चाओं में थोड़ी सी बात हुई है। कुछ बातें और पूछी गयी हैं। उन्हें समझाने के लिए मैं तीन सूत्रों पर और अभी आपसे बात करूंगा। जो प्रश्न आज की चर्चा से संबंधित हैं, उन्हें मैं तीन सूत्रों में बांटकर आपसे बात करता हूं।

पहली बात,–– मनुष्य स्वनिष्ठ, आत्मकेन्द्रित या नाभि के केन्द्र से जीवन की प्रक्रिया को कैसे शुरू करे ? तीन सूत्र महत्त्वपूर्ण हैं जिनके माध्यम से नाभि पर सोई हुई ऊर्जा जाग सकती है और नाभि के द्वार से मनुष्य शरीर से भिन्न जो चेतना है उसके अनुभव को उपलब्ध हो सकता है।

पहला सूत्र है सम्यक् व्यायाम। दूसरा सूत्र है सम्यक् आहार। और तीसरा सूत्र है सम्यक् निद्रा। जो व्यक्ति ठीक श्रम से, ठीक आहार से और ठीक निद्रा से वंचित हो जाता है वह कभी भी नाभिकेन्द्रित नहीं हो सकता है। और इन तीनों ही चीजों से मनुष्य जाति वंचित हो गयी है। मनुष्य अकेला प्राणी है जिसके आहार का कोई ठिकाना नहीं रहा। बाकी सब प्राणियों के आहार सुनिश्चित हैं। उनकी मूल प्रवृत्ति, उनकी प्रकृति निर्धारित करती है कि वे क्या खायें और क्या न खायें, कितना खायें और कितना न खायें और कब खायें और कब खाने से रुक जायें। लेकिन मनुष्य बिल्कुल ही अनिश्चित है। न तो उसकी प्रकृति कुछ कहती है कि वह क्या खाये। न तो उसका बोध कहता है कि वह कितना खाये। न उसकी समझ निर्धारण करती है कि वह कब खाये। ये कोई भी बातें निर्धारित न होने से मनुष्य का जीवन बहुत अनिश्चित दिशा में प्रवृत्त हुआ है। लेकिन थोड़ी भी समझ हो, थोड़े भी बुद्धिपूर्वक, थोड़े भी विचार से थोड़ी भी आँखें खोलकर आदमी जीना शुरु करे, तो आहार को सम्यक् कर लेना जरा भी कठिन नहीं

है। वह अत्यन्त आसान बात है। ज्यादा आसान उससे कोई बात नहीं हो सकती। सम्यक् आहार को दो तीन टुकड़ों में बाँटकर समझ लेना चाहिये।

पहली बात--मनुष्य क्या खाये, क्या न खाये? शरीर की सारी प्रक्रिया अत्यंत रासायनिक है। अगर एक आदमी के भीतर शराब डाल दी जाये तो शरीर उस रसायन के प्रति प्रवृत्त होगा-नशे से, मूर्छा से भर जायेगा। फिर चाहे वह व्यक्ति कितना ही स्वस्थ, कितना ही शांत क्यों न हो, नशे की रासायनिकता उसके शरीर पर परिणाम लायेगी चाहे वह व्यक्ति कितना साधु क्यों न हो, जहर उसे पिला दिया जाये तो उसकी मृत्यु हो जायेगी। सुकरात की मृत्यु जहर के पिला देने से हो गयी और गाँधी की मृत्यु एक गोली के मार देने से हो गयी। गोली यह नहीं देखती कि यह आदमी साधु है या असाधु है और जहर भी यह नहीं देखता कि यह आदमी सुकरात है या कोई साधारण जन। न नशे यह देखते हैं, न भोजन यह देखता है कि आप क्या हैं और कौन हैं। उसके तो सीधे सूत्र हैं। वह शरीर में जाकर काम करना शुरू कर देता है। ऐसा कोई भी भोजन, जो मादक है, मनुष्य की चेतना में बाधा डालना शुरू करता है। ऐसा कोई भी भोजन, जो उत्तेजक है, मनुष्य की चेतना को नुकसान पहुंचाना शुरू करता है। ऐसा कोई भी भोजन जो मनुष्य को किसी भी तरह की मूर्छा में, किसी भी तरह की तीव्रता में और किसी भी तरह के विक्षेप में ले जाता हो, उसे नुकसान पहुँचाता है। उस सबका अंतिम नुकसान और गहरे से गहरा नुकसान नाभिकेन्द्र पर पहुंचना शुरू हो जाता है। यह शायद आपको ख्याल में न हो, सारी दुनिया के प्राकृतिक चिकित्सक नैसर्गिक उपचार में मिट्टी की पट्टियों का, शाकाहारी भोजन का, हल्के भोजन का, पानी की पट्टियों का और टब बाथ का प्रयोग करते हैं। लेकिन किसी को भी अभी यह बात ख्याल में नहीं आयी है कि पानी की पट्टियों का या मिट्टी की पट्टियों का या टब बाथ का

जो परिणाम होता है वह पानी का उतना नहीं है, न मिट्टी का उतना है, बल्कि नाभि केन्द्र के ऊपर उनके जो प्रभाव होते हैं उनके कारण वे सारे परिणाम आते हैं। वे प्रभाव न तो मिट्टी के हैं उतने, न पानी के हैं, न टब बाथ के हैं। ये सारी चीजें नाभि केन्द्र की छिपी हुई ऊर्जा को इस भाँति प्रभावित करती हैं कि यदि वह जाग्रत हो जाये तो मनुष्य के जीवन में स्वास्थ्य का अवतरण शुरू हो जाता है। लेकिन उपचारकों को इसका कोई ख्याल नहीं है। वे सोचते हैं कि शायद मिट्टी की पट्टी चढ़ाने से यह फायदा हो रहा है, पानी में बिठाने से यह फायदा हो रहा है, पेट पर कपड़े की गीली पट्टी लगाने से यह फायदा हो रहा है। इनके फायदे हैं, लेकिन मौलिक फायदा तो नाभि केन्द्र की सुप्त ऊर्जा के जागरण से शुरू होता है। नाभि केन्द्र के ऊपर अगर गलत आहार, गलत भोजन लेकर अनाचार किया जाये तो वह धीरे-धीरे सुप्त होता है और उसकी ऊर्जा क्षीण हो जाती है। अन्ततः वह करीब करीब सो जाता है। उसका हमें पता ही नहीं चलता कि वह भी कोई केन्द्र है। हमें फिर दो ही केन्द्रों का पता चलता है। एक तो मस्तिष्क है, जहाँ विचार रहते हैं और एक हृदय है जहां थोड़ी सी भावनाएं दौड़ती रहती हैं। उससे नीचे हमारे कोई संबंध नहीं रह जाते। वहां तक अंतर्यात्रा करने के लिये वहां से संबंध जोड़ने के लिये पहला चरण है—सम्यक् आहार।

आहार में पहला ध्यान यह रखना है कि वह उत्तेजक न हो, मादक न हो और भारी न हो। ठीक भोजन के बाद आपको बोझिलता और भारीपन अनुभव नहीं होना चाहिए। लेकिन यदि भोजन के बाद भारीपन और बोझिलता अनुभव होती है। तो हम गलत भोजन कर रहे हैं यह हमें जान लेना चाहिये।

एक बहुत बड़े डाक्टर केनथवाकर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं अपने जीवनभर के अनुभव से यह कहता हूँ कि लोग जो भोजन करते हैं उसमें से आधे भोजन से उनका पेट भरता है और आधे

भोजन से डाक्टरों का पेट भरता है। अगर वे आधा भोजन ही करें तो वे बीमार ही नहीं पड़ेंगे और हम डाक्टरों की कोई खास जरूरत नहीं रह जायगी। कुछ लोग इसलिए बीमार रहते हैं कि उन्हें पूरी तरह भोजन नहीं मिलता और कुछ लोग इसलिए बीमार रहते हैं कि उन्हें ज्यादा भोजन मिल जाता है। कुछ लोग भूख से मरते हैं, कुछ लोग भोजन से मरते हैं। और भोजन से मरने वालों की संख्या भूख से मरने वालों की संख्या से हमेशा ज्यादा रही है। भूख से मरनेवाले बहुत कम लोग हैं। एक आदमी भूखा भी रहना चाहे तो कमसे कम तीन महीने तक उसके मरने की बहुत कम संभावना है। तीन महीने तक तो कोई भी आदमी भूखा रह सकता है। लेकिन एक आदमी अगर तीन महीने तक अति भोजन करे तो किसी हालत में जिन्दा नहीं रह सकता है। ऐसे-ऐसे लोग हुए हैं कि जिनका ख्याल ही हमें हैरानी से भर देता है। नीरो हुआ है एक बहुत बड़ा बादशाह। उसने दो डाक्टर लगा रखे थे कि वह भोजन करने के बाद उसे उल्टी करवा दें, ताकि दिन में वह पन्द्रह बीस बार भोजन करने का आनन्द ले सके। वह खाना खाता, फिर दवा देकर उल्टी करवा दी जाती ताकि वह बार बार भोजन का आनन्द ले सके।

हम भी क्या कर रहे हैं? उसने घर डाक्टर रख छोड़े थे, वह बादशाह था। हमने पड़ोस में बसा रखे हैं, हम बादशाह नहीं हैं। वह रोज उल्टी करवा लेता था, हम दो चार महीने में करवाते हैं लेकिन हम करते क्या हैं? हम गलत खाकर इकट्ठा कर लेते हैं, फिर डाक्टर उसको साफ करता है। फिर हम गलत खाना शुरु कर देते हैं। वह होशियार आदमी था, उसने रोज ही व्यवस्था कर ली थी। हम दो तीन महीने में करते हैं। अगर हम भी बादशाह होते तो हम भी ऐसा ही करते। यह हमारी मजबूरी है और हमारे पास इतनी सुविधा नहीं है इसलिए हम उतना नहीं कर पाते। नीरो पर हमें हंसी आती है लेकिन हम सब भी छोटी मोटी मात्रा में नीरो

से भिन्न नहीं हैं।

यह जो हमारी असम्यक् दृष्टि है भोजन के प्रति, यह भारी पड़ती जा रही है। यह बहुत महँगी पड़ती चली जा रही है। इसने हमें उस जगह पहुंचा दिया है जहाँ कि हम किसी तरह जिन्दा हैं। भोजन हमें स्वास्थ्य लाता हुआ मालूम नहीं पड़ता है, बल्कि बीमारी लाता हुआ मालूम पड़ता है। और जब भोजन ही बीमारी लाने लगे तो आश्चर्य की घटना शुरू हो गयी। यह वैसे ही है कि सुबह सूरज निकले और अंधकार हो जाये, यह उतनी ही आश्चर्य-जनक घटना है। लेकिन दुनिया के सारे चिकित्सकों का मत यह है कि आदमी की अधिकतम बीमारियां उसके गलत भोजन का परिणाम हैं। इस सम्बन्ध में बहुत बोध और होश से चलना चाहिए। पहली बात --प्रत्येक व्यक्ति को, साधक को यह ध्यान में रखना जरूरी है कि वह क्या खाता है, कितना खाता है और उसके परिणाम उसके शरीर पर क्या हैं? और अगर एक आदमी दो चार महीने ध्यानपूर्वक प्रयोग करे तो वह अपने योग्य, अपने शरीर को समता और शांति और स्वास्थ्य देने वाले भोजन की तलाश जरूर कर लेगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन हम ध्यान ही नहीं देते हैं, इसलिये हम कभी तलाश ही नहीं कर पाते। हम कभी खोज ही नहीं कर पाते।

दूसरी बात हम जो भोजन करते हैं उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि हम उसे किस भाव दशा में करते हैं। आप क्या खाते हैं यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना यह महत्वपूर्ण है कि आप किस भावदशा में खाते हैं। आप हर्ष और आनंद से खाते हैं या दुखी उदास या चिन्ता से भरे हुए खाते हैं। अगर आप चिन्ता से खा रहे हैं तो श्रेष्ठतम भोजन के परिणाम भी विषैले होंगे, जहरीले होंगे। और अगर आप आनन्द से खा रहे हैं तो कई बार सम्भावना ऐसी है कि जहर भी आप पर पूरे परिणाम न ला पाये। आप कैसे खाते हैं, कैसी चित्तदशा में? यह अत्यंत महत्वपूर्ण है।

रूस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक था—पावलाव (Pavlov) उसने जानवरों पर कुछ प्रयोग किये और वह जिन नतीजों पर पहुँचा वे बड़े हैरानी के हैं। वह कुछ बिल्लियों पर प्रयोग कर रहा था। उसने एक बिल्ली को भोजन दिया और उसके सामने एक्स-रे मशीन लगा दी जिससे वह पता कर सके कि बिल्ली के पेट में भोजन जाने के बाद क्या क्या हुआ। भोजन पेट में गया और भोजन के जाते ही पेट ने उस भोजन को पचाने वाले रस छोड़े। तभी एक कुत्ते को भी खिड़की के भीतर ले जाया गया। बिल्ली देखकर डर गयी और उसके भीतर रस छूटने बन्द हो गये। पेट बन्द हो गया, सिकुड़ गया फिर कुत्ते को बाहर निकाल दिया गया, लेकिन ६ घंटे तक पेट उसी हालत में पड़ा रहा। फिर भोजन के पचने की क्रिया शुरू नहीं हुई और ६ घंटे में भोजन सब शांत हो गया। ६ घंटे के बाद जब रस छूटने शुरू हुए तो वह भोजन सब ठण्डा हो चुका था। उस भोजन को पचाना कठिन हो गया यह इसलिए हुआ क्यों कि कुत्ते की मौजूदगी से बिल्ली के मन में चिन्ता पकड़ गई और पेट ने अपना काम बन्द कर दिया।

हमारी हालत क्या होगी? हम तो चिन्ता में ही चौबीस घंटे जीते हैं। हम जो भोजन करते हैं वह कैसे पच जाता होगा! यह बिल्कुल चमत्कार है। हमारे बावजूद ही यह होता होगा। हमारी कोई इच्छा उसके पचाने की नहीं है। वह कैसे पच जाता है यह बिल्कुल आश्चर्य है। होना तो यह चाहिए कि भोजन करते वक्त हमारी भाव दशा आनन्दपूर्ण और प्रसादपूर्ण हो, लेकिन हमारे घरों में हमारी भोजन की जो टेबल है या हमारे जो चौके हैं वह सबसे ज्यादा विषाक्तपूर्ण अवस्था में हैं। पत्नी दिनभर प्रतीक्षा करती है कि पति कब घर खाने आ जाय। चौबीस घंटे का जो भी रोग और बिमारी इकट्ठी हो गई है वह पति की थाली पर ही उसकी निकलती है और उसे पता नहीं कि वह दुश्मन का काम कर रही है। उसे पता नहीं पति की

थाली में जहर डाल रही है। पति भी घबराया हुआ, दिन भर की चिन्ता से भरा हुआ किसी तरह भोजन को पेट में डालकर हट जाता है। उसे पता नहीं कि भोजन एक अत्यन्त प्रार्थनापूर्ण कृत्य था जो उसने इतनी जल्दी में किया है और भाग खड़ा हुआ है। यह कोई ऐसा कृत्य नहीं था कि वह जल्दी में किया जाये। यह उसी तरह किये जाने योग्य था जैसे कोई मंदिर में प्रवेश करता है। जैसे कोई प्रार्थना करने बैठता है। जैसे कोई वीणा बजाने बैठता है। जैसे कोई किसी से प्रेम करता है और उसे एक गीत सुनाता है। यह उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण था। वह शरीर के लिए भोजन पहुँचा रहा था। यह अत्यन्त आनन्द की भावदशा में ही पहुँचाया जाना चाहिए। यह एक प्रेमपूर्ण और प्रार्थनापूर्ण कृत्य होना चाहिये। जितने आनन्द, जितनी निश्चिन्तता और जितने उल्लास से भरी भावदशा में कोई भोजन ले सकता है, उतना ही उसका भोजन सम्यक् होता चला जाता है। हिंसक भोजन यही नहीं है कि कोई आदमी माँसाहार करता हो, हिंसक भोजन यह भी है कि कोई आदमी क्रोध से आहार करता हो। ये दोनों ही समान रूप से हिंसक (Violent) हैं। क्रोध से भोजन करते वक्त, दुख और चिन्ता में भोजन करते वक्त, आदमी हिंसक आहार ही कर रहा है। वह जब किसी और का माँस लेकर खा लेता है तब तो हिंसक होता ही है, लेकिन जब क्रोध और चिन्ता में उसका अपना ही माँस भीतर जलता है तब वह जो भोजन कर रहा है वह भी अहिंसक नहीं हो सकता है। वहाँ भी हिंसा मौजूद है।

सम्यक् आहार का दूसरा हिस्सा है कि आप अत्यन्त शांत अत्यन्त आनन्दपूर्ण अवस्था में भोजन करें और अगर ऐसी अवस्था न मिल पाये तो उचित है कि थोड़ी देर भूखे रह जायें और अवस्था की प्रतीक्षा करें। जब मन पूरा तैयार हो तभी भोजन पर उपस्थित होना चाहिए। कितनी देर मन तैयार नहीं होगा? मन के तैयार होने का अगर ख्याल हो तो वह तैयार हो जाता है। आखिर कितनी देर भूखे रहेंगे?

मन को तैयार होना पड़ेगा। मन तैयार हो जाता है लेकिन हमने कभी उसकी फिक्र नहीं की। हमने भोजन को एक यांत्रिक क्रिया (Mechanical process) बना रखा है कि शरीर में भोजन डाल लेना है और बस उठ जाना है। वह कोई मानसिक प्रक्रिया (Psychological process) नहीं रही है। यह घातक बात है। शरीर के तल पर आहार स्वास्थ्यपूर्ण हो, अनुत्तेजना पूर्ण हो और अहिंसक हो। चित्त के तल पर आनन्दपूर्ण चित्त की दशा हो, प्रसादपूर्ण और प्रसन्न मन हो और आत्मा के तल पर कृतज्ञता का बोध हो, धन्यवाद का भाव हो। ये तीनों बातें भोजन को सम्यक् बनाती हैं। मुझे जो उपलब्ध हुआ है यह बहुत बड़ी धन्यता है। मुझे एक दिन और जीने को मिला है यह बहुत बड़ा अनुग्रह है। आज सुबह मैं फिर जीवित उठ आया हूं। आज फिर सूरज ने रोशनी दी है। आज फिर चांद मुझे देखने को मिलेगा। आज मैं फिर जीवित हूं। जरूरी नहीं था कि मैं आज जीवित ही होता। आज मैं कब्र में भी हो सकता था लेकिन आज मुझे फिर जीवन मिला है और मेरे द्वारा कुछ भी कमाई नहीं की गई है जीवन पाने को। जीवन मुझे मुफ्त में मिला है। इसके लिए कम से कम धन्यवाद का भाव मन में होना चाहिए। भोजन हम कर रहे हैं, पानी हम पी रहे हैं, सांस हम ले रहे हैं, इस सबके प्रति अनुग्रह का बोध होना चाहिए। समस्त जीवन के प्रति, समस्त जगत के प्रति, समस्त सृष्टि के प्रति, समस्त प्रकृति के प्रति, परमात्मा के प्रति एक अनुग्रह का बोध होना चाहिए कि मुझे एक दिन और जीवन का मिला है। मुझे एक दिन और भोजन मिला। मैंने दिन और सूरज देखा। मैंने आज और फूल खिले देखे। आज मैं और जीवित था।

रवीन्द्रनाथ की मृत्यु आयी, उसके दो दिन पहले उन्होंने कहा—हे परमात्मा मैं कितना अनुगृहीत हूँ कैसे कहूँ! तूने मुझे जीवन दिया जिसे पाने की कोई भी पात्रता मुझ में नहीं थी। तूने मुझे सांस दी

जिसको पाने का अधिकार नहीं था। तूने मुझे सौन्दर्य के, आनन्द के अनुभव दिये जिनके लिये मैंने कोई भी कमाई नहीं की थी। मैं धन्य हुआ। तेरे अनुग्रह के बोझ से डूब गया हूँ। और अगर तेरे इस जीवन में मैंने कोई दुःख पाया हो, कोई पीड़ा पाई हो, कोई चिन्ता पाई हो तो वह मेरी भूल रही होगी। तेरा जीवन तो बहुत-बहुत आनन्दपूर्ण था। वह मेरी ही कोई भूल रही होगी। मैं नहीं कहता कि मुझे जीवन से मुक्ति दे दे। अगर तू मुझे योग्य समझे तो बार-बार मुझे जीवन में भेजते रहना। तेरा जीवन अत्यन्त आनन्दपूर्ण था और मैं अनुग्रहीत हूँ।

यह जो भाव है, यह तो कृतज्ञता का भाव है वह समस्त जीवन के साथ संयुक्त होना चाहिए। आहार के साथ तो विशेषरूप से, तभी आहार सम्यक हो सकता है।

दूसरी बात है सम्यक श्रम। वह भी जीवन से विच्छिन्न हो गया है। वह भी अलग हो गया है। श्रम एक शर्म की बात हो गई है। पश्चिम के एक विचारक अल्वेयर कामू ने अपने एक पत्र में मज़ाक में लिखा है कि एक ज़माना ऐसा आयेगा कि लोग अपना प्रेम भी नौकर के द्वारा करवा लेंगे। अगर किसी को किसी से प्रेम हो जाएगा तो एक नौकर लगा देंगे बीच में कि तू मेरी तरफ से प्रेम कर। यह सम्भावना किसी दिन घट सकती है। क्योंकि और सब हम दूसरे से करवाना शुरू कर ही दिये हैं, सिर्फ प्रेम भर एक बात रह गई है जो हम खुद करते हैं। प्रार्थना हम दूसरे से करवाते हैं। एक पुरोहित को रख लेते हैं और कहते हैं हमारी तरफ से प्रार्थना कर दो, हमारी तरफ से यज्ञ कर दो। मंदिर में एक पुजारी पाल लेते हैं और उससे कहते कि तुम हमारी तरफ से पूजा कर देना। प्रार्थना और पूजा भी हम नौकरों से करवा लेते हैं। जब परमात्मा से प्रेम का कृत्य हम नौकरों से करवा लेते हैं तो कोई बहुत कठिन नहीं है कि किसी दिन समझदार आदमी अपना प्रेम भी नौकरों से करवा लें। इसमें कौन ही कठि-

नाई है। और जो नौकरों से नहीं करवा सकेंगे वे लज्जित होंगे कि हम गरीब आदमी हैं। हमको खुद ही अपना प्रेम करना पड़ता है। ठीक भी है यह सम्भव हो सकता है। क्योंकि जीवन में और बहुत कुछ महत्वपूर्ण है जो हमने नौकरों से करवाना शुरू कर दिया है। हमें इस बात का पता ही नहीं है कि उसको खो कर हमने बहुत कुछ खो दिया है। मनुष्य का शरीर, मनुष्य के प्राण किसी विशिष्ट श्रम के लिये निर्मित हैं और उस सारे श्रम से उसे खाली छोड़ दिया गया है। सम्यक श्रम मनुष्य की चेतना और ऊर्जा को जगाने के लिए अनिवार्य हिस्सा है।

अब्राहिम लिंकन एक दिन सुबह-सुबह अपने घर बैठा जूते पर पालिश करता था। उसका एक मित्र आया और उस मित्र ने कहा, "लिंकन यह क्या करते हो? तुम खुद ही अपने जूते पर पालिश करते हो?" लिंकन ने कहा "तुमने मुझे बड़ी हैरानी में डाल दिया। तुम क्या दूसरों के जूतों पर पालिश करते हो? मैं तो अपने ही जूते पर पालिश कर रहा हूँ। तुम क्या दूसरों के जूते पर पालिश करते हो?" उसने कहा, "नहीं, नहीं मैं तो दूसरों से करवाता हूँ।" लिंकन ने कहा, "दूसरों के जूतों पर पालिश करने से बुरी बात यह है कि तुम किसी आदमी से जूते की पालिश करवाओ।"

इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि जीवन से सीधा सम्बन्ध हम खो रहे हैं। जीवन के साथ हमारे सीधे सम्बन्ध श्रम के सम्बन्ध हैं। प्रकृति के साथ हमारे सीधे सम्बन्ध श्रम के सम्बन्ध हैं। कन्फ्यूसियस के जमाने में कोई तीन हजार वर्ष पहले कन्फ्यूसियस एक गाँव में घूमने गया था। उसने एक बगीचे में एक माली को देखा। एक बूढ़ा माली कुएँ से पानी खींच रहा है। बूढ़े माली का कुएं से पानी खींचना बड़ा कष्टपूर्ण है। जहाँ बैल लगाये जाते हैं वहाँ बूढ़ा लगा हुआ है और उसका जवान लड़का लगा है। दोनों पानी खींच रहे हैं। वह बूढ़ा बहुत वृद्ध है। कन्फ्यूसियस को

ख्याल हुआ कि क्या इस बूढ़े को अब तक पता नहीं है कि बैल या घोड़ों से पानी खींचा जाने लगा है। यह खुद ही खींच रहा है। यह कहाँ के पुराने ढंग को अख्तियार किये हुए है। तो वह बूढ़े आदमी के पास गया और उससे बोला कि मेरे मित्र क्या तुझे पता नहीं है, नई ईजाद हो गई है। लोग घोड़े और बैलों को जोतकर पानी खींचते हैं। तुम खुद लगे हुए हो? उस बूढ़े ने कहा धीरे बोलो, धीरे बोलो! मुझे तो कुछ खतरा नहीं है लेकिन मेरा जवान लड़का न सुन ले। कन्फ्यूसियस ने कहा तुम्हारा मतलब? उसने कहा—"मुझे सब ईजाद का पता है, लेकिन सब ईजाद आदमी को श्रम से दूर करने वाले हैं। और मैं नहीं चाहता कि मेरा लड़का श्रम से दूर हो जाय। क्योंकि जिस दिन वह श्रम से दूर होगा उसी दिन जीवन से भी दूर हो जाएगा।"

जीवन और श्रम समानार्थक हैं। जीवन और श्रम एक ही अर्थ रखते हैं, लेकिन धीरे-धीरे हम उनको धन्यभागी कहने लगे हैं जिनको श्रम नहीं करना पड़ रहा है और उनको अभागे कहने लगे हैं जिनको श्रम करना पड़ता है। और यह हुआ भी। एक अर्थ में बहुत से लोगों ने श्रम करना छोड़ दिया तो कुछ लोगों पर बहुत श्रम पड़ गया। बहुत श्रम प्राण ले लेता है। कम श्रम भी प्राण ले लेता है। इस लिए मैंने कहा सम्यक श्रम। श्रम का ठीक-ठीक विभाजन। हर आदमी के साथ में श्रम होना चाहिए और जितनी तीव्रता और जितने आनन्द से और जितने अहोभाव से कोई आदमी श्रम के जीवन में प्रवृत्त होगा उतना ही पायेगा कि उसकी जीवन धारा मस्तिष्क से उतर कर नाभि के करीब आनी शुरू हो गई है। क्योंकि श्रम के लिए मस्तिष्क की कोई जरूरत नहीं होती। श्रम के लिए हृदय की भी कोई जरूरत नहीं होती। श्रम तो सीधे नाभि से ही ऊर्जा ग्रहण करता है और निकलता है। ठीक आहार के साथ-साथ, थोड़ा श्रम अत्यन्त आवश्यक है। और यह इसलिए नहीं कि यह किसी और के हित में है कि आप

गरीब की सेवा करें तो गरीब के हित में है। या आप जाकर गाँव में खेती बारी करें तो यह किसानों के हित में है, या आप कोई श्रम करेंगे तो बहुत बड़ी जीवन सेवा कर रहे हैं। झूठी हैं ये बातें। ये सीधे आपके हित में हैं। किसी और के हित का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी और का हित इससे हो जाय वह बिल्कुल दूसरी बात है लेकिन मूलतः यह आपके हित में है।

चर्चिल रिटायर हो गया था। एक मित्र उससे मिलने उसके घर गये। वह अपनी बगिया में उस बुढ़ापे में भी खोदकर कुछ पौधे लगा रहा था। मित्र ने उससे कुछ राजनीतिक प्रश्न पूछे। चर्चिल ने कहा, 'छोड़ो भी। वह बात खत्म हो गई। अगर अब मुझसे कुछ पूछना है तो दो चीजों के बाबत पूछ सकते हैं। अगर बाइबिल के बाबत कुछ पूछना है तो घर में पढ़ता हूँ और बागवानी के सम्बन्ध में कुछ पूछना है तो इधर मैं बागवानी करता हूँ। बाकी अब राजनीति के सम्बन्ध में मुझे कोई मतलब नहीं है। हो गया वह दौर खत्म। अब मैं श्रम कर रहा हूँ और प्रार्थना कर रहा हूँ।' लौटकर मुझसे कहने लगे कि मेरी कुछ समझ में नहीं आया कि चर्चिल कैसा है। मैं सोचता था कुछ उत्तर देगा। उसने कहा अब मैं श्रम कर रहा हूँ और प्रार्थना कर रहा हूँ। मैंने उससे कहा, उसने एक ही शब्द पुनरुक्त किया। श्रम और प्रार्थना एक ही अर्थ रखते हैं। दोनों पर्यायवाची हैं। जिस दिन श्रम प्रार्थना हो जाता है और जिस दिन प्रार्थना श्रम बन जाता है उस दिन सम्यक श्रम उपलब्ध होता है।

थोड़ा श्रम अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन श्रम की तरफ हमारा ध्यान नहीं गया। भारत के संन्यासियों का भी ध्यान नहीं गया क्योंकि उन्होंने श्रम से अपने हाथ खींच लिये। श्रम करने का उन्हें सवाल नहीं था। वे दूर हट गये। धनपति इसलिए दूर हट गया कि उसके पास धन था, वह श्रम खरीद सकता था। संन्यासी इसलिए दूर हट

गये कि उन्हें संसार से कुछ लेना-देना नहीं था। उन्हें कुछ पैदा नहीं करना था। उन्हें पैसा नहीं कमाना था। उन्हें श्रम की जरूरत न थी। परिणाम यह हुआ कि समाज के दो आदरणीय वर्ग श्रम से दूर हट गये। फिर श्रम जिनके हाथ में रहा वे धीरे-धीरे अनादरणीय हो गये। श्रम का साधक की दृष्टि से अत्यन्त बहुमूल्य अर्थ और उपादेयता है। इसलिए नहीं कि उससे आप कुछ पैदा कर लेंगे, बल्कि इसलिए कि जितना आप श्रम में प्रवृत्त होंगे आपकी चेतन धारा केन्द्रीय होने लगेगी और मस्तिष्क से नीचे उतरनी शुरू हो जाएगी। उत्पादक भी हो श्रम यह भी जरूरी नहीं है। अनुत्पादक भी हो सकता है। लेकिन कुछ श्रम शरीर की पूरी स्फूर्ति और प्राणों की पूरी सजगता के लिए और चित्त की पूरी जागृति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह दूसरा हिस्सा है। लोग इस हिस्से को भी भूल सकते हैं। जिस तरह भोजन के हिस्से में भूल होती है या तो कोई कम भोजन करता है या कोई ज्यादा भोजन कर लेता है। वैसी भूल यहाँ भी हो सकती है। या तो कोई श्रम ही नहीं करता है या फिर ज्यादा श्रम कर सकता है। पहलवान ज्यादा श्रम कर लेते हैं। वह रुग्ण अवस्था है। पहलवान कोई स्वस्थ आदमी नहीं है। पहलवान शरीर पर अत्यन्त भार डाल रहा है और शरीर के साथ बलात्कार कर रहा है। शरीर के साथ बलात्कार किया जाय तो शरीर के कुछ अंग, कुछ स्नायु अधिक विकसित हो सकते है। लेकिन कोई पहलवान ज्यादा नहीं जीता। कोई पहलवान स्वस्थ नहीं मरता। यह आपको पता है कि चाहे गामा हो चाहे सैंडो हो चाहे दुनिया के कोई बड़े से बड़े पहलवान हों वे सब अस्वस्थ मरते हैं, जल्दी मरते हैं और खतरनाक बीमारियों से मरते हैं। शरीर के साथ बलात्कार स्नायुओं (Muscles) को फुला सकता है। शरीर को दर्शनीय बना सकता है, प्रदर्शनी के योग्य बना सकता है लेकिन प्रदर्शनी और जिन्दगी में बड़ा फर्क है। स्वस्थ जीने में और प्रदर्शन

योग्य होने में बड़ा फर्क है। तो न तो कम और न ज्यादा, हर व्यक्ति को खोज लेना चाहिए अपने योग्य, अपने शरीर के योग्य कि वह कितना श्रम करे कि ज्यादा स्वस्थ और ताजा जी सके। जितनी ताजगी होगी, जितनी भीतर स्वस्थ हवा होगी, जितनी साँस आनन्द-पूर्ण होगी उतना ही जीवन आन्तरिक होने में सक्षम होता है।

सैमनवेग, एक फ्रेंच वैचारिका ने एक बड़ी अद्‌भुत बात अपनी आत्म-कथा में लिखी है। उसने लिखा है कि मैं तीस वर्ष की उम्र तक हमेशा बीमार थी। मेरे सिर में दर्द था, मैं अस्वस्थ थी। लेकिन यह तो मुझे चालीस साल की उम्र में पता चला कि मैं तीस साल तक साथ-साथ नास्तिक भी थी। और जब मैं स्वस्थ हुई तो मुझे पता नहीं कि मैं कब आस्तिक हो गई। और यह तो बाद में सोचने पर मुझे दिखाई पड़ा कि मेरी नास्तिकता का सम्बन्ध भी मेरी बीमारी और रुग्णता से था।

जो आदमी रुग्ण और बीमार है वह परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भरा हुआ नहीं हो सकता। उसके मन में कृतज्ञता नहीं हो सकती परमात्मा के प्रति। उसके मन में क्रोध ही होता है और जिसके प्रति क्रोध हो उसको स्वीकार करना असम्भव है। जिसके प्रति क्रोध हो वह तो न हो यही भावना होती है। अगर जीवन ठीक श्रम और ठीक व्यायाम पर एक विशिष्ट स्वास्थ्य के संतुलन को नहीं पाता है तो आपके चित्त में जीवन के मूल्यों के प्रति एक निषेध का भाव (Negative value) एक विरोध का भाव, एक विद्रोह का भाव होना स्वाभाविक है। सम्यक् श्रम परम आस्तिकता की सीढ़ियों में एक अनिवार्य सीढ़ी है।

तीसरी बात है सम्यक निद्रा। भोजन अव्यवस्थित हुआ है, श्रम अराजक हो गया है और निद्रा की तो बिल्कुल ही हत्या की गई है। मनुष्य जाति की सभ्यता के विकास में सबसे ज्यादा जिस चीज को हानि पहुँची है वह निद्रा है। जिस दिन से आदमी ने प्रकाश

की ईजाद की है उसी दिन से निद्रा के साथ उपद्रव शुरू हो गया है। फिर जैसे-जैसे आदमी के हाथ में साधन आते गये उसे ऐसा लगने लगा कि निद्रा एक अनावश्यक बात है, समय खराब होता है, जितनी देर हम निद्रा में रहते हैं समय फजूल गया। तो जितनी कम नींद से चल जाय उतना अच्छा है, क्योंकि नींद का भी कोई जीवन की गहरी प्रक्रियाओं में दान (contribution) है। यह हमारे ख्याल में नहीं आता। लगता है कि नींद का समय तो व्यर्थ गया, जितने कम सोयें उतना अच्छा है। जितनी जल्दी नींद से निपटारा हो जाय उतना अच्छा है। एक तरफ इस तरह के लोग थे जिन्होंने नींद को कम करने की दिशा शुरू की और दूसरी तरफ साधू संन्यासी थे जिनको ऐसा लगा कि नींद जो है, मूर्छा जो है वह शायद आत्म-ज्ञान और आत्म अवस्था की उल्टी अवस्था है। तो निद्रा लेना ठीक नहीं है। जितनी कम नींद ली जाय उतना ही अच्छा है। और भी साधुओं को एक कठिनाई थी कि उन्होंने चित्त में बहुत से दमन (Suppressions) इकट्ठे कर लिये। नींद में उनके दमन, उनको उठकर दिखाई पड़ने लगे। दमन की हुई बातें सपने में आने लगीं तो नींद से एक भय पैदा हो गया। नींद में वे सारी बातें आने लगीं जिनको दिन में वे दूर रखे रहे। जिन स्त्रियों को छोड़कर वे जंगल में भाग आये नींद में वे स्त्रियां मौजूद होने लगीं। वे सपने में दिखाई पड़ने लगीं। जिस ढंग को, जिस यश को छोड़कर वे चले आये सपने में वह उनका पीछा करने लगा। तो उन्हें ऐसा लगा कि नींद तो बड़ी खतरनाक है। हमारे वश के बाहर है। तो जितनी कम नींद हो उतना अच्छा है। तो साधुओं ने सारी दुनिया में एक हवा पैदा की कि नींद कुछ गैर आध्यात्मिक (Unspiritual) बात है। एक तरफ वे लोग थे जिन्होंने नींद का विरोध किया, क्योंकि उन्हें ऐसा लगा कि फजूल है नींद, इतना सोने की क्या जरूरत है? जितनी देर हम जागेंगे उतना ही ठीक है। ये गणित और हिसाब जोड़ने

वाले लोग बड़े अद्भुत हैं। उन्होंने हिसाब लगा लिया कि एक आदमी आठ घंटे सोता है तो समझो कि दिन का तिहाई हिस्सा सोने में चला गया। अब एक आदमी अगर साठ साल जीता है तो बीस साल तो फजूल गये। बीस साल बिल्कुल बेकार चले गये। साठ साल की उम्र चालीस साल ही रह गई। फिर उन्होंने और हिसाब लगा लिये। उन्होंने हिसाब लगा लिये कि एक आदमी कितनी देर में खाना खाता है, कितनी देर में कपड़े पहनता है, कितनी देर में दाढ़ी बनाता है, कितनी देर स्नान में लगाता है। सब हिसाब लगाकर उन्होंने बताया कि इस तरह तो सब जिन्दगी बेकार चली जाती है। दिखाई पड़ा कि आदमी अगर साठ साल जिया तो बीस साल नींद में चले गये, कुछ साल भोजन में चले गये, कुछ स्नान करने में चले गये, कुछ अखबार पढ़ने में चले गये। सब बेकार चला गया। जिन्दगी में कुछ बचा नहीं। तो उन्होंने एक घबराहट पैदा कर दी कि जिसको जितनी जिन्दगी बचानी हो उतनी इनमें कटौती करो। नींद सबसे ज्यादा समय ले लेती है आदमी का तो इसमें कटौती करो। इस तरह उन्होंने सारी दुनिया में एक नींद विरोधी हवा फैला दी। दूसरी तरफ साधु-संन्यासियों ने कह दिया कि नींद गैर आध्यात्मिक है। कम से कम सोओ। वही उतना ज्यादा साधु है जो जितना कम सोये, बल्कि न सोये तो परम साधु है। इन दो बातों ने नींद की हत्या की और नींद की हत्या के साथ ही मनुष्य के जीवन के सारे गहरे केन्द्र हिल गये, अव्यवस्थित हो गये। हमें पता ही नहीं चला कि मनुष्य के जीवन में जितना अस्वास्थ्य आया, जितना असंतुलन आया उसके पीछे निद्रा की कमी काम कर गयी। जो आदमी ठीक से नहीं सो पाता वह आदमी ठीक से जी ही नहीं सकता। निद्रा फजूल नहीं है, ८ घंटा व्यर्थ नहीं जा रहा है, बल्कि ८ घंटे आप सोते हैं इसलिए आप १६ घंटे जाग पाते हैं, नहीं तो आप १६ घंटे जाग भी नहीं सकते। ८ घंटे में जीवन ऊर्जा इकट्ठी होती है,

प्राण पुनरुज्जीवित होते हैं। आपके मस्तिष्क और हृदय के केन्द्र शान्त हो जाते हैं और इस बीच नाभि के केन्द्र से जीवन चलता है। निद्रा में आप वापस प्रकृति और परमात्मा के साथ एक हो गये होते हैं इसलिए पुनरुज्जीवित होते हैं। अगर किसी आदमी को सताना हो, परेशान करना हो तो उसे नींद से रोकना सबसे बढ़िया तरकीब है। यह तरकीब हजार साल पहले ईजाद की गयी और उससे आगे नहीं बढ़ा जा सका अब तक। अभी भी रूस में या हिटलर ने जर्मनी में जिन कैदियों को सताया, उनमें सबसे ज्यादा सताने की तरकीब जो काम में लायी गयी वह नींद है। सोने मत दो किसी को——बस जिन्दगी में इतना टार्चर पैदा हो जाता है जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि सो कर ही वह जो खोया है वह वापस पाता है और अगर न सो पाया तो खोता चला जाता है और वापस कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। वह रिक्त और खाली हो जाता है! हम सब करीब-करीब खाली जैसे लोग हैं क्योंकि उपलब्ध करने के द्वार हमारे बन्द और खोने के द्वार हमारे बढ़ते चले गये हैं। नींद वापस लौटाना जरूरी है। और अगर सौ दो सौ वर्षों के लिए सारी दुनिया में कोई कानूनी व्यवस्था की जा सके कि आदमी को मजबूरी में सो ही जाना पड़े, कोई और उपाय न रहे तो मनुष्य जाति के मानसिक स्वास्थ्य के लिए इससे बड़ा कोई कदम नहीं उठाया जा सकना। साधक के लिए तो बहुत ध्यान देना जरूरी है। वह ठीक से सोये और काफी सोये। यह भी समझ लेना जरूरी है कि सम्यक निद्रा हर आदमी के लिए अलग होगी, सभी आदमियों के लिए बराबर न होगी क्योंकि हर आदमी के शरीर की जरूरत अलग है। बच्चा जब माँ के पेट में होता है, चौबीस घंटे सोता है। क्योंकि उस वक्त बच्चे के सब स्नायु बन्द होते हैं। पूरी तरह नींद की जरूरत है। चौबीस घंटे सोया रहेगा तो ही ठीक से शरीर उसका विकसित हो पायेगा। जो बच्चे लंगड़े लूले पैदा हो जाते हैं या काने या बहरे, हो सकता है

बीच-बीच में जाग जाते हों और कोई गड़बड़ी हो जाती हो। हो सकता है किसी दिन विज्ञान इस बात को समझ पाये कि जो बच्चे माँ के पेट में ही किसी तरह से जाग जाते हैं वे बच्चे अपंग हो जायेंगे, उनके कोई अंग विकसित होने से रह जायेंगे। चौबीस घंटे पेट में सोये रहना जरूरी है क्योंकि पूरी तरह शरीर निर्मित होता है, तब शरीर विकसित होता है। नींद बहुत गहरी जरूरी है, तभी शरीर की सारी क्रियायें काम करती हैं। जब बच्चा पैदा होता है तो वह बीस घंटे सोता है। अभी उसका शरीर बन रहा है। फिर वह १८ घंटे सोता है, फिर १४ घंटे सोता है। अभी उसका शरीर बन रहा है। जैसे-जैसे उसका शरीर परिपक्व होता चला जाता है वैसे-वैसे नींद कम हो जाती है। आखिर में वह आठ घंटे और ६ घंटे करीब स्थिर हो जाती है। फिर बूढ़े आदमी की नींद कम हो जाती है और पाँच घंटे, चार घंटे के करीब रह जाती है क्योंकि बूढ़े आदमी के शरीर में फिर बनने का उपक्रम बन्द हो जाता है। उसे वापस रोज उतनी नींद की आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि अब उसकी मृत्यु करीब आ रही है। अगर वह उतना ही सोता रहे जितना बच्चा सोता है तो बूढ़ा आदमी भी मर नहीं सकता है, मरना मुश्किल हो जायगा। मरने के लिए जरूरी है कि नींद कम होती चली जाय और जीवन के लिए जरूरी है कि नींद गहरी हो। इसीलिए बूढ़ा आदमी क्रमशः कम सोने लगता है। बच्चा ज्यादा सोता है। लेकिन अगर बूढ़े बच्चे के साथ भी वही व्यवहार करें जो खुद के साथ करते हैं तो खतरा हो जाता है और बूढ़े अक्सर यही करते हैं। बूढ़े बच्चे को भी बूढ़ा समझकर व्यवहार करते हैं। उनको भी उठाते हैं कि उठो! तीन बज गये, चार बज गये, उठो! उनको पता नहीं कि तुम बूढ़े हो, तुम चार बजे उठ गये हो, यह बिल्कुल ठीक है लेकिन बच्चे चार बजे नहीं उठ सकते और उठाना गलत है। बच्चे की शरीर की प्रक्रियाओं को नुकसान पहुँचता है। बच्चों के साथ बहुत

अहितकर है यह बात।

एक बच्चा मुझसे कह रहा था कि मेरी मां भी बड़ी अजीब है। जब रात को मुझे नींद नहीं आती है तो जबरदस्ती मुझे सुलाती है और जब मुझे नींद आती है सुबह तो जबरदस्ती मुझे उठाती है। मेरी कुछ समझ में नहीं आता है कि जब मुझे नींद नहीं आती है तब मुझे सुलाया जाता है और जब मुझे नींद आती है तब मुझे उठाया जाता है? वह मुझसे बोला कि मेरी मां को आप समझा दें। दुनियां को आप समझाते हैं। मेरी मां की भी समझ में कुछ आ जाय। वह उल्टा ही क्यों करती है।

बच्चों के साथ बूढ़ों जैसा व्यवहार निरन्तर होता है और फिर किताबों में लिखे हुए, बंधे हुए सूत्र हैं, उनके अनुसार हम जीने लगते हैं। आपको शायद पता न हो, नवीनतम खोजबीन यह कहती है कि हर आदमी के लिए उठने का समय भी एक नहीं हो सकता। जैसा कि हमेशा से कहा जाता है कि पांच बजे उठना सबके हित में है, यह बिल्कुल ही अवैज्ञानिक और गलत है। सबके हित में नहीं है, कुछ लोगों के हित में हो सकता है, कुछ लोगों के अहित में हो सकता है। चौबीस घंटे में कोई तीन घंटे के लिए हर आदमी के शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। जिन तीन घंटों में तापमान नीचे गिरता है वे ही तीन घंटे उसके लिए सबसे गहरी नींद के घंटे होते हैं। अगर उन तीन घंटों में उसे उठा दिया जाय तो उसका दिन भर खराब हो जायगा। उसकी सारी ऊर्जा अस्त व्यस्त हो जायगी। आमतौर से ये घंटे रात्रि को दो और पांच के बीच के होते हैं। अधिकतम लोगों के ये तीन घंटे रात के दो बजे से लेकर पांच बजे के बीच में होते हैं लेकिन सभी के नहीं होते हैं। किन्हीं का ६ बजे तक तापमान नीचे होता है। किन्हीं का सात बजे तक तापमान नीचे होता है। किन्हीं का चार बजे तापमान वापस ऊपर लौटना शुरू होता है। तो इस तापमान के बीच में अगर कोई उठ जायगा तो उसके चौबीस घंटे खराब होंगे और उसके दुष्परिणाम होंगे। जब उसका तापमान फिर से उठने लगता है, गिरा हुआ तापमान वापस उठने लगता है, तभी

उठने का वक्त है। आमतौर से यह ठीक है कि आदमी सूरज उगने के साथ उठ आये क्योंकि सूरज के उगने के साथ ही सबका तापमान बढ़ना शुरू हो जाता है। लेकिन कुछ इसके अपवाद भी होते हैं जिनके लिए हो सकता है कि सूरज उगने के थोड़ी देर बाद तक लेटा रहना जरूरी हो क्योंकि हर आदमी के शरीर का तापमान अलग क्रम से अलग मात्रा से उठता है। तो हर आदमी को यह देख लेना चाहिए कि जितनी देर सोने के बाद उठने पर उसे स्वस्थ्य मालूम होता है, वही उसके लिए नियम है चाहे शास्त्र कुछ भी कहते हों, गुरु कुछ भी बताते हों, किसी की सुनने की जरा भी जरूरत नहीं है।

सम्यक निद्रा के लिए जितनी ज्यादा से ज्यादा, गहरी और लम्बी नींद ले सकें वह लेना उचित है लेकिन नींद लेने को कह रहा हूं, बिस्तर पर पड़े रहने को नहीं कह रहा हूं। बिस्तर पर पड़े रहना नींद नहीं है और जब आपके लिए स्वास्थ्यपूर्ण मालूम पड़े तभी उठना आपके लिए नियम है। आमतौर से सूरज के उगने के साथ यह घटना घटनी चाहिए, लेकिन हो सकता है, कुछ को न घटती हो तो उसमें घबराने की, चिन्तित होने की और अपने को पापी समझने की और नर्क चले जाने के डर की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि कई जल्दी उठने वाले भी नर्क चले जाते हैं और कई देर से उठने वाले भी स्वर्ग में निवास करते हैं। इससे कोई सम्बन्ध आध्यात्मिकता और गैर आध्यात्मिकता का नहीं है। लेकिन सम्यक निद्रा (Right Sleep) का जरूर सम्बन्ध है। हर व्यक्ति को अपना आयोजन खोज लेना चाहिए। एक तीन महीने तक हर व्यक्ति को श्रम पर, निद्रा पर, आहार पर प्रयोग करने चाहिएं और देखना चाहिए कि उसके लिए सर्वाधिक स्वास्थ्यपूर्ण, सर्वाधिक शांतिपूर्ण, सर्वाधिक आनन्दपूर्ण कौन से सूत्र हो सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने सूत्र खोज लेने चाहिएं। कोई दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं इसलिए कोई सामान्य नियम सभी के लिए कभी लागू नहीं होता है। और जब भी कोई सामान्य नियम लागू करने की कोशिश करता

है तो उसके दुष्परिणाम होते हैं। एक-एक व्यक्ति अनूठा और अद्वितीय है। उस जैसा वही है, उस जैसा कोई दूसरा आदमी जमीन पर कहीं भी नहीं है इसलिए कोई नियम उसके लिए नियम नहीं हो सकता है जब तक कि वह स्वयं अपनी जीवन प्रक्रिया से नियम को न खोज ले। किताबें, शास्त्र और गुरु इसीलिए खतरनाक सिद्ध होते हैं क्योंकि उनके पास तैयार सूत्र (Ready made Formula) होते हैं। वे बता देते हैं कि इतने बजे उठना चाहिए, यह खाना चाहिए; यह नहीं खाना चाहिए, ऐसा सोना चाहिए, ऐसा करना चाहिए। ये बने बनाए सूत्र खतरनाक हैं। वे समझने के लिए ठीक हैं लेकिन हर आदमी को अपने जीवन में, अपनी व्यवस्था खोजनी पड़ती है। हर आदमी को साधना का पथ स्वयं चलकर निर्मित करना होता है। कोई राजपथ नहीं है जो बना बनाया है, जिस पर आप गये और चलने लगे, ऐसा कहीं कोई राजपथ नहीं है। साधना बिल्कुल पगडंडी की भांति है और वह भी ऐसी पगडंडी की भांति, जो पहले से तैयार नहीं है, आप जितना चलते हैं, उतनी ही तैयार होती है और जितना आप चल लेते हैं उतनी आगे की समझ बढ़ जाती है और आगे के लिए निर्मित हो जाती है।

तो यह तीन सूत्र ध्यान में ले लेने जरूरी हैं—सम्यक आहार, सम्यक श्रम और सम्यक निद्रा। अगर इन तीन सूत्रों पर ठीक से, जीवन की गति हो तो वह जिसे मैं नाभि केन्द्र कह रहा हूं, जोकि आत्मिक जीवन का द्वार है, उसके खुलने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है। और वह द्वार खुल जाय, उस द्वार के निकट पहुंच जायें तो एक बहुत ही अभिनव घटना घटती है जिसका हमें सामान्य जीवन में कोई भी अनुभव नहीं है।

सांझ को मैं यहां से गया और एक मित्र मिले और उन्होंने कहा कि आप कहते हैं वह तो ठीक है लेकिन जब तक हमें संतोष न मिल जाय, बड़ा मुश्किल है। मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। वे शायद सोचते हों कि मेरे कहने से संतोष मिल जायगा तो बिल्कुल गलती में हैं और समय खराब कर रहे हैं। अपनी तरफ से जो मुझे मेहनत करनी है वह मैं

कर देता हूं लेकिन आपकी तरफ करने को उससे बहुत बड़ी मेहनत शेष रह जाती है। वह अगर आप नहीं करते हैं तो मेरे कहने का कोई प्रयोजन नहीं, कोई अर्थ नहीं। मुझे निरन्तर लोग कहते हैं कि हम शांति चाहते हैं, आनन्द चाहते हैं, आत्मा चाहते हैं। आप तो सब चाहते हैं, लेकिन चाहने से जगत में कुछ भी नहीं मिलता है। अकेली चाह बिल्कुल नपुंसक (Impotent) है। चाह के पीछे संकल्प और श्रम भी तो चाहिए। आप चाहते हैं सो तो ठीक है लेकिन उस चाह के लिए आप कितना श्रम करते हैं, उस चाह के लिए आप कितने कदम उठाते हैं, आप क्या करते हैं अपनी चाह के लिए? मेरे हिसाब में तो आप चाहते हैं इसका एक ही सबूत है कि आप उस चाह के लिए क्या करके बताते हैं। नहीं तो कोई सबूत नहीं है कि आप चाहते भी हैं। जब कोई आदमी किसी चीज को चाहता है तो उसके लिए कुछ श्रम करके दिखाता है। वह श्रम ही इस बात की गवाही होता है कि उस आदमी ने चाहा है। लेकिन आप कहते हैं कि चाहते तो हम हैं लेकिन उसके लिए कोई श्रम और संकल्प हमारे ख्याल में नहीं है।

अन्त में एक बात और दोहरा दूं। तीन केन्द्रों की मैंने बात कही है—बुद्धि का केन्द्र मस्तिष्क, भाव का केन्द्र हृदय, और नाभि? नाभि किस का केन्द्र है? विचार का केन्द्र है मस्तिष्क, भाव का केन्द्र है हृदय, लेकिन नाभि किस का केन्द्र है? नाभि संकल्प (will power) का केन्द्र है। नाभि जितनी सजग होगी, उतना ही संकल्प तीव्र होगा, उतनी ही करने की दृढ़ता और बल और आत्मऊर्जा उपलब्ध होगी। या इससे उल्टा सोच लें। जितना आप संकल्प करेंगे, जितना करने पर बल देंगे उतना ही आपकी नाभि का केन्द्र विकसित होगा। ये दोनों अंतर्निर्भर हैं, ये एक-दूसरे से संबंधित बातें हैं। जितना आप विचार करेंगे, उतनी बुद्धि विकसित होगी। जितना आप प्रेम करेंगे, उतना हृदय विकसित होगा। जितना आप संकल्प करेंगे, उतना आपकी अन्तंऊर्जा का केन्द्रीय चक्र, वह जो केन्द्रीय कमल है नाभि का, विकसित होगा।

एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।

एक अंधा फकीर एक गांव में भीख मांग रहा था। उसके पास आंख तो थी नहीं, भीख मांगते हुए वह एक मस्जिद के द्वार पर पहुंच गया। मस्जिद के द्वार पर उसने हाथ फैलाया और मांगा कि मुझे कुछ मिल जाय, मैं भूखा हूं। पास से निकलते हुए लोगों ने कहा कि पागल! यह ऐसा घर नहीं है जहां भीख मिल सके। यह तो मस्जिद है, यह तो मन्दिर है। यहां कोई रास्ता नहीं, तू कहां भीख मांग रहा है, यहां कुछ भी नहीं मिलेगा, आगे बढ़। वह फकीर हंसने लगा और उसने कहा अगर भगवान के घर से कुछ नहीं मिलेगा तो फिर किस घर से मिलेगा? यह तो अंतिम घर आ गया, भूल से मैं अंतिम मकान के सामने आ गया। मैं यहां से कैसे हटूं और हटूं तो कहां जाऊं, क्योंकि इसके आगे कोई घर नहीं है। अब मैं यहीं रुक जाऊंगा और यहां से लेकर ही हटूंगा। लोग हंसने लगे, उन्होंने कहा पागल, यहां कोई रास्ता नहीं, तुझे देगा कौन? उसने कहा, यह सवाल नहीं है। लेकिन भगवान के घर से अगर खाली हाथ लौटना पड़ेगा तो फिर हाथ कहां भरे जा सकेंगे, फिर तो कहीं हाथ नहीं भरे जा सकेंगे। अब आ ही गया हूं इस द्वार पर तो हाथ भर के ही लौटूंगा। वह वहीं रुक गया और एक वर्ष तक उसके हाथ वैसे ही फैले रहे और गांव के लोग उसे पागल कहने लगे। कहने लगे कि तू नासमझ है, कहां हाथ फैलाये हुए बैठा है? यहां कुछ भी मिलने को नहीं है। लेकिन वह फकीर भी एक ही था, वह बैठा ही रहा, बैठा ही रहा और एक वर्ष बीत जाने के बाद उस गांव के लोगों ने देखा कि शायद उस फकीर को कुछ मिल गया है। उसके चेहरे की रौनक बदल गयी है। उसके आस पास एक शांति की हवा उठने लगी, उसके आस-पास एक रोशनी खड़ी हो गयी, एक सुगन्ध बहने लगी। वह आदमी नाचने लगा। उसकी आंखों में जहां आंसू थे वहां मुस्कुराहट आ गयी। वह जैसे मुर्दा था, इस एक वर्ष में उसके प्राण फिर से खिल उठे। वह नाचने लगा। लोगों ने पूछा कि क्या

तुम्हें मिल गया? उसने कहा कि यह असम्भव था कि न मिलता क्योंकि मैंने तय ही कर लिया था कि या तो मिलेगा और या फिर मैं नहीं रह जाऊंगा। जो मैंने चाहा था वह उपलब्ध हो गया है और मैंने तो शरीर के लिए रोटी चाही थी और मुझे आत्मा के लिए भी रोटी मिल गयी है। मैंने तो शरीर की भूख मिटानी चाही थी और मेरी आत्मा की भी भूख मिट गयी है। लोग पूछने लगे कि तुझे मिला कैसे, तूने कैसे पाया? उसने कहा, मैंने कुछ भी नहीं किया लेकिन मैंने अपने प्रयास के पीछे अपने पूरे संकल्प को खड़ा कर दिया। अगर प्यास है तो उसके साथ पूरा संकल्प भी चाहिए। मेरा पूरा संकल्प साथ था मेरी प्यास पूरी हो गयी। मैं उस जगह पहुंच गया जहां वह पानी मिल जाता है जिसके पीने से कोई प्यास नहीं रह जाती।

संकल्प का अर्थ है जो हम चाहते हैं, जो हमें ठीक दिखायी पड़ता है, जो हमें मालूम होता है कि रास्ता है, उस पर चलने का आत्मबल जुटाना, साहस जुटाना और दृढ़ता जुटानी। अगर वह नहीं हो सकती तो मेरे कहने से या किसी के कहने से कुछ भी नहीं हो सकता है। अगर मेरे कहने से होता तब तो बड़ी आसान बात थी। दुनिया में बहुत लोग हो चुके हैं जिन्होंने बहुत अच्छी बातें कहीं हैं। अब तक सारी दुनिया को सब कुछ हो गया होता। लेकिन न महावीर कुछ कर सकते हैं, न क्राइस्ट, न कृष्ण, न मुहम्मद। कोई कुछ नहीं कर सकता है जब तक कि आप ही करने को तैयार न हों। गंगा बही जाती है, सागर भरे पड़े हैं लेकिन आपके हाथ में पात्र ही नहीं है और आप चिल्लाते हैं कि मुझे पानी चाहिए। गंगा कहती है, पानी है लेकिन पात्र कहां है? आप कहते हैं कि पात्र की बात मत करो, तुम तो गंगा हो इतना पानी है तुममें, इसमें तो कुछ हमें दे दो। गंगा के द्वार बन्द नहीं हैं, गंगा के द्वार खुले हैं लेकिन पात्र तो चाहिए। संकल्प का पात्र जहां नहीं है वहां साधना की कोई तृप्ति, कोई संतोष कभी उपलब्ध नहीं होता है।

मेरी बातें इतनी शांति से सुनी। आज हमारी पहले दिन की तीन

बैठकें पूरी होती हैं। अब इस बैठक के बाद हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे—एक दस मिनट के लिए। पहले समझ लें और फिर हम रात्रि का ध्यान करेंगे। सुबह का ध्यान तो बैठकर करने के लिए है। सुबह तो जीवन उठता है, जागता है इसलिए बैठकर ध्यान करना उपयोगी है। रात्रि का ध्यान तो आप बिस्तर पर जब सोने चले जाते हैं तभी बिस्तर पर सो कर ही करने का है और फिर उसके बाद चुपचाप सो जाना है। वह अंतिम है, सुबह का ध्यान प्रथम है। सोने के पहले अगर ठीक से ध्यान में उतरा जाय तो सारी नींद परिवर्तित हो जाती है। आपकी पूरी नींद ध्यान बन सकती है क्योंकि नींद के कुछ नियम हैं। इनमें पहला नियम यह है कि रात्रि में जो हमारा अंतिम विचार होता है वह हमारी निद्रा में केन्द्रीय होता है और वही सुबह उठने पर हमारा प्रथम विचार होता है। रात्रि में सोते समय चित्त में जो अंतिम विचार होता है वह निद्रा में केन्द्रीय हो जाता है और सुबह उठते वक्त पहला विचार वही होता है। तो रात अगर आप क्रोध में सो गये हैं तो रात भर आपके सपने, आपका चित्त, क्रोध के आस-पास मंडराता रहेगा और सुबह जब आप उठेंगे तो आप पायेंगे कि पहला भाव क्रोध ही है। रात भर हम संजोते हैं उसे जिसे हम रात लेकर सो जाते हैं इसलिए मेरा कहना है कि रात अगर कुछ लेकर ही सोना है तो ध्यान को लेकर सो जाना चाहिए ताकि रात आपकी नींद ध्यान के आस-पास, उसी शांति के आस-पास मंडराती रहे। धीरे-धीरे आप कुछ ही दिनों में पायेंगे, सपने शून्य हो जाते हैं, नींद गहरी हो जाती है और सुबह जब आप उठते हैं इस ध्यानयुक्त गहरी निद्रा के बाद तो जो पहला ख्याल होता है वह भी शांति का, आनन्द का और प्रेम का ही होगा।

सुबह की यात्रा शुरू करनी है सुबह के ध्यान से और रात्रि की यात्रा शुरू करनी है रात्रि के ध्यान से। रात्रि का ध्यान बिस्तर पर लेट कर करने का है। यहां हम प्रयोग के लिए अभी लेटकर शुरू करेंगे।

लेटकर तीन बातें ध्यान में लेनी हैं। पहली बात, शरीर को बिल्कुल ही शिथिल छोड़ देना है जैसे शरीर में कोई प्राण ही न हो। इतना ढीला, इतना ढीला छोड़ देना है जैसे कोई प्राण नहीं है और तीन मिनट तक मन में यह भाव करते रहना है कि मेरा शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है। जैसे जैसे मन भाव करेगा, शरीर वैसे-वैसे शिथिल होता चला जायगा। शरीर बिल्कुल सेवक है, अनुगामी है। हम जो भी भाव करते हैं, शरीर वही करता है। अगर आप क्रोध से भरते हैं, शरीर पत्थर उठा लेता है, आप प्रेम से भरते हैं, शरीर किसी को हृदय से लगा लेता है। आप जो चाहते हैं, जो होना चाहते हैं, मन में भीतर उसका विचार उठता है और शरीर क्रिया में उसे परिवर्तित कर देता है। हम रोज देखते हैं यह चमत्कार घटते हुए कि भीतर विचार उठता है और शरीर उसे रूपान्तरण दे देता है। हमने कभी शिथिल होने का विचार ही नहीं किया अन्यथा शरीर बिल्कुल शिथिल भी हो जाता। शरीर तो इतना शिथिल हो जाता है कि पता ही नहीं चलता है कि शरीर है भी या नहीं। थोड़े दिन के प्रयोग से यह हो जाता है। तो तीन मिनट यह सोचते रहना है, भाव करते रहना है। अभी तो मैं आपको सुझाव देता हूं ताकि आपको ख्याल में आ जाय। जब मैं सुझाव दूं कि शरीर शिथिल हो रहा है तो आप मन में वही भाव करते जायेंगे कि शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है, और शरीर शिथिल हो जायगा। शरीर के शिथिल होते ही सांस शांत हो जायगी। शांत होने का मतलब बन्द नहीं, लेकिन धीमी, आहिस्ता और गहरी हो जायगी। फिर तीन मिनट तक मन में भाव करना है कि मेरी सांस भी शांत होती जा रही है। तब धीरे धीरे सांस भी बिल्कुल शांत और सम हो जाती है। इन तीनों का सम्बन्ध है, जब शरीर शिथिल होगा तो सांस अपने आप शांत हो जायगी और जब सांस शांत होगी तो मन अपने आप शांत होगा। तो पहले हम शरीर पर शिथिलता का भाव करेंगे, उससे सांस शांत होगी। फिर सांस की शिथिलता का भाव

करेंगे, उससे मन शांत होगा और फिर तीसरा सुझाव मैं आपको दूंगा कि अब आपका मन शांत और शून्य होता जा रहा है। ऐसा थोड़ी-थोड़ी देर तीनों सुझावों को करने के बाद दस मिनट के लिए मैं कहूंगा कि अब मन बिल्कुल शांत हो गया है तो जैसे हम सुबह बैठे रहे थे वैसा ही चुपचाप शांत होकर लेटे रहेंगे।

कुत्ते की आवाज आयेगी, कोई पक्षी चिल्लायेगा, कोई और कुछ आवाज होगी उसे चुपचाप सुनते रहना जैसे कोई सूना कमरा हो, कोई आवाज आती हो, गूंजती हो और चली जाती हो। न तो उस आवाज के लिए यह सोचना है कि यह मुझे क्यों सुनायी दे रही है, न यह सोचना है कि कुत्ता क्यों भूंक रहा है क्योंकि आपका कुत्ते से कोई सम्बन्ध नहीं है। आपको कोई सोचने की जरूरत नहीं है कि क्यों भूंक रहा है। या हम ध्यान कर रहे हैं, यह दुष्ट हमारे पीछे क्यों पड़ा हुआ है इससे भी कोई सम्बन्ध नहीं है। उस कुत्ते को आपका बिल्कुल पता नहीं कि आप ध्यान कर रहे हैं। उसे कोई मालूम नहीं है इसका, वह बिल्कुल अनजान है, वह अपने काम में लगा हुआ है। आपसे कुछ लेना देना नहीं है, वह भूंक रहा है उसे भूंकने देना है। वह विघ्न नहीं है आपके लिए जब तक आप उसे विघ्न न बना लें और वह बाधा तब बनता है जब आप प्रतिरोध करते हैं, जब आप यह चाहते हैं कि कुत्ता न भूंके तब परेशानी शुरू हो जाती है। लेकिन कुत्ता भूंक रहा है तो जरूर भूंकेगा, हम ध्यान कर रहे हैं, हम जरूर ध्यान करें। इन दोनों में कोई झगड़ा नहीं है, कोई विरोध नहीं है। आप शांत रहें, कुत्ते की आवाज आयेगी, निकलेगी और चली जायगी।

मैं एक छोटे से गांव में ठहरा हुआ था। एक छोटे से विश्राम गृह में। एक राजनीतिक नेता भी मेरे साथ ठहरे हुए थे। रात उस रेस्ट हाउस में न मालूम क्या हुआ कि गांव भर के कुत्ते जैसे इकट्ठे हो गये, वे बहुत चिल्लाने लगे। वह नेता बहुत परेशान हो गये। वह उठकर मेरे कमरे में आये और कहा कि आप सो गये हैं क्या? मैं तो बड़ी

मुश्किल में पड़ा हुआ हूं। इन कुत्तों को मैं दो बार भगा आया हूं लेकिन ये वापस लौट आते हैं। मैंने कहा, 'किसी को भी भगाइये वह हमेशा वापस लौट आयेगा। भगाने में यही गलती हो जाती है कि जिसको हम भगाते हैं वह समझता है कि हमारी कोई जरूरत है, हमसे कोई मतलब है, हमारा कोई महत्व है इसलिए हमें भगाया जा रहा है। कुत्ता भी बेचारा कुत्ता ही तो है। वे समझ गये होंगे कि आपको कोई जरूरत है, आप उन्हें कुछ महत्व देते हैं तो वे लौट आते हैं। और कुत्तों को तो कोई खबर नहीं है कि यहां कोई नेता ठहरे हुए हैं कि वे आपके लिए चिल्लाते हों। आदमी तो हैं नहीं कि आदमी को पता चल जाय तो नेता के आस-पास इकट्ठे हो जाते हैं। अभी कुत्ते में इतनी अक्ल नहीं आयी कि नेता आ जाय तो इकट्ठे हो जायें। कुत्ते रोज ही यहां आते होंगे। आप यह व्यर्थ का अपने मन में भाव न लें कि मेरे महत्व के कारण यहां ये सब इकट्ठे हो गये हैं। उनको बिल्कुल पता भी नहीं होगा। रह गयी आपके न सोने की बात तो कुत्ते आपको नहीं जगा रहे हैं, आप खुद ही जागे जा रहे हैं। आप व्यर्थ ही यह सोच रहे हैं कि कुत्ते को नहीं भूंकना चाहिए। आपको क्या हक है? कुत्ते को भूंकने का हक है, आपको सोने का हक है। इसमें दोनों में कोई विरोध नहीं है। इनमें कोई कटाव नहीं है। कुत्ते भूंकते रहेंगे, आप सोते चले जायेंगे। न कुत्ते यह कह सकते हैं कि आप मत सोइए, हमारे भूंकने में बाधा पड़ती है, न आप कह सकते हैं। तो मैंने उनसे कहा कि आप स्वीकार कर लें कि कुत्ते भूंक रहे हैं और चुपचाप सुनें, अस्वीकार छोड़ दें। स्वीकार कर लें और स्वीकार करते ही आप पायेंगे कि कुत्तों का भूंकना भी एक संगीतपूर्ण लयबद्धता में परिवर्तित हो जाता है।

फिर वे पता नहीं कब सो गये। सुबह उठकर उन्होंने कहा, पता नहीं, मैं सच में हैरान रह गया। जब कोई रास्ता नहीं रहा, पहले तो आपकी बात मुझे नहीं जंची। मेरी बात एकदम से किसी को भी नहीं जंचती है। उनको भी नहीं जंची लेकिन जब कोई रास्ता ही नहीं रहा

और मजबूरी आ गयी और देखा कि अब कोई उपाय नहीं है, या तो नींद खराब करूं या आपकी बात मानूं, दो ही विकल्प रह गये हैं। तो फिर मैंने सोचा कि अब कुत्ते की तरफ तो मैंने ध्यान दे लिया, अब आपकी बात पर भी ध्यान देकर देख लूं तो फिर मैं चुपचाप लेट गया और सुनता रहा और मैंने स्वीकार कर लिया। और मुझे पता नहीं कब नींद आ गयी और कुत्ते पता नहीं कब तक भूंकते रहे और कब बन्द हो गये। मैं सचमुच पूरी तरह रात ही सो पाया।

आप विरोध न करें, जो भी चारों तरफ है उसे चुपचाप सुनते रहें। यह जो चुपचाप सुनते रहना है, यह बड़ी अद्भुत बात है, यह जो अप्रतिरोध (Non-resistance) है, यह जो अविरोध है जीवन के प्रति वही ध्यान में जाने का सूत्र है। तो पहले हम शिथिल होंगे, फिर हम अविरोध के भाव में चुपचाप सुनते रहेंगे। यह प्रकाश बुझा दिया जायगा ताकि आपको ख्याल न रह जाय कि दूसरे लोग मौजूद हैं। क्योंकि कुत्ते को भूलना आसान है, पास पड़ौस के आदमियों को भूलना और भी कठिन है।

चतुर्थ प्रवचन

साक्षात्कार के सूत्र : अभय,
अप्रतिबंध, अनिर्णय

मनुष्य का मन, उसका मस्तिष्क एक रुग्ण घाव की तरह निर्मित हो गया है। वह स्वस्थ केन्द्र नहीं है। वह एक अस्वस्थ फोड़े की भांति हो गया है और इसीलिए हमारा सारा ध्यान मस्तिष्क के आस-पास ही घूमता रहता है। शायद आपको यह ख्याल न आया हो कि शरीर का जो अंग रुग्ण हो जाता है उसी अंग के आस पास हमारा ध्यान घूमता रहता है। अगर पैर में दर्द हो तो ही पैर का पता चलना शुरू होता है और पैर में दर्द न हो तो पैर का कोई भी पता नहीं चलता। हाथ में फोड़ा हो तो उस फोड़े का पता चलता है। फोड़ा न हो तो हाथ का कोई पता नहीं चलता है। हमारा मस्तिष्क जरूर किसी न किसी रूप में रुग्ण हो गया है क्योंकि चौबीस घंटे हमें मस्तिष्क का ही पता चलता है और किसी चीज का कोई पता नहीं चलता।

शरीर जितना स्वस्थ होगा, उतना ही उसका बोध नहीं होगा। जो अंग अस्वस्थ होता है, उसी का बोध होता है। शरीर में हमें मस्तिष्क का ही बोध होता है, उसके आस-पास ही हमारी चेतना घूमती रहती है। जरूर वहां कोई रुग्ण घाव पैदा हो गया है। इस रुग्ण घाव से मुक्त हुए बिना, मस्तिष्क की इस अत्यन्त अशांत और तनाव से भरी हुई स्थिति से मुक्त हुए बिना कोई व्यक्ति जीवन के केन्द्र की ओर गति नहीं कर सकता है। आज मस्तिष्क की इस स्थिति और इसमें परिवर्तन के लिए कुछ विचार हम करेंगे।

पहली बात है मस्तिष्क की स्थिति को ठीक से समझ लेना। यदि दस मिनट को आप एकान्त में बैठ जायें और आपके मन में जो विचार चलते हों उन्हें एक कागज पर ईमानदारी से लिख लें तो उस कागज को आप अपने निकटतम मित्र को भी बताने को राजी न होंगे, क्योंकि आप पायेंगे कि उसमें ऐसे पागल विचार हैं जिनकी आपसे कोई अपेक्षा नहीं करता। आप स्वयं भी अपने से वैसी अपेक्षा

नहीं करते। इतने असंगत, इतने व्यर्थ, इतने एक-दूसरे से असंबद्ध विचार हैं कि आपको प्रतीत होगा कि कहीं आप पागल तो नहीं हो गये। ईमानदारी से आपके मस्तिष्क में दस मिनट जो भी चलता है उसे वैसा ही लिख लें तो आप खुद ही आश्चर्य से भर जायेंगे कि मेरे मन के भीतर यह क्या चलता है। मैं स्वस्थ हूं या विक्षिप्त हूं? लेकिन कभी हम दस मिनट के लिए भी मन के भीतर झांक कर नहीं देखते कि वहां क्या चल रहा है। हो सकता है हम इसीलिए न झांकते हों कि हमें बहुत गहरे में इस बात का पता है कि वहां क्या चल रहा है। शायद हम भयभीत हों। इसीलिए आदमी अकेले में होने से डरता है और चौबीस घंटे किसी न किसी का साथ खोजता रहता है—कोई मित्र मिल जाये, कोई क्लब हो, कहीं भीड़ हो। कोई न मिले तो अखबार मिल जाये, रेडियो मिल जाये, लेकिन अकेला कोई भी नहीं होना चाहता क्योंकि अकेला होने से ही स्वयं की जो वास्तविक दशा है उसकी खबरें मिलनी शुरू हो जाती हैं। दूसरे की मौजूदगी में हम दूसरे में उलझे रहते हैं और खुद का कोई भी पता नहीं चलता। दूसरे की जो तलाश है, वह अपने से दूर भागने के उपाय के सिवाय और कुछ भी नहीं है। वह स्वयं से पलायन है। हम जो दूसरे लोगों में इतने उत्सुक होते हैं उसका बुनियादी कारण यह है कि हम अपने से डरते हैं और हमें भलीभांति यह पता है कि अगर हमने पूरी तरह अपने को जान लिया तो हम पायेंगे कि हम बिल्कुल पागल हैं। इस स्थिति से बचने के लिए हम साथ खोजते हैं, संगी खोजते हैं, मित्र खोजते हैं, समाज खोजते हैं, भीड़ खोजते हैं।

एकान्त से आदमी डरता है। एकान्त से आदमी भयभीत होता है क्योंकि एकांत में उसकी वास्तविक स्थिति का प्रतिफल मिल सकता है। उसके खुद के चेहरे की छाया उसे दिखाई पड़ जाती है और वह बहुत घबराने वाली होगी, वह बहुत डराने वाली होगी। इसलिए सुबह उठने के बाद सोने तक हम अपने से भागने के सब उपाय करते

हैं। कहीं स्वयं से मिलना न हो जाये। कहीं ऐसा न हो कि हम खुद से युक्त हो जायें। तो हजारों तरकीबें आदमी ने विकसित की हैं स्वयं से भागने की ओर, जितना मनुष्य के मस्तिष्क की स्थिति बिगड़ती गयी है उतना ही उसने स्वयं भागने के लिए नये-नये आविष्कार किये हैं। अगर हम पिछले पचास वर्षों की मानसिक दशा का आकलन करें तो हम पायेंगे कि पचास वर्षों में आदमी ने स्वयं से भागने की जितनी इजादें की हैं, इसके पहले कभी भी नहीं की थीं। हमारे सिनेमा गृह, हमारे रेडियो, हमारे टेलीवीजन, सब स्वयं से भागने के उपाय हैं। आदमी के भीतर स्थिति बिगड़ती जा रही है और इसीलिए वह मनोरंजन की इतनी खोज, स्वयं को थोड़ी देर के लिए भुलाने के लिए इतना आयोजन खोज रहा है। दुनिया भर में सभ्यता के बढ़ने के साथ-साथ नशों का प्रयोग बढ़ता चला गया है और अभी नये-नये नशे खोजे गये हैं जिनकी योरोप और अमरीका में जोरों से धूम है। सारे योरोप और अमरीका के सभ्य नगरों में, सारे शिक्षित लोगों में जोरों से नये-नये नशों की खोज चल रही है ताकि आदमी के लिए स्वयं को भूल जाने का कोई सुव्यवस्थित उपाय खोजा जा सके, नहीं तो बहुत मुश्किल हो जायगी। क्या कारण है इस सब के पीछे? क्यों हम अपने को भुलाना चाहते हैं? आत्मविस्मरण (self-forgetfuluess) के लिए हम इतने आतुर क्यों हैं? और आप ऐसा न सोचें कि सिनेमा में जाने वाले लोग ही स्वयं को भूलते हैं। मन्दिर में जाने वाले भी इसीलिए मन्दिर में जाते हैं, कोई फर्क नहीं है। मंदिर स्वयं को भूल जाने का पुराना उपाय है, सिनेमा नया उपाय है। एक आदमी बैठकर राम राम जपता है तो आप यह न सोचें कि वह कोई भिन्न काम कर रहा है। वह राम राम के शब्द में स्वयं को भुलाने की उसी भांति कोशिश कर रहा है जैसे कोई आदमी फिल्मी गीत गुनगुना कर कर रहा हो। दोनों बातों में फर्क नहीं है। अपने से बाहर किसी चीज में उलझने की कोशिश, वह चाहे राम हो चाहे सिनेमा हो, चाहे संगीत

हो, बहुत बुनियाद में, गहरे में अपने से ही बचने की कोशिश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह आत्मपलायन चल रहा है और हम सब इसमें किसी न किसी रूप में संलग्न हैं। यह इस बात की सूचना है कि भीतर स्थिति बहुत बिगड़ती जा रही है और वहां झांकने का साहस भी हम खोते जा रहे हैं। वहां देखने का साहस भी हम खोते जा रहे हैं। वहां आंख ले जाने में भी हम भयभीत हैं। हम शुतुरमुर्ग की तरह काम कर रहे हैं जिनके बाबत आपने सुना होगा कि वे दुश्मन को देखकर रेत में मुंह छिपाकर खड़े हो जाते हैं। दुश्मन को देखना खतरनाक है। दुश्मन सामने है, तो शुतुरमुर्ग अपना सिर रेत में छिपा लेता है और निश्चिन्त हो जाता है। क्योंकि जब दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता तो उसका तर्क है कि जो नहीं दिखायी पड़ता, वह है ही नहीं। इस भूल भरे तर्क के लिए शुतुरमुर्ग माफ किये भी जा सकते हैं, लेकिन आदमी माफ नहीं किया जा सकता। न दिखायी पड़ने से कोई चीज मिट नहीं जाती। दिखाई पड़ने से तो मिटने का कोई उपाय भी हो सकता है लेकिन न दिखाई पड़ने से तो मिटने का उपाय भी नहीं किया जा सकता।

हम भूलना चाहते हैं, भीतर जो स्थिति है उसे। उस स्थिति को हम देखना नहीं चाहते। शायद हम मन में यह संतोष कर लेते होंगे कि जो कहीं दिखायी पड़ रहा है वह नहीं है। न दिखायी पड़ने से न हो जाने का कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर दिखायी पड़ता तो शायद हम उसे बदल भी सकते, लेकिन नहीं दिखायी पड़ रहा है इसलिए हम उसे बदलने में भी असमर्थ हो गये हैं। वह भीतर बढ़ता जायगा, एक ऐसे घाव की तरह जिसे हमने छिपा लिया है और जिसे हम देखने को भी तैयार नहीं हैं। मस्तिष्क एक फोड़ा हो गया है। अगर किसी दिन ऐसा सम्भव हो सका कि कोई मशीन ईजाद हो गई और हम एक-एक आदमी के भीतर क्या चलता है उसे देखने में समर्थ हो सके तो शायद दुनिया में हर आदमी उसी क्षण आत्मघात कर लेगा। क्योंकि

कोई भी इस बात के लिए तैयार नहीं होगा कि उसके भीतर जो चलता है, उसे कोई और देख ले। यह परमात्मा की बड़ी दया है कि उसने कोई ऐसी खिड़की हमारे मस्तिष्क में नहीं बनाई, जिससे झांककर हम एक-दूसरे के भीतर जो चलता है उसे देख सकें।

आदमी भीतर दबाये बैठा है कुछ, और बाहर वह जो कहता है वह बहुत और है। बाहर जो उसके चेहरे पर दिखाई पड़ता है वह कुछ और है, भीतर उसके जो चलता है वह बिल्कुल और है। हो सकता है, बाहर वह प्रेम की बात कर रहा हो और भीतर घृणा के विचार चल रहे हों। हो सकता है वह सुबह किसी से मिलकर कह रहा हो कि नमस्कार! आपको देखकर बहुत आनन्द हुआ! सुबह-सुबह आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। और भीतर कह रहा हो कि इस दुष्ट का चेहरा सुबह कैसे दिखाई पड़ गया! अगर एक खिड़की हो जिससे हम आदमी के सिर के भीतर झाँक सकें तो बड़ी मुश्किल हो जाय, जीना कठिन हो जाय। ऊपर कुछ और है, भीतर कुछ और है और भीतर की तरफ हम देखने की हिम्मत भी नहीं करते कि भीतर झाँकें और देखें।

एक रात ऐसा हुआ। एक घर में एक माँ थी और उसकी बेटी थी। उन दोनों को ही रात में उठकर नींद में चलने की बीमारी और आदत थी। रात के कोई तीन बजे होंगे तब माँ उठी और मकान के पीछे बगिया में पहुँच गयी। नींद में चलने की और बात करने की उसकी आदत थी। लड़की वहाँ पहले से ही थी। जैसे ही उस बूढ़ी ने अपनी लड़की को देखा वह जोर से चिल्लायी, 'चांडाल, तूने ही मेरी युवा अवस्था छीन ली है। तूने ही मेरी जवानी छीन ली है। तू जबसे पैदा हुई तबसे मैं बूढ़ी होना शुरू हो गई। तू मेरी शत्रु है, तू नहीं होती तो मैं अभी भी जवान होती।'

उस लड़की ने जैसे ही अपनी बूढ़ी माँ को देखा, वह भी जोर से चिल्लायी कि दुष्ट, तेरे ही कारण मेरा जीवन एक संकट और

बंधन बन गया है। मेरे जीवन के हर प्रवाह में तू रोड़े की तरह खड़ी हो रही है। मेरे जीवन के लिए तू एक जंजीर बन गई है।

तभी मुर्गे ने बांग दी और उनकी नींद खुल गई। बूढ़ी ने लड़की को देखते ही कहा, "बेटी ! इतनी सुबह क्यों उठ गई ? कहीं तुझे सर्दी न लग जाय। आ चल, भीतर चल !' और उस लड़की ने जल्दी से अपनी बूढ़ी माँ के पैर छुए। सुबह माँ के पैर पड़ने का उसका रोज का नियम था। उसने कहा कि माँ ! आप इतनी जल्दी उठ आयीं। आपकी तबियत ठीक नहीं रहती इतनी जल्दी नहीं उठना चाहिए। आप चलिये और विश्राम करिये। नींद में उन्होंने क्या कहा और जागकर उन्होंने क्या कहा !

नींद में आदमी जो कहता है वह जागने के बजाय ज्यादा सच्चा होता है, क्योंकि ज्यादा भीतरी होता है। सपने में जो आप देखते हैं वह आपकी कहीं ज्यादा असलियत है,—बजाय उसके जो रोज बाजार और भीड़ में दिखते हैं। भीड़ का चेहरा बनाया हुआ कृत्रिम चेहरा है। आप अपने गहरे में बिल्कुल दूसरे आदमी हैं। ऊपर से आप कुछ अच्छे-अच्छे विचार चिपका कर काम चला लेते हैं लेकिन भीतर दूसरे ही विचारों की आग जल रही है। ऊपर से आप बिल्कुल शांत और स्वस्थ मालूम पडते हैं, भीतर सब अस्वस्थ और विक्षिप्त है। ऊपर से आप मुस्कराते मालूम पड़ते हैं और हो सकता है, सारी मुस्कराहट आंसुओं के ढेर पर खड़ी हो। बल्कि बहुत सम्भावना यह है कि भीतर जो आँसू हैं, उनको छिपाने के लिए मुस्कराहट का आपने अभ्यास कर लिया हो। आमतौर से आदमी यही करता है।

नीत्से से किसी ने एक बार पूछा कि तुम हमेशा हँसते रहते हो ! कैसे इतने प्रसन्न हो ! नीत्से ने कहा,—'अगर तुमने पूछ ही लिया है तो मैं असलियत भी बता दूँ। मैं इसलिए हँसता रहता हूँ कि कहीं रोने न लगूँ। इसके पहले कि रोना शुरू हो जाय, मैं

हँसी से उसको दबा लेता हूँ, भीतर ही रोक लेता हूँ। मेरी हँसी दूसरे को धोखा दे देती होगी कि मैं खुश हूँ। लेकिन मैं सिर्फ इसीलिए हँसता हूँ कि मैं इतना दुखी हूँ कि हँसने से ही राहत मिल जाती है। अपने को समझा लेता हूँ।

बुद्ध को किसी ने हँसते नहीं देखा, क्राइस्ट को किसी ने हँसते नहीं देखा। जरूर कोई बात होनी चाहिए। शायद भीतर वे आँसू नहीं रहे जिन्हें छिपाने के लिए हँसने की जरूरत हो। शायद भीतर दुख नहीं रहा, जिसे ढाँकने के लिए मुस्कराहट सीखना पड़ती हो। भीतर जो दुख का कांटा था वह विसर्जित हो गया है इसलिए बाहर अब हँसी के फूल लगाने की कोई जरूरत नहीं रह गयी। जिसके शरीर में दुर्गन्ध आती हो उसे सुगन्ध छिड़कने की जरूरत होती है और जिसका शरीर कुरूप हो उसे सुन्दर दिखायी पड़ने की चेष्टा करनी पड़ती है। जो भीतर दुखी हो उसे हँसी सीखनी पड़ती है और जिसके भीतर आँसू भरे हैं उसे मुस्कराहट लाना पड़ती है। और जो भीतर काँटे ही काँटे से भरा है उसे बाहर से फूल चिपकाने पड़ते हैं।

आदमी वैसा बिल्कुल नहीं है जैसा दिखाई पड़ रहा है, उससे बिल्कुल उल्टा है। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है। बाहर जो हमने चिपका लिया है इससे दूसरे धोखे में पड़ जाते तो भी ठीक था लेकिन हम खुद ही धोखे में आ जाते हैं। यह जो बाहर हम दिखायी पड़ते हैं इससे दूसरे लोग धोखे में आ जाते हैं तो वह कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि लोग बाहर से ही देखते हैं। लेकिन हम खुद ही धोखे में आ जाते हैं क्योंकि हम भी दूसरे की आँखों में बनी हुई अपनी तस्वीर को अपना होना समझ लेते हैं। हम दूसरे के जरिये ही अपने को देखते हैं, कभी सीधा नहीं देखते—जैसे कि हम हैं, जैसा कि हमारे भीतर हमारा वास्तविक होना है। दूसरे की आँखों में बनी हुई हमारी तस्वीर

हमको भी धोखा दे जाती है और इसीलिए हम भीतर देखने से डरते हैं। हम लोगों की आँखों में अपनी तस्वीर देखना चाहते हैं, अपने को सीधा देखना नहीं चाहते। इसीलिए हम इतने उत्सुक होते हैं इस बात को जानने के लिए कि लोग हमारे बाबत क्या कहते हैं। इसके जानने की उत्सुकता के पीछे और कुछ भी नहीं है। उनकी आंखों में जो मेरी तस्वीर बनती है उससे ही मैं अपने को पहचान लूंगा कि मैं कैसा हूँ। स्वयं को पहचानने के लिए भी मुझे दूसरे की आंखों में झांकना पड़ेगा! आदमी डरता है कि मेरे सम्बन्ध में लोग कुछ बुरा तो नहीं कहते। आदमी प्रसन्न होता है, लोग अगर उसके सम्बन्ध में अच्छा कहते हैं क्योंकि उसका खुद का अपना ज्ञान, उनकी कही गयी बातों पर, उनके मत पर निर्भर करता है। उनका अपना सीधा (Immediate) कोई ज्ञान नहीं है। उसे स्वयं अपने को जानने का सीधा कोई अनुभव नहीं है। यह अनुभव हो सकता है लेकिन हम तो इस अनुभव से बचने की कोशिश करते हैं।

तो मस्तिष्क के सम्बन्ध में पहली बात यह जानना जरूरी नहीं है कि दूसरे क्या कहते हैं। दूसरे क्या कहते हैं यह नहीं, दूसरे को मैं कैसा दिखायी पड़ता हूं, यह भी नहीं। मैं कैसा हूं, इसका सीधा साक्षात (encounter) करना जरूरी है। मुझे अपने एकान्त में, अपने मन को पूरी तरह खोलकर देखना जरूरी है कि वहां क्या है? यह अत्यन्त दुस्साहस का काम है। यह अपने हाथ से अपने भीतर छिपे हुए नर्क में प्रवेश करने का साहस है। यह अपनी नग्नता में स्वयं को देखने की हिम्मत है।

एक सम्राट था। उसके परिवार के लोग, उसके वजीर, सभी एक बात से बहुत हैरान थे। वह रोज महल के मध्य में बने एक कक्ष में प्रवेश करता। चाबी अपने पास ही रखता उस कक्ष की। भीतर से जाकर द्वार बन्द कर लेता। एक ही द्वार था उसमें, कोई खिड़की भी न थी। सब तरफ से दीवालें बन्द थीं। वह उस भवन में रोज

चौबीस घंटे में एक घंटा भीतर रहता। उसकी पत्नी भी न जानती थी कि वह वहाँ क्या करता है, क्योंकि उसने कभी किसी को नहीं बताया। कोई पूछता तो वह हँसकर चुप रह जाता और न वह किसी को चाबी ही देता था। सारे घर में विस्मय था और आश्चर्य था। सारे लोगों की उत्सुकता निरन्तर बढ़ती चली गई कि वह वहां करता क्या है! यह किसी को भी पता नहीं था कि वह वहाँ करता क्या है? एक घंटे वह उस बन्द घर में होता था फिर चुपचाप बाहर निकल जाता, चाबी अपने पास रख लेता और दूसरे दिन फिर उस बन्द घर में जाता। आखिर उत्सुकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई और सारे घर के लोगों ने मिलकर साजिश की कि जानना ही पड़ेगा कि बात क्या है? वजीर, उस सम्राट् की लड़की, उसके बेटे, उसकी पत्नियाँ सब सम्मिलित थे उस साजिश में। उन्होंने दीवाल में रात को एक छेद किया ताकि कल सुबह वे जान सकें कि वह आदमी करता क्या है? वहाँ जाकर भीतर होता क्या है एक घंटा! फिर दूसरे दिन सम्राट् जब भीतर गया तो उन सबने उस छेद पर आँख रखकर देखा। जिसने भी आँख वहाँ रखी वह तत्काल वहाँ से हठ आया और कहने लगा,—यह क्या कर रहे हैं! यह क्या करते हैं! लेकिन यह कोई भी नहीं कहता था कि सम्राट् वहाँ क्या कर रहा है। जो भी आँख छेद पर ले आता, जल्दी हट आता और कहता कि यह क्या करते हैं! सम्राट् ने वहाँ भीतर जाकर सारे वस्त्र फेंक दिये और नग्न हो गया। और उसने हाथ आकाश की तरफ जोड़े और कहा—'हे परमात्मा! वह जो कपड़े पहने हुए आदमी था वह मेरी असलियत नहीं थी—वह मैं नहीं था—असलियत तो अब है। और वह कूदने लगा और चिल्लाने लगा और गालियाँ बकने लगा और पागल की तरह व्यवहार करने लगा। यह जिसने भी उस छेद पर आँख रखकर देखा वह जल्दी हट आया और उसने कहा कि यह सम्राट् क्या करते हैं! हम तो सोचते थे कि शायद

कोई प्रार्थना करते होंगे, कोई योग साधना करते होंगे। लेकिन वह सम्राट् तो कह रहा था कि मैं जो अब तक वस्त्र पहने हुए चुपचाप और शांत दिखायी पड़ता था वह बिल्कुल झूठा आदमी था। वह मैंने कोशिश कर-करके बना लिया था। असली अब मैं यह हूँ। यह है मेरी असलियत, यह मेरी नग्नता, यह मेरा पागलपन ! और अगर मेरी असलियत तुझे स्वीकार हो जाय तो ठीक है, क्योंकि मैं आदमी को तो धोखा दे सकता हूँ लेकिन तुझे मैं कैसे धोखा दे सकता हूँ ? आदमी को तो मैं वस्त्र पहनकर दिखा सकता हूँ कि मैं नग्न नहीं हूँ लेकिन तू तो जानता है भली भाँति कि मैं नग्न हूँ, मैं तुझे कैसे धोखा दे सकता हूँ ? मैं आदमियों को तो दिखा सकता हूँ कि बहुत शांत और आनन्दित हूँ लेकिन तू तो मेरे भीतर तक जानता है। तुझे मैं कैसे धोखा दे सकता हूँ। तेरे सामने तो मैं एक पागल हूँ।

परमात्मा के सामने हम सब एक पागल की भाँति हैं। परमात्मा को तो छोड़ दें एक तरफ, अगर हम ही अपने भीतर आँख ले जाएँ तो हम अपने सामने ही एक पागल की भाँति प्रकट होंगे। मस्तिष्क बिल्कुल विक्षिप्त हो गया है लेकिन इस तरफ हमारा कोई ध्यान नहीं है, इसलिए इसे बदलने का हम उपाय भी नहीं कर पाते हैं। पहली बात है, स्वयं के मस्तिष्क का सीधा-साक्षात्कार। कैसे यह साक्षात्कार हो सकता है उसके दो तीन सूत्र समझ लेने योग्य हैं, फिर इस मस्तिष्क को कैसे बदला जा सकता है, उसके बाबत भी विचार किया जा सकता है।

मस्तिष्क के सीधे साक्षात्कार के लिए पहली तो बात यह है कि हम सब तरह का भय छोड़ दें अपने को जानने में। भय क्या है स्वयं को जानने में ? भय है कि कहीं हम बुरे आदमी न हों। हम तो अपने को अच्छा आदमी बनाये हुए हैं। हम तो अच्छे आदमी दिखायी पड़ते हैं। हम तो साधु हैं, हम तो सरल चित्त हैं। हम तो ईमानदार हैं,

हम तो सत्यवादी हैं। भय यह है कि कहीं भीतर यह पता न चले कि हम बेईमान हैं। भय यह है कि कहीं यह पता न चल जाय कि हम झूठे हैं। भय यह है कि कहीं यह पता न चल जाय कि हम असाधु हैं, जटिल हैं, कपटी हैं, पाखण्डी हैं। कहीं यह पता न चल जाय कि हम सज्जन नहीं हैं। भय यह है कि कहीं जो हम अपने को समझे हुए हैं वह तस्वीर झूठी साबित न हो जाय। जिस आदमी को यह भय है, वह कभी मन का साक्षात नहीं कर सकता है। जंगल में जाना आसान है, अंधेरे में जाना आसान है, जंगली जानवरों के पास भी निर्भय होकर बैठ जाना आसान है लेकिन हमारे भीतर जो जंगली आदमी छिपा है, उसके सामने निर्भय होकर खड़ा होना बहुत कठिन है, यह बहुत तपश्चर्यापूर्ण (Arduous) है। धूप में खड़े होने में कोई तपश्चर्या नहीं है, कोई भी बेवकूफ खड़ा हो सकता है। सिर के बल खड़ा हो जाने में भी कोई कठिनाई नहीं है, किसी भी जड़ बुद्धि को सरकस में खेल सिखाये जा सकते हैं। और न काँटों पर लेटना बहुत कठिन है—चमड़ा बहुत जल्दी तैयार हो जाता है काँटों पर लेटने के लिए। लेकिन कठिनाई अगर कोई है मनुष्य के जीवन में तो एक है, कि वह जैसा है भीतर चाहे बुरा, चाहे पागल, उसे वैसा ही सीधा और साफ जानने की हिम्मत और साहस।

इसलिए पहली बात है भय को छोड़ कर साहसपूर्वक स्वयं को देखने की तैयारी। यह तैयारी जिसके पास नहीं है वह कठिनाई में पड़ जाता है। आत्मा पाने के लिए तो हम उत्सुक होते हैं लेकिन अपने सीधे और सच्चे दर्शन का साहस भी हम में नहीं है तो परमात्मा और आत्मा दूर की बातें हो जाती हैं। सबसे पहली सचाई हमारा मन है, हमारा मस्तिष्क है। सबसे पहली सचाई हमारे विचारों का केन्द्र है जिससे हम निकटतम रूप से सम्बन्धित हैं। पहले तो उसे ही देखना और जानना और पहचानना होगा।

तो पहला सूत्र है निर्भयता से स्वयं के मन को जानने की कोशिश। आधा घंटे के लिए कम से कम रोज मन जैसा है उसको वैसा ही सहज रूप से प्रकट होने का मौका देना चाहिए। बन्द कर लें उस सम्राट् की तरह अपने को एक कमरे में और मन में जो भी उठता हो उसे मुक्त कर दें उससे। कहें कि जो भी तुझे सोचना है और जो भी तुझे विचारना है, वह सब उठने दो। सारा सेंसर जो हम बैठाये हुए हैं अपने मन के ऊपर वह सब छोड़ दें और मन को एक मुक्ति दे दें कि जो भी उठता हो उठे। जो भी प्रकट होना चाहता है प्रकट हो। न तो हम कुछ दबायेंगे, न हम कुछ रोकेंगे। हम तो यह जानने को तत्पर हुए हैं कि भीतर क्या है? बुरे और भले का निर्णय भी नहीं करना है क्योंकि निर्णय करते ही दमन शुरू हो जाता है। जिस चीज को आप बुरा कहते हैं उस चीज को मन दबाने लगता है और जिस चीज को आप अच्छा कहते हैं उसको ओढ़ने लगता है। तो न तो बुरा कहना है, न भला कहना है। जो भी है मन में, जैसा भी है, उसे वैसा ही जानने के लिए हमारी तैयारी होनी चाहिए। इस भाँति अगर मन को पूरा मुक्त छोड़ दिया जाय और वह जो भी सोचना चाहता हो, वह जो भी विचारना चाहता हो, जिन भी भावों में बहना चाहता हो, उनमें उसे बहने दिया जाय तो बहुत घबराहट होगी—लगेगा कि हम पागल हैं क्या? लेकिन जो भीतर छिपा है उसे जान लेना अत्यन्त जरूरी है। उससे मुक्त हो जाने के लिए पहली बात उसकी जानकारी है, उसकी पहचान है क्योंकि जिसकी पहचान न हो, जिसकी जानकारी न हो, जिस शत्रु को हम जानते न हों, उससे हम जीत भी नहीं सकते। उससे जीतने का कोई रास्ता नहीं है। छिपा हुआ शत्रु, पीठ के पीछे खड़ा हुआ शत्रु उस शत्रु से खतरनाक है जो आँख के सामने हो, जिससे हम परिचित हों, जिसे हम पहचानते हों।

पहली बात है मन के ऊपर से सारा सेंसर, सारा प्रतिबन्ध जो हमने

लगा रखा है हटा देना है। हम मन को कहीं उसकी सहजता में प्रकट नहीं होने देते। हमने मन की जितनी सहजता है, सब रोक रखी है, सब असहज हो गया है, सब झूठा कर डाला है, सब परदे ओढ़ लिए हैं, सब झूठे मुंह पहन लिए और कहीं से भी उसकी सीधी बात प्रकट होने नहीं देते। तो पहली बात है मन को उसकी सीधी सहजता में प्रगट कर देना, कमसे कम अपने सामने ही ताकि हम परिचित हो सकें मन के एक-एक अंश से जो कि भीतर छिपे हैं और दबा दिये हैं। मन का बहुत सा हिस्सा अंधकार में दबाया हुआ है। वहां हम कभी दिया नहीं ले जाते। अपने ही घर के बाहर के बरामदे में जीते हैं, भीतर के सारे कमरों में अंधकार छाया हुआ है और वहां कितने कीड़े-मकोड़े और कितने जाले और साँप बिच्छू इकट्ठे हो गये हैं, इसका कोई हिसाब नहीं। अंधकार में वे इकट्ठे हो ही जाते हैं और फिर हम डरते हैं वहां रोशनी ले जाने से क्योंकि हम यह सोचना भी नहीं चाहते, यह हम कल्पना भी नहीं करना चाहते कि हमारा घर ऐसा है।

साधक के लिए मस्तिष्क, मन और विचारों के जगत में क्रान्ति लाने के लिए पहला काम है, भय छोड़ कर, निर्भय होकर स्वयं को जानने के लिए तैयार हो जाना। दूसरी बात है इन पर से सारा सेंसर, सारा प्रतिबन्ध उठा लेना। हमने बहुत प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। हमारी शिक्षा ने, नैतिक शिक्षा ने, सभ्यता और संस्कृति ने बहुत प्रतिबन्ध लगा रखे हैं—यह सोचना ही मत, इस तरह के विचार ही मत करना, यह बुरा विचार है. इसे आने ही मत देना। और जब हम इस तरह रोक लगा देते हैं तो बुरे विचार नष्ट नहीं हो जाते, बल्कि हमारे प्राणों के और गहरे में प्रविष्ट हो जाते हैं। रोक लगा देने से कोई विचार हमसे बाहर नहीं जाता बल्कि हमारे भीतर गहरे खून में प्रविष्ट हो जाता है। क्योंकि जिस पर हम रोक लगाते हैं वह भीतर से उठ रहा था, कहीं बाहर से नहीं आता है। ध्यान रहे जो भी आपके मन में है वह कहीं बाहर से नहीं आ रहा

है, आपके भीतर से आ रहा है। जैसे कोई झरना प्रकट हो रहा हो किसी पहाड़ से और हम उसका द्वार बन्द कर दें तो झरना इससे नष्ट नहीं हो जायेगा वह और रास्ते खोजेगा। पहाड़ में प्रवेश करेगा और नये रास्ते खोजेगा। प्रकट होने के लिए एक झरना होता है फिर शायद झरने हो जायेंगे, दस टुकड़ों में टूट कर धाराएँ प्रकट होने की कोशिश करेंगी। और अगर हम दस जगह से बन्द कर दें तो सौ झरने हो जायेंगे।

हमारे भीतर से कुछ आ रहा है, बाहर से नहीं। इस पर जितनी रोक हम लगाते हैं उतना ही यह कुरूप होकर विकृत होकर नये-नये रास्ते खोज लेता है, नई ग्रन्थियां निर्मित करता है, लेकिन हम निरन्तर रोक लगाते रहते हैं। बचपन से ही हमारी शिक्षा की बुनियाद यह है कि फलां चीज बुरी है उसे रोक लेना है। वह रुकी हुई चीज नष्ट नहीं हो जाती, हमारे प्राणों में गहरे प्रविष्ट हो जाती है और जितना हम रोकते जाते हैं वह उतनी गहरी होती चली जाती है, उतना हमें पकड़ती चली जाती है। क्रोध बुरा है तो हम क्रोध को रोक देते हैं। क्रोध का झरना हमारे सारे खून में फैल जाता है। काम बुरा है, लोभ बुरा है, यह बुरा है, वह बुरा है। जो जो बुरा है उसे रोक देते हैं और अन्त में हम पाते हैं कि जिसे-जिसे हमने रोका था वही हम हो गये हैं। मन के कुछ नियम हैं—उनमें एक नियम यह भी है कि जिस चीज को हम रोकना चाहते हैं, जिस चीज से हम हटना चाहते हैं, जिससे हम बचाना चाहते हैं वही चीज हमारे चित्त का केन्द्र बन जाती है। जिस चीज से हम बचना चाहते हैं वह हमारा केन्द्रीय आकर्षण बन जाती है—मन हमारा उसके पास चक्कर काटने लगता है। आप कोशिश करके देख लें किसी चीज से बचने की, उसे रोकने की और आप पायेंगे कि चित्त वहीं घूमने लगा है।

तिब्बत में एक फकीर था मिलारेपा। उसके पास एक युवक आया और उसने कहा—"मुझे शक्ति अर्जित करनी है, मुझे कोई मंत्र

दे दें।" मिलारेपा ने कहा कि मंत्र हमारे पास कहां! हम तो फकीर हैं। मंत्र तो जादूगरों के पास होते हैं, मदारियों के पास होते हैं, बाजीगरों के पास होते हैं। तुम उनके पास जाओ। हमारे पास मंत्र कहां! हमसे सिद्धि का क्या सम्बन्ध! लेकिन जितना ही उस साधु ने मना किया उतना ही उस युवक को लगा कि जरूर यहां कुछ होना चाहिए इसीलिए यह मना करता है। जितना साधु रोकने लगा और इन्कार करने लगा उतना ही वह युवक साधु के पास जाने लगा। जो साधु डंडे से किन्हीं को भगाते हैं उनके पास बहुत भीड़ इकट्ठी हो जाती है। जो गाली देते हैं और पत्थर मारते हैं उनके पास भीड़ और बढ़ जाती है क्योंकि लगता है जरूर यहां कुछ होना चाहिए, नहीं तो यह पत्थर और डंडा क्यों मारेगा? शायद हमें पता नहीं कि चाहे अखबार में खबर निकलवा कर बुलवाया जाय लोगों को, चाहे पत्थर मारकर, तरकीब एक ही है। प्रचार दोनों में ही एक है और दूसरी तरकीब ज्यादा धूर्तता से भरी है। जब पत्थर मार के लोगों को भगाया जाय तो लोगों के यह ख्याल में भी नहीं आता कि हमें बुलाया जा रहा है। लेकिन पत्थर मार के भगाना भी बुलाने की ही विधि है, तब आदमी आता भी है और उसे ख्याल में भी आता है कि मैं बुलाया गया। उस युवक ने भी समझा कि शायद यह साधु कुछ छिपाना चाहता है इसलिए वह रोज आने लगा। आखिर में मिलारेपा प्रसन्न हो गया तो उसने एक कागज पर मंत्र लिखकर दे दिया और कहा कि इसे ले जाओ, आज अमावस की रात है, अंधेरे में पांच बार इसको पढ़ लेना। बस पांच बार तुमने पढ़ लिया कि सिद्धि हो जायेगी। फिर तुम जो भी चाहोगे, कर सकोगे। जाओ और मेरा पीछा छोड़ो। वह युवक भागा। उसने धन्यवाद भी नहीं दिया। वह सीढ़ियां उतर भी नहीं पाया था कि मिलारेपा ने कहा कि मेरे मित्र एक बात बताना मैं भूल गया। एक शर्त भी है। जब उस मंत्र को पढ़ो तो बंदर का स्मरण नहीं आना चाहिए। उस युवक ने कहा—"बेफिक्र रहिए, आज

तक जिन्दगी में कभी नहीं आया है। आने का कोई कारण नहीं है। पांच ही बार तो पढ़ना है"। लेकिन भूल हो गई उससे। वह पूरी सीढियां भी नहीं उतर पाया था कि बन्दर स्मरण आना शुरू हो गया। वह बहुत घबराया। आंख बन्द करता है तो बन्दर है, बाहर देखता है तो जहां बन्दर नहीं है वहां भी दिखाई पड़ते हैं, मालूम होता है कि वहां भी बन्दर हैं। रात में वृक्षों पर हलचल होती तो लगता कि बन्दर हैं। घर पहुंचा तो बहुत परेशान हुआ कि मामला क्या है! आज तक मुझे बन्दर कभी ख्याल में नहीं आया। मेरा कोई नाता रिश्ता बन्दरों से नहीं रहा, कोई पहचान नहीं रही। घर पहुंचा, स्नान किया, लेकिन स्नान करता जा रहा है और बन्दर साथ हैं। एक ही तरफ ख्याल रह गया है बन्दरों की तरफ। फिर मंत्र पढ़ने बैठता है। हाथ में कागज लेता है, आंख बन्द करता है और बन्दरों की भीड़ उसे चिढ़ा रही है, भीतर बन्दर मौजूद है। वह बहुत घबरा गया। रात भर उसने कोशिश की। सब भांति करवट बदली, इस भांति बैठा, उस पद्मासन में बैठा। भगवान के नाम लिए, हाथ जोड़े, रोया गिड़गिड़ाया कि केवल पांच मिनट के लिए इन बन्दरों से छुटकारा दिला दो। लेकिन वे बन्दर थे कि रात उसका पीछा छोड़ने को राजी नहीं हुए। सुबह तक वह बिल्कुल पागल हो उठा। घबरा गया और समझ गया कि यह मामला हल होने का नहीं है। यह सिद्धि नहीं हो सकती। मैं समझता था सिद्धि बड़ी सरल है लेकिन उस पागल ने यह शर्त क्यों लगा दी। अगर बन्दरों के कारण ही रुकावट होती थी तो कम से कम बन्दरों का नाम न लेता। तब शायद यह मंत्र सिद्ध भी हो सकता।

सुबह वह साधु के पास रोता हुआ गया और उसने कहा, वापस ले लें अपना मंत्र। बड़ी गलती की आपने, अगर बन्दर ही इसकी रुकावट थे तो कृपया कल न कहते, आज कह देते तो कोई हर्जा होता था? मुझे कभी बन्दर याद भी नहीं आये। लेकिन कल रात भर बन्दरों ने मेरा

पीछा किया। अब अगला जन्म पाऊंगा फिर हो सकता है कि यह मन्त्र सिद्ध हो सके लेकिन अब इससे छुटकारा सम्भव नहीं है।

यह जो बन्दर संयुक्त हो गया मंत्र के साथ, यह कैसे संयुक्त हो गया उसके मन से? उसने आग्रह किया कि बन्दर नहीं होने चाहिएँ और बन्दर हो गये। उसके मन ने बन्दरों से छुटकारा चाहा और बन्दर मौजूद हो गये। उसके मन ने बन्दरों से बचना चाहा और बन्दर आ गये। निषेध आकर्षण है, इन्कार आमंत्रण, रोकना बुलाना है। हमारे चित्त की जो इतनी रुग्ण दशा हो गयी है वह इस सीधे से सूत्र के न समझने की वजह से ही हो गयी है। क्रोध हम नहीं चाहते कि आये और फिर क्रोध अन्दर बन जाता है और आने लगता है। सेक्स को हम नहीं चाहते कि आये और वह फिर आता है और चित्त को पकड़ लेता है। लोभ को हम नहीं चाहते कि वह आये, अहंकार को हम नहीं चाहते कि वह आये लेकिन वे सब आ जाते हैं। जिन-जिन को हम नहीं चाहते हैं कि वे आयें वे आ जाते हैं और जिन-जिन को हम चाहते हैं कि परमात्मा आये, आत्मा आये, मोक्ष आये उनका कोई पता नहीं चलता कि वे आये। जिनको हम नहीं चाहते वे आते हैं और जिन्हें हम बुलाते हैं उनकी कोई खबर नहीं मिलती है। मन के इस सीधे सूत्र को न समझने से सारी विकृति पैदा हो जाती है। तो दूसरी बात ध्यान में रखने की है कि मन में क्या आये और क्यों नहीं आये इसका कोई आग्रह लेने की जरूरत नहीं है। जो भी आये उसे हम देखने को तैयार हैं। जो भी आये हमारी तैयारी उसे देखने की है। हमारा आग्रह नहीं है कि क्या आये और क्या न आये। हमारी कोई शर्त नहीं, हमारा कोई आग्रह नहीं, बशर्त हम मन को देखने के लिए तत्पर हैं। हम सिर्फ जानना चाहते हैं कि मन अपनी वस्तुस्थिति में क्या है। हमारा कोई आग्रह नहीं है कि कौन आये और नहीं आये। इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं। दुनिया भर के विज्ञापनदाता इस सीधी सी बात को समझते हैं लेकिन धर्मगुरु अबतक

नहीं समझ पाया और समाज को शिक्षा देने वाले लोग भी नहीं समझ पाये। एक फिल्म के ऊपर लिख दिया जाता है--सिर्फ प्रौढ़ लोगों के लिए (For adults only) और बच्चे एक आने की मूंछ लगाकर पहुँच जाते हैं देखने के लिए। जानता है विज्ञापनदाता कि अगर बच्चों को बुलाना हो तो फिल्म के ऊपर लिखना जरूरी है कि सिर्फ प्रौढ़ों के लिए। स्त्रियों की पत्रिका है--लिखा है "सिर्फ स्त्रियों के लिए" और उसको सिवाय पुरुषों के और कोई भी नहीं पढ़ता है, स्त्रियाँ तो कभी नहीं पढ़ती हैं, पुरुष उसके ग्राहक हैं। मैंने पता लगवाया तो पता चला कि ऐसी पत्रिकाओं के अधिकतम ग्राहक पुरुष हैं और बाजार में मैंने पत्रिका बेचने वाले एजेन्टों से पूछा तो उन्होंने कहा कि स्त्रियाँ कभी कोई मुश्किल से खरीदती हैं। स्त्रियाँ दूसरी पत्रिका खरीदती हैं 'फार मैन ओनली' वाली। विज्ञापनदाता इस तरकीब को समझ गये कि आदमी का मन किस बात के प्रति आकर्षित होता है लेकिन धर्मगुरु अभीतक नहीं समझ पाये। नीतिशास्त्री अबतक नहीं समझ पाये। वे आदमी को अब भी बेवकूफियाँ सिखाये जाते हैं कि तुम क्रोध मत करो, क्रोध से लड़ो। क्रोध से लड़ने और क्रोध से बचने वाला आदमी जीवन भर क्रोध के चक्कर में रहेगा। क्रोध से कभी मुक्त नहीं हो सकता। क्रोध से वह मुक्त होता है जो क्रोध को जानने में उत्सुक होता है, लड़ने को उत्सुक नहीं।

दूसरा सूत्र है मन के किन्हीं भी रूपों के प्रति संघर्ष का भाव छोड़ दें, द्वन्द्व का भाव छोड़ दें, लड़ाई छोड़ दें। सिर्फ जानने का, सिर्फ समझने का भाव रखें। मैं समझ लूँ कि यह मेरा मन क्या है। समझने के इतने सरल भाव से मन में प्रवेश करना जरूरी है। मन में जो भी उठे, उसपर कोई भी निर्णय नहीं लेना है कि जो उठ रहा है बुरा है या यह जो उठ रहा है अच्छा है। हमें इस बात का पता ही नहीं कि बुराई और अच्छाई एक ही सिक्के के

दो पहलू हैं। जहाँ बुराई है उसके दूसरी तरफ अच्छाई है। जहाँ अच्छाई है, उसके ही दूसरी तरफ बुराई है। अच्छे आदमी के भीतर बुरा आदमी छिपा होता है, बुरे आदमी के भीतर अच्छा आदमी छिपा होता है। अच्छे आदमी के सिक्के का अच्छाई वाला भाग ऊपर की तरफ है, बुराई का भीतर की तरफ है। इसीलिए अगर कभी अच्छा आदमी बुरा हो जाय तो बुरे से बुरे आदमी से बुरा सिद्ध होता है और कभी बुरा आदमी अच्छा हो जाय तो अच्छे आदमी उसके सामने फीके पड़ जाते हैं क्योंकि बुरे आदमियों के भीतर अच्छाई बिल्कुल साबित छिपी रहती है। अगर वह कभी करवट ले लेता है और अच्छा आदमी हो जाता है तो अच्छे आदमी फीके पड़ जाते हैं। बड़ी ताजी और छिपी हुई अच्छाई की ताकतें उसके भीतर से प्रकट होंगी। वाल्मीकि या अंगुलीमाल इसी तरह के बुरे आदमी हैं जो एक दिन अच्छे आदमी हो जाते हैं तो सारे सन्त उनके सामने फीके पड़ जाते हैं। अच्छा और बुरा आदमी अलग-अलग नहीं है एक ही चीज के दो पहलू हैं। लेकिन जो साधु है वह तीसरी ही तरह का आदमी है। उसके भीतर न अच्छाई होती है, न बुराई होती है। वह पूरे सिक्के को फेंक देता है। अच्छा आदमी साधु नहीं है, सज्जन संत नहीं है। सज्जन के भीतर दुर्जन छिपा ही होता है। सन्त बिल्कुल तीसरे तरह की घटना है। वह न अच्छा है न बुरा है। वह तटस्थ हो गया है। उसका न अच्छाई से कोई सम्बन्ध है न बुराई से। वह एक भिन्न ही दिशा में प्रविष्ट हो गया है। वहाँ अच्छे या बुरे का सवाल नहीं है।

एक युवा फकीर था जापान के एक गाँव में। उसकी बड़ी कीर्ति थी। सारा गाँव उसे पूजता और आदर करता। उसके सम्मान में सारे गाँव में गीत गाये जाते। लेकिन एक दिन सारी बात बदल गई। गाँव की एक युवती को गर्भ रह गया और उसे बच्चा हो गया। जब उस युवती को घर के लोगों ने पूछा कि

किस का बच्चा है तो उसने उस साधु का नाम ले दिया कि वह उसी फकीर का बच्चा है। फिर देर कितनी लगती प्रशंसक के शत्रु बनने में। जरा सी भी देर नहीं लगी क्योंकि प्रशंसक के मन में हमेशा भीतर तो निन्दा छिपी ही रहती है। और वह छिपी हुई निंदा मौके की तलाश करती है कि किस दिन प्रशंसा खत्म हो जाय। आदर देने वाले लोग एक क्षण में अनादर देना शुरू कर देते हैं। पैर छूने वाले लोग एक क्षण में सिर काटना शुरू कर देते हैं—इन दोनों में भेद नहीं है। यह एक ही आदमी की दो शक्लें हैं।

वे सारे गाँव के लोग उस फकीर की झोंपड़ी पर टूट पड़े। इतनी श्रद्धा थी तो दिल में क्रोध भी इकट्ठा हो ही गया था कि यह आदमी बड़ी श्रद्धा लिए जा रहा है! आज अश्रद्धा देने का मौका मिला था तो कोई भी पीछे नहीं रहना चाहता था। उन्होंने जाकर उस फकीर की झोंपड़ी में आग लगा दी और उस बच्चे को फकीर के सामने फेंक दिया। उस फकीर ने पूछा कि बात क्या है? उन लोगों ने कहा कि यह भी हमसे पूछते हो! यह भी तुम्हें बताना पड़ेगा कि बात क्या है! अपने जलते मकान को देखो, अपने भीतर दिल को देखो, इस बच्चे को देखो और इस लड़की को देखो। हमसे पूछने की जरूरत नहीं। यह बच्चा तुम्हारा है।

वह फकीर बोला: "ऐसी बात है क्या? (Is it so?) बच्चा मेरा है।" वह बच्चा रोने लगा तो फकीर बच्चे को चुप कराने के लिए गीत गाने लगा और उसका झोंपड़ा जलाकर लोग वापस लौट गये। फिर वह अपने रोज के समय पर, दोपहर हुई और भीख माँगने निकला। लेकिन आज उस गाँव में उसे कौन भीख देता? जिस द्वार पर भी खड़ा हुआ वह द्वार बन्द हो गया। बच्चों की टोली और भीड़ चिल्लाती, मजाक करती और पत्थर फेंकती उसके पीछे हो ली। अंततः वह उस घर के सामने पहुँचा जिस घर की वह

लड़की थी और जिसका वह बच्चा था। उसने वहाँ आवाज दी और कहा कि मेरे लिए भीख मिले न मिले, लेकिन इस बच्चे के लिए तो दूध मिल जाय! मेरा कसूर भी हो सकता है लेकिन इस बच्चे का क्या कसूर?

वह बच्चा रो रहा है, भीड़ वहाँ खड़ी है। अब उस लड़की की सहनशीलता के बाहर हो गई यह बात। वह अपने पिता के पैरों पर गिर पड़ी और उसने कहा,—"मुझे माफ करें, मैंने साधु का नाम झूठा ही ले दिया। बच्चे के असल बाप को बचाने के लिए मैंने सोचा कि साधु का नाम ले लें। साधु से मेरा कोई परिचय तक नहीं है।" बाप घबरा गया। यह तो बड़ी अशोभनीय घटना हो गयी थी। वह नीचे भागा हुआ आया और फकीर के पैरों पर गिर पड़ा और उससे बच्चा छीनने लगा। उस फकीर ने ने पूछा "बात क्या है?" उसके बाप ने कहा,—"माफ करें, भूल हो गई, यह बच्चा आपका नहीं है।" उस फकीर ने कहा: "ऐसी बात है क्या? (It is so?) यह बच्चा मेरा नहीं है।" तो उस बाप ने और गाँव के लोगों ने कहा,—पागल हो तुम! तुमने सुबह ही क्यों नहीं इन्कार किया?" तो उस फकीर ने कहा,—"इससे क्या फर्क पड़ता? बच्चा किसी न किसी का तो होगा ही। एक झोंपड़ा तुम जला ही चुके थे, तब तुम दूसरा जलाते। एक आदमी को तुम बदनाम करने का मजा ले ही चुके थे, फिर तुम एक आदमी को और बदनाम करने का मजा लेते। फिर इससे फर्क भी क्या पड़ता है, बच्चा किसी न किसी का तो होगा ही, मेरा भी हो सकता है; इसमें क्या हर्जा!" तो उन लोगों ने कहा,—"तुम्हें इतनी भी समझ नहीं कि तुम्हारी कितनी निन्दा हुई! कितना अपमान हुआ! कितना अनादर हुआ!" उस फकीर ने कहा कि अगर तुम्हारे आदर की मुझे कोई फिक्र होती तो तुम्हारे अनादर की भी मुझे फिक्र होती। मुझे तो जैसा ठीक लगता है वैसा मैं जीता हूँ, तुम्हें जैसा ठीक

लगता है तुम करते हो। कल तक तुम्हें ठीक लगता था कि आदर करें तो तुम आदर करते थे। आज तुम्हें ठीक लगा अनादर करें तो तुम अनादर करने लगे। लेकिन न तुम्हारे आदर से मुझे प्रयोजन है, न अनादर से।" तो उन लोगों ने कहा,--"भले आदमी इतना तो कम से कम सोचा होता कि तुम एक भले आदमी हो और इस घटना से बुरे हो जाते।" उस फकीर ने कहा : 'न मैं बुरा हूँ, न मैं भला हूँ। अब तो मैं वही हूँ 'जो मैं हूँ'। अब मैंने यह बुरे भले के सिक्के छोड़ दिये मैंने यह फिक्र ही छोड़ दी कि अच्छा हो जाऊँ, क्योंकि मैंने अच्छा होने की कोशिश की और पाया कि मैं बुरा होता चला गया। मैंने बुराई से बचने की जितनी कोशिश की, पाया कि भलाई उतनी दूर होती चली गई। मैंने वह ख्याल ही छोड़ दिया। मैं बिल्कुल तटस्थ हो गया हूँ। और जिस दिन मैं तटस्थ हो गया उसी दिन मैंने पाया कि न बुराई भीतर रही न भलाई भीतर रही, एक तीसरी ही नई चीज का जन्म हो गया है जो सभी भलाइयों से ज्यादा भली है और जिसके पास बुराई की छाया भी नहीं होती।

तो संत एक तीसरे तरह का व्यक्ति है। साधक की दिशा सज्जन होने की दिशा नहीं है। साधक की दिशा सन्त होने की दिशा है। इसलिए कोई निर्णय न लें कि कौन सी बात मन में अच्छी उठ रही है, कौन सी बुरी उठ रही है। जो उठ रहा है उसकी न प्रशंसा और न निन्दा। न तो यह कि यह बुरा है, न तो यह कि यह अच्छा। मन की धारा के किनारे तटस्थ होकर बैठ जायें जैसे कोई नदी के किनारे बैठा हो और नदी बहती जाती है और देख रहा हो--नदी में पानी भी बह रहा है, पत्थर भी बह रहे हैं, पत्ते भी बह रहे हैं, लकड़ियाँ भी बह रही हैं। वह चुपचाप देख रहा है किनारे बैठा हुआ।

ये तीन सूत्र आज सुबह की बैठक में मुझे आपसे कह देने थे।

पहली बात, मन के साक्षात् के लिए अत्यन्त समय और दूसरी बात मन के ऊपर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं। तीसरी बात मन में जो भी विकल्प और विचार उठें उनके प्रति कोई निर्णय नहीं,--कोई शुभ-अशुभ का भाव नहीं, बस तटस्थ दृष्टि। ये पहले तीन सूत्र हैं मन की विकृति के साक्षात के लिए। फिर हम दोपहर और साँझ, विकृति के बाहर और ऊपर उठ जाने के लिए क्या किया जा सकता है इस सम्बन्ध में बात करेंगे। अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। सुबह के ध्यान के सम्बन्ध में दो बातें समझ लें।

सुबह का ध्यान बड़ी सीधी और सरल सी प्रक्रिया है। असल में जीवन में जो भी महत्वपूर्ण हैं वे प्रक्रियाएँ बड़ी सरल और सीधी होती हैं। जीवन में जितनी व्यर्थ बात होती है वह उतनी ही जटिल (complex) होती है। जीवन में जितनी श्रेष्ठ बात होती है वह उतनी ही सरल और सीधी (simple) होती है। सुबह के ध्यान में इतना ही करना है कि चुपचाप मौन बैठकर चारों तरफ जो ध्वनियों का संसार है उसे सुनते रहना है। सुनते रहने के कुछ अद्भुत परिणाम हैं। हम कभी सुनते ही नहीं हैं। जब मैं यहाँ बोल रहा हूँ तो आप सोचते होंगे कि आप सुन रहे हैं तो आप बड़ी गलती में हैं। कान में आवाज पड़ जाना ही सुनने के लिए पर्याप्त नहीं है। जब मैं बोल रहा हूँ और उसके साथ-साथ अगर आप सोच भी रहे हैं तो आप सुन नहीं रहे हैं--क्योंकि मन एक साथ एक ही क्रिया कर पाता है, दूसरी क्रिया कभी भी नहीं। या तो आप सुन सकते हैं या आप सोच सकते हैं। जितनी देर आप सोचते हैं उतनी देर के लिए सुनना बन्द हो जायगा। जितनी देर आप सुनते हैं उतनी देर के लिए सोचना बन्द हो जायगा। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि सुनना बड़ी अद्भुत प्रक्रिया है अगर आप सिर्फ शांति से सुनें तो भीतर सोचना अपने आप बन्द हो जायगा क्योंकि मन में अनिवार्य नियमों में से एक नियम है कि एक साथ मन दो काम करने में

असमर्थ है—एकदम असमर्थ है।

एक आदमी बीमार पड़ा था। एक वर्ष से उसके पैर में लकवा लगा हुआ था। डाक्टर उसे कहते थे कि शरीर में लकवा मालूम नहीं पड़ता सिर्फ आपके मन में भ्रम हो गया है। लेकिन वह आदमी कैसे मानता। फिर एक दिन उसके मकान में आग लग गई और घर के सारे लोग भागे। वह लकवे में पड़ा हुआ आदमी भी भाग कर बाहर निकल आया। वह साल भर से उठा ही नहीं था बिस्तर से। जब वह बाहर आ गया तभी उसे ख्याल आया कि अरे! यह क्या मामला हो गया। मैं तो उठ भी नहीं सकता था। यह पैर चले कैसे? उस आदमी ने मुझ से पूछा तो मैंने कहा कि मन एक ही साथ दो बातें नहीं सोच सकता। लकवा लगा हुआ है, यह मन का एक ख्याल था लेकिन जब मकान में आग लग गई तो मन पूरी तरह मकान की आग में संलग्न हो गया और पहला ख्याल खिसक गया कि पैर में लकवा लगा है। और आप भाग कर बाहर आ गये। मन एक ही चीज में तीव्रता से जाग सकता है।

यह जो सुबह का प्रयोग है वह चारों तरफ जो पक्षियों के, हवाओं के गीत चलते हैं, सारी दुनियाँ में ध्वनियों का जो जाल बिछा हुआ है उसको चुपचाप सुनने का है। एक ही बात पर ध्यान देना है कि चारों तरफ जो भी हो रहा है उसे मैं पूरी तरह सुन रहा हूँ। और कुछ भी नहीं कर रहा हूँ, सिर्फ सुन रहा हूँ। और जैसे ही आप पूरी तरह सुनेंगे भीतर सोच विचार का जो जाल है वह एकदम शांत हो जायगा। क्योंकि यह दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते। तो आप पूरी कोशिश सुनने में लगा दें। अगर आप विचार को निकालने की कोशिश करेंगे तो जो गलती मैंने अभी आपसे कही वह शुरू हो जायगी। विचार को निकालने की कोशिश से कभी विचार नहीं निकल सकते लेकिन मन की जो ताकत विचार करने में लगती है अगर वह ताकत किसी और धारा में प्रवाहित

हो जाय तो विचार अपने आप क्षीण हो जायेंगे। उस आदमी को उसके डाक्टर कहते थे कि तू यह ख्याल निकाल अपने मन से कि तुझे लकवा लगा हुआ है। शरीर तेरा ठीक है। लेकिन वह आदमी जितनी कोशिश करता होगा इस ख्याल को निकालने की, जितनी बार यह कहता होगा कि मुझे लकवा नहीं लगा हुआ है, उतनी ही बार लकवा की याद आयेगी। उतनी ही बार वह जानेगा कि लकवा मुझे लगा हुआ है। अगर नहीं लगा हुआ होता तो मैं दोहराता भी क्यों कि मुझे लकवा नहीं लगा हुआ है? वह जितनी बार दोहरायेगा कि मुझे लकवा नहीं लगा है उतनी बार वह अपने इस भाव को गहरा कर रहा है कि मुझे लकवा लगा हुआ है। वह भाव मजबूत हो रहा है। उस आदमी के चित्त को तो हटाव (Diversion) चाहिए। उस आदमी को लकवे के ख्याल को रोकने की जरूरत नहीं थी। उसका चित्त पूरी तरह कहीं और चला जाता तो लकवा विलीन हो जाता क्योंकि चित्त का ही लकवा था। चित्त पूरी तरह हट जाता तो लकवा विलीन हो जाता। मकान में आग लग गई भाग्य से। कई बार ऐसा होता है कि किन्हीं के घर में दुर्भाग्य से आग लगती है और किन्हीं के घर में भाग्य से भी आग लग जाती है। उस आदमी के घर में भाग्य से आग लग गई तो सारा मन मकान पर लगी आग पर चला गया। मन हट गया उस बात से जिसको पकड़े हुए था। वह ग्रंथि विलीन हो गई क्योंकि वह विचार की ग्रंथि थी। असल में वहाँ कोई जंजीर नहीं थी, केवल विचार का जाल था। पूरी तरह मन वहाँ से हट गया तो विचार का जाल सूखकर निर्जीव हो गया क्योंकि विचार में जो भी प्राण हैं वह हमारे ध्यान से ही उपलब्ध होते हैं। विचार में अपने आप में कोई प्राण नहीं हैं। हम जितना ध्यान (attention) देते हैं विचार पर उतना ही वह जीवन्त हो जाता है। जितना हमारा ध्यान हट जाता है उतना ही वह मुर्दा हो जाता है। अगर ध्यान बिलकुल हट जाय

तो विचार निर्जीव हो जाते हैं, मर जाते हैं, उसी समय समाप्त हो जाते हैं।

सुनने पर ही सारा ध्यान रखें और विधायक रूप से यह ख्याल करें कि एक चिड़िया की छोटी सी आवाज भी मेरे बिना सुने व्यतीत न हो जाय। कुछ भी बिना सुना न जाए, सब मैं सुन लूँ। चारों तरफ जो हो रहा है वह पूरी तरह सुनाई में आजाय तो आप अचानक पायेंगे कि मन एक गहरी शांति में उतरता जा रहा है, विचार क्षीण होते जा रहे हैं।

एक ही काम करना है। शरीर को शिथिल छोड़कर बैठ जाना है। कल मैंने आपको कहा था कि मस्तिष्क को पहले जोर से खींचें। शायद वह आपकी समझ में नहीं आया। उसकी फिक्र छोड़ दें। उसको मत खींचे, कोई जरूरी नहीं है क्योंकि उसी में परेशान हो जायेंगे आप तो पीछे और गड़बड़ी होगी। उसे छोड़ दें, वह कोई ध्यान का हिस्सा नहीं था। वह तो सिर्फ मैंने इसलिए आपको कहा था कि आपको यह ख्याल में आ सके कि खिंचा हुआ मस्तिष्क क्या है और शिथिल मस्तिष्क क्या है। इसकी फिक्र करने की बहुत जरूरत नहीं है, उसे छोड़ दें। मन को शांत छोड़ दें। सिर के जितने भी स्नायु खिचे हुए हों, सिर की जो भी नसें खिंची हुई हों उनको ढीला छोड़ दें। सवाल ढीला छोड़ने का है, सवाल यह नहीं है कि आप उसको खींचने की कला सीखें। खींचने की कला तो भूलनी है। वह मैंने उस दिन इसलिये कहा था ताकि आपको दोनों समझ में आ जायें कि खिंचा हुआ यह है और ढीला यह है। वह नहीं समझ में आता है उसको छोड़ दें फिलहाल। शिथिल ही छोड़ें सीधा।

पंचम प्रवचन

विचार जाल से मुक्ति

प्रथम चरण : ज्ञान के भ्रम से छुटकारा

मधु मक्खियों के छेड़े गये छत्ते की भांति मनुष्य के मन की दशा है। विचार और विचार और विचारों की यह भिनभिनाहट मक्खियों की तरह मनुष्य के मन को घेरे हुए है। इन विचारों में घिरा हुआ मनुष्य अशांति में, तनाव में और चिन्ता में जीता है। जीवन को जानने और पहचानने के लिए एक झील की भांति शांत मन चाहिए, जिस पर कोई लहर न उठती हो। जीवन से परिचित होने के लिए एक दर्पण की भाँति निर्मल मन चाहिये जिस पर कोई धूलि न जमी हो। लेकिन हमारा मन है मधुमक्खियों की भांति। न तो वह दर्पण है और न वह एक शांत झील है। और ऐसे मन को लेकर अगर हम सोचते हों कि हम कुछ जान सकेंगे या हम कुछ पा सकेंगे या कि हम कुछ हो सकेंगे तो बड़ी भूल में हैं। विचारों की इस तीव्र धारा से मुक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। विचार और विचार और विचार, स्वास्थ्य के लक्षण नहीं हैं, रुग्ण चित्त की दशा है। जब किसी का मन परिपूर्ण रूप से शुद्ध और स्वच्छ होता है तो विचार शून्य हो जाते हैं केवल विवेक शेष रह जाता है। जब कोई मन अस्वस्थ और बीमार होता है तो विवेक शून्य हो जाता है और केवल विचारों की भीड़ रह जाती है। हम विचारों की भीड़ में ही जीते हैं। सुबह से सांझ, सांझ से सुबह, जन्म से लेकर मृत्यु तक हम विचारों की एक भीड़ में ही जीते हैं। इस भीड़ से कैसे मुक्त हुआ जाय, इस संबंध में सुबह कुछ बातें हमने की हैं। उसी सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे गये हैं, उन प्रश्नों के मैं अभी उत्तर दे रहा हूं।

विचारों से मुक्त होने के लिए पहला कदम तो यह है कि हम विचारों का संग्रह न करें। आदमी अगर एक तरफ विचारों का

संग्रह करता चला जाय और दूसरी तरफ विचारों से मुक्त होना चाहे तो कसे मुक्त हो सकेगा ? एक आदमी वृक्ष के पत्तों से मुक्त होना चाहे और वृक्ष की जड़ों को पानी पिलाता चला जाय, तो वह कैसे वृक्ष के पत्तों से मुक्त हो सकेगा ? लेकिन जड़ों को पानी पिलाते वक्त शायद हमें यह ख्याल में ही नहीं आता है कि जड़ों और पत्तों का भी कोई सम्बन्ध है । जड़ें अलग मालूम होती हैं, पत्ते अलग मालूम होते हैं लेकिन पत्ते जड़ों से अलग नहीं हैं और जड़ों को दिया गया पानी पत्तों को ही मिलता है । विचार हम संग्रहीत करते हैं और विचारों की भीड़ को पानी देते हैं और फिर विचार जब मन को बहुत बेचैन और अशान्त करते हैं तो हम उनको शांत करने का उपाय भी करना चाहते हैं । इसके लिए कि किसी वृक्ष में पत्ते आने बन्द हो जायें हमें उसकी जड़ों में पानी देना बन्द करना होगा । विचारों की इस भीड़ को हम किसी भांति पानी देते हैं वह अगर समझ में आजाय तो हम पानी देना बन्द कर देंगे, फिर वृक्ष के कुम्हला जाने में बहुत देर नहीं है ।

किस प्रकार पानी देते हैं ? पहली बात,—हजारों वर्ष से आदमी के मन में यह भ्रम पैदा किया गया है कि तुम दूसरे के विचारों को संग्रह करके ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हो । यह सरासर झूठी और एकदम गलत बात है। कोई मनुष्य किसी दूसरे के विचारों के संग्रह से कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सका है । ज्ञान आता है भीतर से, विचार आते हैं बाहर से । ज्ञान होता है अपना और विचार होता है पराया और उधार। ज्ञान है निज का स्फुरण—वह जो स्वयं के भीतर छिपा है उसका प्रकट हो जाना और विचार है दूसरे के जूठे को इकट्ठा करना—चाहे गीता से इकट्ठा कर लें, चाहे कुरान से, चाहे बाइबिल से, चाहे धर्मगुरुओं से इकट्ठा कर लें चाहे शिक्षकों से । जो भी हम दूसरे से इकट्ठा कर लेते हैं वह हमारा ज्ञान नहीं बनता, बल्कि वह हमारे अज्ञान को छिपाने का मार्ग और

उपाय बन जाता है । और जिस आदमी का अज्ञान छिप जाता है वह आदमी जीवन में कभी भी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता । चूंकि हमें यह ख्याल है कि यह हमारा ज्ञान है इसलिए उसे हम प्राणपन से पकड़े रहते हैं । विचारों को हम पकड़े हुए हैं। हम उन्हें छोड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाते । नीचे से हम उनको सम्हाले हुए हैं क्योंकि हमें यह ख्याल है कि यही हमारा ज्ञान है अगर यह छूट गया तो हम तो अज्ञानी हो जायेंगे लेकिन स्मरण रखिये विचारों को कोई कितना ही पकड़े रहे उससे ज्ञानी नहीं होता ।

एक आदमी एक कुआं बनाता है,—जमीन खोदता है, पत्थर निकालता है और मिट्टी निकालता है और फिर नीचे झरना फूटता है और कुआं में पानी भर जाता है । कुएँ में पानी मौजूद है, पानी कहीं से लाना नहीं पड़ा । केवल बीच में कुछ पत्थर और मिट्टी की पर्तें थीं उन्हें अलग कर देना पड़ा । कोई अवरोध थे, कोई बाधाएं थीं, उनको अलग कर दिया और पानी प्रकट हो गया । कुएं में पानी लाना नहीं पड़ता है, पानी आता है, केवल बीच में जो रुकावट है उसको दूर कर देना होता है । ज्ञान भीतर मौजूद है, उसे भी कहीं से लाना नहीं है उसके झरने भीतर छिपे हैं, केवल बीच की बाधाएं—पत्थर और मिट्टी खोद कर अलग कर देने हैं और फिर ज्ञान के झरने प्रकट होने शुरू हो जायेंगे। एक कुआं भी बनता है और एक हौज भी बनती है । हौज के बनने का रास्ता अलग है । हौज बनाने में कहीं झरने नहीं खोजने पड़ते हैं पानी के । हौज बनाने का रास्ता कुएं से बिलकुल विपरीत है । हौज बनाने के लिए मिट्टी-पत्थर खोदने नहीं, खोजने पड़ते हैं, लाकर जोड़ने पड़ते हैं और मिट्टी पत्थर की दीवाल जोड़नी और उठानी पड़ती है । दीवाल भी बन जाती है लेकिन पानी नहीं आता है । फिर किन्हीं दूसरे कुएं से पानी उधार लेकर उस हौज को भर देना पड़ता है। ऊपर से देखने में हौज कुएं का धोखा देने लगता है । हौज में भी पानी दिखाई

पड़ता है, कुएं में भी पानी दिखायी पड़ता है। लेकिन हौज और कुएं के पानी में जमीन आसमान का फर्क है ।

पहला फर्क तो यह है कि हौज के पास अपना कोई पानी नहीं है । और जो पानी अपना नहीं, उससे दुनिया में कभी कोई प्यास नहीं बुझती । हौज के पास जो भी है, उधार है और उधार बहुत जल्दी बासी हो जाता है और सड़ जाता है। क्योंकि जो उधार है वह जीवन्त नहीं होता, वह मृत होता है। हौज अगर भरी रहेगी तो सड़ जायेगी, बहुत जल्दी बदबू फेंकने लगेगी । कुएं के पास जल के अपने स्रोत हैं इसीलिए कुआं सड़ नहीं पाता। हौज और कुएं के प्राणों में दो अलग प्रक्रियायें चलती हैं । हौज चाहती है कि उसके पानी को कोई छीन न ले क्योंकि उसका पानी गया कि वह खाली हुई और कुआं चाहता है कि कोई मेरे पानी को उलीच ले, कोई मेरे पानी को ले ले ताकि उसमें और नया पानी भर जाय—ताजा और ज्यादा जीवित । कुआँ पुकारता है कि मेरे पानी को ले लो और बांट लो ! और हौज पुकारती है कि दूर रहना, मेरे पानी को मत छू लेना ! उल्टे हौज तो ये चाहती है कि किसी के पास पानी हो तो वह और यहां लाकर डाल दे ताकि उसकी सम्पदा बढ़ जाय जबकि कुआँ चाहता है कि किसी के पास पात्र हो तो पानी ले जाय ताकि जो पानी बासी पड़ गया है बहुत दिन का भरा हुआ हो गया है, उससे वह मुक्त हो जाये और नया पानी उसे उपलब्ध हो जाय । कुआँ बांटना चाहता है और हौज संग्रह करना चाहती है। कुएं के पास पानी के झरने हैं जो सागर से जुड़े हैं । कुआँ छोटा सा दिखायी पड़ता है लेकिन गहरे में अनन्त से जुड़ा हुआ है। हौज कितनी ही बड़ी क्यों न दिखायी पड़ती हो, उसका सम्बन्ध किसी से भी नहीं है, वह अपने में ही समाप्त है। उसके पास कोई झरने नहीं हैं। उसके पास दूर से जोड़ने वाला कोई मार्ग नहीं है इसलिए अगर कोई हौज से जाकर कहे कि सागर भी होता है तो हौज हंसेगी—कहेगी 'कहीं सागर होता है !

कहीं कोई सागर नहीं है' । हौज को सागर का पता भी क्या । लेकिन अगर कोई कुएं से कहे कि कुआँ तू बहुत बड़ा है तो कुआँ सोचेगा कि मेरा अपना क्या है ? सब सागर का है, में हूं ही कहां ? मेरे पास तो जो भी है वह दूर किसी और से जुड़ा है। कुएं का अपना कोई अहंकार नहीं होता है कि 'मै हूं' । हौज का अपना अहंकार होता है कि 'मैं हूं' और बड़े मजे की बात तो यह है कि कुआँ बहुत बड़ा है और हौज बहुत छोटी। कुएं के पास अपनी सम्पदा है और हौज के पास अपनी कोई सम्पदा नहीं है ।

आदमी का मन भी या तो कुआँ बन सकता है या हौज बन सकता है—ये दोनों ही रास्ते हैं आदमी के बुद्धि के बन जाने के । और जिस आदमी की बुद्धि हौज बन जाती है वह आदमी धीरे धीरे पागल हो जाता है और हम सबकी बुद्धि हौज बन गयी है । हमने कुआँ बनाया नहीं, हमने हौज बनायी है। हम दुनिया भर से बातों को इकट्ठा कर लेते हैं—किताबों से, शास्त्रों से, उपदेशों से और सोचते हैं हम ज्ञानी हो गये हैं । हम हौज की गलती में पड़ गये । हौज समझ ली कि हम कुआँ हो गये । भ्रम पैदा हो जाता है क्योंकि दोनों में पानी दिखाई पड़ता है । एक पंडित के पास भी ज्ञान दिखायी पड़ता है, एक ज्ञानी के पास भी ज्ञान दिखायी पड़ता है। लेकिन पंडित हौज है और ज्ञानी कुआँ है । दोनों में फर्क है और यह फर्क इतना गहरा और बुनियादी है जिसका कोई हिसाब नहीं । पंडित का ज्ञान उधार और बासा और सड़ा हुआ ज्ञान है । दुनिया में जितना उपद्रव हुआ है वह पंडित के ज्ञान से हुआ है । हिन्दू और मुसलमान के बीच जो झगड़ा है वह किसका झगड़ा है ? क्या ज्ञानियों का झगड़ा है ? जैन और हिन्दू के बीच जो विरोध है क्या यह ज्ञानियों का विरोध है ? नहीं, यह पंडितों का विरोध है, वह उन मस्तिष्कों का झगड़ा है जो हौज हैं, सड़े हुए हैं, उधार और बासे

सारी दुनिया में जो इतने उपद्रव हुए हैं वे हौज बन गये मस्तिष्कों

के कारण हुए हैं । आदमी हैं दुनिया में, न कोई ईसाई है. न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान है, न कोई जैन है लेकिन ये हौजों के लेबल हैं । जिन हौजों ने जिस जिस कुएं से पानी उधार भरा है उसी कुएं का लेबल अपने ऊपर चिपकाए हुए हैं कि मैंने तो गीता से पानी लिया है तो मैं हिन्दू हूं, मैंने कुरान से पानी लिया है तो मैं मुसलमान हूं, लेकिन ज्ञानी तो किसी से पानी लेता नहीं है, पानी उसके भीतर से आता है । तो न वह हिन्दू हो सकता है न मुसलमान हो सकता है, न वह ईसाई हो सकता है। ज्ञानी किसी सम्प्रदाय का नहीं हो सकता । लेकिन पंडित बिना सम्प्रदाय के होना असम्भव है । पंडित जब भी होगा, संप्रदाय का ही होगा । हमने अपने मन को एक बासी, उधार चीज बना ली है । फिर इसको हम पकड़ते हैं । जैसा मैंने कहा—हौज चिल्लाती है कि मेरे पानी को मत छीन लेना । पानी गया तो मैं खाली और रिक्त हो जाऊंगी, मेरे भीतर कुछ भी नहीं बचेगा । मेरी सम्पदा तो उधार इकट्ठी की हुई है इसलिए कोई छीन न ले । और स्मरण रहे, जो सम्पदा छीनने से कम हो जाती है वह हमेशा उधार और झूठी होती है । जो सम्पदा छीनने से और बढ़ जाती हो वही सम्पदा केवल सत्य हो सकती है । जो सम्पत्ति बंट जाने से समाप्त हो जाती है वह संपत्ति नहीं, केवल संग्रह है । बांटने से जो बढ़ जाती हो वही केवल सम्पत्ति है । सम्पत्ति का लक्षण यही है कि वह बांटने से बढ़नी चाहिए । बांटने से घटती हो तो वह सम्पत्ति नहीं है और जिस सम्पत्ति में यह भय है कि यह बांटने से घट जायगी उसको सम्हालने में इतनी विपत्ति पैदा हो जाती है जिसका कोई हिसाब नहीं ।

सब उधार सम्पत्ति विपत्ति बन जाती है, सम्पत्ति कभी नहीं हो पाती । फिर डर पैदा होता है कि कहीं घट न जाय तो उसे हम जोर से पकड़ते हैं । हम अपने विचारों को जोर से पकड़े हुए हैं । हम उनको प्राणों से भी ज्यादा सम्हाले हुए हैं । यह मन में जो इतना

कचरा इकट्ठा हो गया है यह आकस्मिक नहीं है। हमने योजना की है, इसको इकट्ठा किया है और इसे सम्हाले हुए हैं फिर अगर हम यह भी सोचते हों कि विचारों के संग्रह से ज्ञान उत्पन्न हो सकता है तो हम विचारों से कभी मुक्त नहीं हो सकते । कैसे मुक्त हो सकेंगे ? जड़ों को पानी देंगे और पत्ते काटेंगे, यह नहीं हो सकता । इसलिए पहली बुनियादी बात यह समझ लेना जरूरी है कि ज्ञान बात ही अलग है और विचार का संग्रह बिल्कुल ही अलग बात है । संग्रह ज्ञान नहीं है, दूसरे से लिया गया विचार ज्ञान नहीं है । दूसरों से इकट्ठे किये गये विचार मनुष्य को सत्य के या स्वयं के निकट नहीं ले जाते । यह ज्ञान झूठा है, मिथ्या है जो हम दूसरे से इकट्ठा कर लेते हैं । इससे भ्रम पैदा होता है कि ज्ञान मिल गया और ज्ञान मिलता भी नहीं, ज्ञान से हम वंचित रह जाते हैं । यह ज्ञान वैसा ही है जैसे तैरने के सम्बन्ध में कोई शास्त्र पढ़ ले और तैरने के संबंध में इतना जान ले कि अगर उसे प्रवचन करना हो तो प्रवचन कर दे, अगर किताबें लिखनी हों तो किताब लिख दे लेकिन कोई आदमी उसे नदी में धक्का दे दे तो हमें पता चल जायगा कि वह तैरना कितना जानता था । उसने किताबों से तैरने के सम्बन्ध में सब बातें पढ़ ली थीं । वह तैरने के बाबत पंडित मालूम पड़ता था लेकिन तैरने का उसे कोई भी पता नहीं था ।

एक मुसलमान फकीर हुआ नसरुद्दीन । वह एक नदी पार कर रहा था एक नाव में बैठकर । मल्लाह की और उसकी रास्ते में कुछ बातचीत हुई । नसरुद्दीन बड़ा ज्ञानी आदमी समझा जाता था । ज्ञानियों की हमेशा यह कोशिश रहती है कि किसी को अज्ञानी सिद्ध करने का मौका मिल जाय तो वह छोड़ नहीं सकते हैं । मल्लाह अकेला था मल्लाह से उसने पूछा कि भाषा जानते हो ? तो उस मल्लाह ने कहा कि बस जितना बोल लेता हूं उतना ही जानता हूं । पढ़ना-लिखना मुझे कुछ पता नहीं है । नसरुद्दीन ने कहा; तेरा चार आना जीवन

व्यर्थ गया क्योंकि जो पढ़ना ही नहीं जानता उसे जिन्दगी में क्या ज्ञान मिल सकता है? बिना पढे पागल कहीं ज्ञान मिला है लेकिन मल्लाह चुपचाप हंसने लगा। फिर आगे थोड़े चले और नसरुद्दीन ने पूछा; 'तुझे गणित आती है?' उस मल्लाह ने कहा; 'नहीं गणित मुझे बिल्कुल नहीं आती, वैसे दो और दो चार जोड़ लेता हूं यह बात दूसरी है।' नसरुद्दीन ने कहा कि तेरा चार आना जीवन और बेकार चला गया क्योंकि जिसे गणित ही नहीं आती है, जिसे जोड़ ही नहीं आता है वह जिन्दगी में क्या जोड़ सकेगा, क्या जोड़ पायेगा? अरे जोड़ना तो जानना चाहिए तो कुछ जोड़ भी सकता है आदमी। तेरा ८ आना जीवन बेकार गया। फिर जोर का तूफान आया, आंधी आयी और नाव उलटने के करीब हो गयी। उस मल्लाह ने पूछा: 'आपको तैरना आता है?' नसरुद्दीन ने कहा: 'नहीं, मुझे तैरना नहीं आता। उस मल्लाह ने कहा आपकी सोलह आना जिन्दगी बेकार जाती है। मैं तो चला। न मुझे गणित आती है और न मुझे भाषा आती है लेकिन मुझे तैरना आता है। मैं जाता हूं और अब आपकी सोलह आना जिन्दगी बेकार है।

जिन्दगी में कुछ जीवन्त सत्य हैं जो स्वयं ही जाने जा सकते हैं, जो किताबों से नहीं जाने जा सकते हैं, जो शास्त्रों से नहीं जाने जा सकते हैं। आत्मा का या परमात्मा का सत्य स्वयं ही जाना जा सकता है और कोई उपाय नहीं है। लेकिन शास्त्र में सब बातें लिखी हैं, उनको हम पढ़ लेते हैं, उनको हम समझ लेते हैं, वे हमें कण्ठस्थ हो जाती हैं, वे हमें याद हो जाती हैं। दूसरे के बताने के काम भी आ सकती हैं लेकिन उनसे कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकता है। विचारों का संग्रह ज्ञान का लक्षण नहीं है। अज्ञान का ही लक्षण है क्योंकि जिस आदमी की अपने विवेक की शक्ति जाग्रत हो जाती है वह विचार के संग्रह से मुक्त हो जाता है। उसे संग्रह करने का कोई सवाल ही नहीं रह जाता फिर वह स्वयं ही जानता

है। और जो स्वयं जानता है वह मन में मधुमक्खियों का छता नहीं रहने देता है। यह जानना मन को एक दर्पण बना देता है, एक झील बना देता है।

हमारा मन मधुमक्खियों का भिनभिनाता छता है। इन मधुमक्खियों को हमने स्वयं पाला है और ज्ञान समझकर इन विचारों को जगह दी है। इनको ठहराया है, मन को इनका निवास बनाया है। हमने अपने मन में एक धर्मशाला बना दी है कि जो भी आये ठहर जाय। बस एक ही बात का ख्याल रखें कि वह ज्ञान के वस्त्र पहनकर आए, फिर हमारी धर्मशाला में ठहरने का उसे हक है। इस तरह धर्मशाला में भीड़-भाड़ बढ़ती चली गयी है। और यह भीड़ इतनी बढ़ गयी है कि मालिक कौन है यह तय करना इस भीड़ के भीतर मुश्किल हो गया है। और वे जो मेहमान बन गये हैं वे इतना शोर गुल मचाते हैं कि जो सबसे ज्यादा चिल्लाता है वही मालिक मालूम होता है और असली मालिक कौन है इसका हमें कोई पता ही नहीं चलता है। हर विचार जोर से चिल्लाता है कि मैं मालिक हूं और भीतर जो मालिक है धर्मशाला की भीड़ में उसका कोई पता चलना संभव नहीं रह गया। कोई विचार निकलने के लिए राजी नहीं है। जिसको हमने आमंत्रण देकर बुलाया था आज वह कैसे निकल जायेगा। मेहमान को बुला लेना आसान है, निकालना उतना आसान नहीं है। हजारों साल से मेहमान आदमी के मन में इकट्ठे होते चले गये हैं। इनको विदा करने को अगर आपसे कहूं तो ये एकदम से विदा नहीं हो सकते, लेकिन अगर बुनियाद हम समझ लें तो ये विदा हो सकते हैं।

पहली बुनियाद है दूसरे का सीखा हुआ सारा विचार व्यर्थ है इसका स्पष्ट बोध। अगर यह स्पष्ट हो जाय तो हमने विचार के इकट्ठे होने की जड़ काट दी। इसी ज्ञान के भ्रम के कारण हम इन विचारों को पोषण देते हैं—इनकी जड़ों में पानी देते हैं।

एक वृद्ध संन्यासी अपने एक युवा शिष्य के साथ जंगल पार कर रहा था। रात उतर आयी, अंधेरा घिरने लगा। उस बूढ़े संन्यासी ने युवा संन्यासी से पूछा कि बेटा रास्ते में कोई डर तो नहीं है, कोई भय तो नहीं है? रास्ता बड़ा बीहड़ है अंधेरा हो गया है।

युवा संन्यासी बहुत हैरान हुआ क्योंकि संन्यासी को तो भय का सवाल ही नहीं उठना चाहिए। संन्यासी को भय का कहां सवाल है चाहे रात अंधेरी हो, चाहे उजाली, और चाहे जंगल हो, चाहे बाजार हो। संन्यासी को भय उठे, यही आश्चर्य की बात है। और उस बूढ़े को आज तक कभी नहीं उठा था। आज क्या गड़बड़ हो गयी है, इसे भय क्यों लगता है? कुछ न कुछ मामला गड़बड़ है। फिर वे थोड़ा और आगे बढ़े। रात और गहरी होने लगी। उस बूढ़े ने फिर पूछा कि कोई भय तो नहीं है? हम जल्दी दूसरे गांव को पहुंच जायेंगे? कितना फासला होगा? फिर वे एक कुएं पर हाथ-मुंह धोने को रुके। उस बूढ़े ने अपने कंधे पर डाली हुई झोली उस युवक को दी और कहा, संभाल के रखना। उस युवक को ख्याल हुआ कि जरूर झोली में कुछ न कुछ होना चाहिए अन्यथा न भय का कारण है और न संभाल कर रखने का कारण है। संन्यासी भी कोई चीज संभाल कर रखे तो फिर संन्यासी होने का मतलब ही न रहा। संभालकर जो रखता है वही तो गृहस्थ है। सब संभाल संभाल कर रखता है इसीलिए गृहस्थ है। संन्यासी को क्या संभाल कर रखने की बात है? बूढ़ा हाथ मुंह धोने लगा। उस युवक ने झोली में हाथ डाला और देखा सोने की एक ईंट उस झोली में है। वह समझ गया कि भय किस बात में है। उसने ईंट उठाकर जंगल में फेंक दी और एक पत्थर का टुकड़ा उतना ही वजन का झोली में रख दिया। बूढ़ा जल्दी से मुंह धोकर आया और उसने झोली उठा ली, वजन देखा, झोली कंधे पर रखी और चल पड़ा। फिर थोड़ी दूर चल कर वृद्ध संन्यासी कहने लगा: 'रात बड़ी हुई जाती है, रास्ते में कहीं भटक तो नहीं गये हैं? कोई भय तो नहीं है?' उस युवक ने कहा; 'अब आप निर्भय हो जाइए, भय को मैं पीछे फेंक आया।' बूढ़ा तो घबरा गया। उसने जल्दी से झोली में हाथ डाला—देखा, वहां तो एक पत्थर का टुकड़ा रखा हुआ था। एक क्षण को तो वह ठगा सा खड़ा रह गया और फिर हंसने लगा और उसने कहा; 'मैं भी खूब पागल था। इतनी देर पत्थर के टुकड़े को लिए हुए था तब भी मैं भयभीत हो रहा था क्योंकि मुझे यह ख्याल था कि यह सोने की ईंट है। था पत्थर का वजन लेकिन सोने की ईंट के भ्रम में उसे सम्हाले हुए था।' फिर जब पता चल गया कि पत्थर है तो उठाकर उसने फेंक दिया। झोली एक तरफ रख दी और युवक से कहा; 'अब रात यहीं सो जायें, अब कहां परेशान होंगे।' फिर रात वे वहीं सो गये।

आप जिस विचार को सोने की ईंट समझे हुए हैं उसे आप संभाले रहेंगे, उससे आप मुक्त नहीं हो सकते। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि वह सोने की ईंट नहीं है। वहां बिल्कुल पत्थर का वजन है। जिसको आप ज्ञान समझे हैं वह जरा भी ज्ञान नहीं है, वह सोना नहीं है, वह बिल्कुल पत्थर है। दूसरे से मिला हुआ ज्ञान बिल्कुल पत्थर है। खुद से आया हुआ ज्ञान ही सोना होता है। जिस दिन आपको यह दिखाई पड़ जायगा कि झोली में ईंट सम्भाले हुए हैं उसी दिन मामला खत्म हो जाएगा। फिर उस ईंट को उठाकर फेंकने में कठिनाई नहीं रह जाती है। जब तक आपको लग रहा है कि यह विचार ज्ञान है तब तक आप इसे नहीं फेंक सकते हैं। तब तक आपका मन उपद्रव का स्थल बना ही रहेगा, बना ही रहेगा। आप लाख उपाय करेंगे, कोई उपाय काम नहीं करेगा। क्योंकि आप बहुत गहरे में चाहते हैं कि यह बना रहे क्योंकि आप समझते हैं कि यह ज्ञान है। जीवन में सबसे बड़ी कठिनाई इस बात से पैदा होती है कि जो चीज जो नहीं है उसको हम वह समझ लेते हैं। पत्थर को कोई सोना समझ ले तो मुश्किल

शुरू हो जाती है। पत्थर को पत्थर समझ लेने से मामला खत्म हो जाता है।

हमारे विचार की सम्पदा वास्तविक सम्पदा नहीं है--इस बात को समझ लेना बहुत जरूरी है। इसे कैसे समझ लेंगे, क्या मेरे कहने से आप समझ लेंगे? अगर मेरे कहने से समझ लिए तो यह समझ उधार हो जायगी, यह समझ बेकार हो जायगी। मेरे कहने से समझने का सवाल नहीं है, आपको देखना पड़े, खोजना पड़े, पहचानना पड़े। वह युवक अगर उस बूढ़े से कहता कि चले चलिए, कोई फिक्र नहीं, आपकी झोली में ईंट है, पत्थर है, कोई सोना नहीं है, तो इससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं था जबतक कि बूढ़ा खुद ही न देख ले कि उसकी झोली में ईंट है, सोना है या पत्थर। युवक कहता तो कोई बात ख्याल में आने वाली न थी। हंसता लड़के पर कि लड़का है, नासमझ है, कुछ पता नहीं। या हां भी भर देता तो वह हां झूठी होती, भीतर गहरे में वह ईंट को सम्भाले ही रहता लेकिन उसने खुद देखा तो फर्क पड़ गया।

तो अपने मन की झोली को देखना जरूरी है कि जिसे हम ज्ञान समझ रहे हैं वह विचार-ज्ञान है, उसमें ज्ञान जैसा कुछ है भी या कि सब फजूल कचरा हमने इकट्ठा कर रखा है? गीता के श्लोक इकट्ठे कर रखे हैं, वेदों के वचन इकट्ठे कर रखे हैं, बुद्ध, महावीर के शब्द इकट्ठे कर रखे हैं और उन्हीं को लिए हुए बैठे हैं और उन्हीं का हिसाब लगाते रहते हैं। उनका अर्थ निकालते रहते हैं, टीकाएं पढ़ते रहते हैं और टीकाएं लिखते रहते हैं और एक दूसरे को समझाते रहते हैं और समझते रहते हैं। यह बिल्कुल पागलपन पैदा हो गया है। इससे कोई सम्बन्ध नहीं है ज्ञान का। इससे जीवन में कोई ज्योति नहीं फूटेगी, कोई किरण पैदा नहीं होगी और इस कचरे को इकट्ठा करके आप इस भ्रम को पाले रहेंगे कि हमने बड़ी संपदा इकट्ठी कर रखी है, हम बड़े मालिक हैं, हमारे पास बहुत कुछ है, हमारी तिजोरी भरी हुई है और इसी भ्रम के

साथ आप जीवन को व्यतीत कर देंगे और नष्ट कर देंगे।

एक युवा संन्यासी एक आश्रम में ठहरा था। वह एक बूढ़े संन्यासी के निकट सान्निध्य को आया था लेकिन दो चार दिन में ही उसे लगा कि इस बूढ़े को कुछ भी पता नहीं है। रोज वही-वही बातें सुन कर वह हैरान हो गया। सोचा छोड़ दूं इस आश्रम को, कहीं और खोजूं, यह जगह मेरे लिए नहीं है। कोई और गुरु की तलाश करूं। लेकिन जिस दिन वह छोड़ने को था उसी दिन एक और संन्यासी उस आश्रम में मेहमान हुआ। रात आश्रम के अन्तःवासी इकट्ठे हुए और उनकी बातें हुईं। उस नये संन्यासी ने इतनी ज्ञान की बातें कीं, ऐसी सूक्ष्म और बारीक, ऐसी गहरी और गम्भीर कि छोड़ने वाले युवा संन्यासी को लगा कि गुरु हो तो ऐसा हो। दो घंटे में उसने मंत्रमुग्ध कर दिया। उसके मन में यह भी ख्याल हुआ कि हमारे बूढ़े गुरु के मन में बड़ी पीड़ा होती होगी। आज बड़ी आत्मग्लानि लगती होगी कि मैं बूढ़ा हो गया और मैं कुछ भी नहीं जान पाया और यह आगन्तुक इतना जानता है।

दो घंटे बाद जब चर्चा समाप्त हुई तो उस आये हुए संन्यासी ने बूढ़े गुरु की तरफ देखा और वृद्ध से पूछा कि आपको मेरी बातें कैसी लगीं? उस बूढ़े ने कहा: "तुम्हारी बातें? बातें तुम करते थे, लेकिन तुम्हारी उसमें कोई भी बात नहीं थी। और मैं तो बहुत गौर से सुनता था कि तुम कुछ बोलो लेकिन तुम कुछ बोलते ही नहीं हो!" उस संन्यासी ने कहा, "दो घंटा मैं नहीं तो और कौन बोलता रहा?" उस बूढ़े ने कहा कि अगर मुझे पूछते हो तो सच्चाई और ईमानदारी की बात तो यह है कि तुम्हारे भीतर से किताबें बोलती थीं, शास्त्र बोलते थे, लेकिन तुम जरा भी नहीं बोलते थे। तुमने एक शब्द भी नहीं बोला। जो तुमने इकट्ठा कर लिया था उसी का वमन करते थे, उसी की उल्टी करते थे, उसी को तुम बाहर निकालते थे और तुम्हारे वमन और उल्टी से मैं बहुत घबरा गया कि तुम बड़े बीमार आदमी हो। तुम दो घंटे तक उसकी उल्टी ही करते रहे जो तुम्हारे भीतर इकट्ठा

था। मुझे तो उसमें ज्ञान की सुगन्ध जरा भी नहीं आयी क्योंकि बाहर से जो भीतर ले जाया जाय और फिर बाहर निकाल दिया जाय उसमें वमन की दुर्गन्ध हो जानी बिल्कुल ही निश्चित है। तुम तो कुछ भी नहीं बोले, एक शब्द भी तुम्हारा अपना नहीं था। वह युवा संन्यासी जो आश्रम छोड़ना चाहता था, रुक गया। आज उसे पहली दफा पता चला कि जानने-जानने में बहुत फर्क है। एक जानना वह है जो हम बाहर से इकट्ठा कर लेते हैं। एक जानना वह है जिसका भीतर से जन्म हो जाता है। बाहर जो इकट्ठा कर लेते हैं वह हमारा बन्धन हो जाता है, वह हमें मुक्त नहीं करता है और भीतर से जो आता है वह हमें मुक्त करता है।

तो पहली बात भीतर खोज लेने की है कि मैं जो जानता हूं वह क्या मैं जानता हूं? यह अपने जानने के एक-एक विचार और एक-एक शब्द से पूछ लेना जरूरी है कि क्या मैं जानता हूं? और अगर उत्तर आये कि नहीं जानते हैं तो आपकी जिन्दगी में सोने की ईंट पत्थर की ईंट हो जायगी। दुनिया में सबको धोखा देना सम्भव है, अपने को धोखा देना सम्भव नहीं है। कोई आदमी खुद को धोखा नहीं दे सकता। जो आप नहीं जानते वह आप नहीं जानते। अपने से पूछें भीतर कि आप ईश्वर को जानते हैं? या कि आपने सुनी सुनाई बातें मान ली हैं कि ईश्वर है। अगर नहीं जानते तो ऐसे ईश्वर का दो कौड़ी भी मूल्य नहीं। वह आपकी जिन्दगी को थोड़े ही बदल सकता है। जिस ईश्वर को आप जानते हैं वही आपकी जिन्दगी की क्रान्ति बन सकता है। जिस ईश्वर को आप नहीं जानते वह दो कौड़ी का मूल्य नहीं रखता, वह ईश्वर झूठा है, वह ईश्वर है ही नहीं क्योंकि वह सब उधार है, उससे आपकी जिन्दगी में कोई परिवर्तन होने वाला नहीं है। अगर मैं आपसे पूछूं आप आत्मा को जानते हैं और आप कहें कि हां मैं जानता हूं क्योंकि मैंने किताब में पढ़ा हुआ है, क्योंकि हमारे मन्दिर में जो पंडित और पुरोहित हैं वे समझाते हैं कि हां, आत्मा होती है।

तो यह कोई जानना हुआ? नहीं, इस सीख लेने से जानने का कोई संबंध नहीं है। आदमी को जो भी सिखा दिया जाय वह तोते की तरह याद कर लेता है। इस याद कर लेने से जानने का कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर आप हिन्दू घर में पैदा हुए हैं तो आप एक तरह के तोते हो जाते हैं और जैन घर में पैदा हुए हैं तो दूसरी तरह के तोते हो जाते हैं। मुसलमान घर में हुए हैं तो तीसरी तरह के तोते हो जाते हैं, लेकिन सब जगह आप तोते बन जाते हैं। जो-जो आपको सिखा दिया जाता है उसी को आप जिन्दगी भर दोहराये चले जाते हैं और चूंकि आपके आसपास आप ही जैसे तोते होते हैं इसलिए कोई एतराज भी नहीं करता है, कोई इन्कार भी नहीं करता है। तोते सिर हिलाते हैं कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप क्योंकि यही उन्होंने भी सीखा है जो आपने सीखा है।

सारी मनुष्य जाति को ज्ञान का धोखा दिया गया है। इस सारे झूठे ज्ञान को झाड़ पोंछ कर बाहर फेंक देने की जरूरत है तो ही कभी आपकी जिन्दगी में वह ज्ञान भी आ सकता है जिसके आलोक में ईश्वर का अनुभव हो जाय और आत्मा की ज्योति दिखायी पड़ जाय। इस झूठे ज्ञान में यह संभावना नहीं है। रोशनी है ही नहीं, घर अंधेरा पड़ा हुआ है, दिया बुझा हुआ है और लोग समझा-समझा कर कह रहे हैं दिया जला हुआ है। बार-बार सुनने और समझने के कारण हम भी कह रहे हैं कि दिया जला हुआ है क्योंकि यह भय भी पैदा किया गया है कि अगर दिया जला हुआ नहीं देखा तो नर्क चले जाओगे। सबको दिया जला हुआ दिखता है तो हमको भी दिखने लगता है धीरे-धीरे।

एक सम्राट था। एक अद्भुत अजनबी आदमी ने एक दिन सुबह आकर उस सम्राट को कहा कि आपने सारी पृथ्वी जीत ली है। आपको आदमियों के वस्त्र शोभा नहीं देते। मैं आपके लिए देवताओं के वस्त्र ला दूंगा। बुद्धि कहती थी कि देवताओं के वस्त्र कहीं होंगे? देवता भी कहीं होंगे—इस पर भी बुद्धि को शक होता था लेकिन राजा

को लोभ ने पकड़ा कि हो सकता है देवता कहीं हों और वस्त्र कहीं से आ जायें तो मैं पृथ्वी पर पहला आदमी रहूंगा मनुष्य के इतिहास में जिसने देवताओं के वस्त्र पहने और यह आदमी अगर धोखा भी देगा तो क्या धोखा देगा। वह बड़ा सम्राट था। अरबों खरबों रुपया उसके पास ऐसे ही पड़ा था। दस पचास हजार रुप्ये ले भी जायगा तो हर्जा क्या है। उसने उस आदमी को कहा, अच्छा ठीक है। क्या खर्च होगा? उस आदमी ने कहा, कम से कम एक करोड़ रुपया लग जायगा क्योंकि देवी देवताओं तक पहुंचने में बड़ी रिश्वत खिलानी पड़ती है। कोई आदमी ही थोड़े रिश्वत लेता है देवी देवता भी बड़े होशियार हैं। वे भी रिश्वत माँगते हैं और आदमी तो थोड़े बहुत पैसे से राजी हो जाता है, गरीब आदमी है लेकिन देवी देवता थोड़े पैसे से राजी नहीं होते। भारी ढेर हो तभी उनकी नजर में पड़ता है नहीं तो नजर में भी नहीं पड़ता। बड़ी मुश्किल से कम से कम एक करोड़ खर्च होगा। राजा ने कहा, 'अच्छा कोई हर्जा नहीं है लेकिन ध्यान रहे, धोखा दोगे तो जिन्दगी से हाथ धो बैठोगे। तुम्हारे मकान पर आज से तलवारों का पहरा रहेगा।' एक करोड़ रुपया उस आदमी को दे दिया गया और उसके मकान पर पहरा बिठा दिया गया। सारी बस्ती के लोग हैरान थे और उन्हें विश्वास नहीं आता था कि कहां देवी, कहां देवता, कहां देवताओं का स्वर्ग और फिर यह आदमी न कहीं जाता दीखता था, न कहीं आता दीखता था। उसने कहा था ६ महीने के भीतर मैं वस्त्र ले आऊंगा। शक तो सभी को था लेकिन राजा निश्चिन्त था क्योंकि नंगी तलवार का पहरा था। वह आदमी ठग नहीं हो सकता था, धोखा नहीं दे सकता था। लेकिन वह आदमी राजा से बहुत ज्यादा समझदार था।

छः महीने बाद ठीक दिन पर वह एक बहुत खूबसूरत पेटी लेकर बाहर निकला और उसने सैनिकों से कहा, 'राजमहल चलें, दिन आ गया और वस्त्र आगये।' सारी राजधानी इकट्ठी हो गयी। भारी

जलसा मनाया गया। वह आदमी जब दरबार में ही पेटी लेकर आ गया तो शक का कोई कारण नहीं रहा। उसने लाकर पेटी रख दी। पेटी का ढक्कन खोला, हाथ भीतर डाला और खाली हाथ बाहर निकाला और राजा से कहा यह पगड़ी लें। राजा ने कहा, "पगड़ी! दिखायी तो नहीं पड़ती, हाथ खाली है।" तभी उस आदमी ने कहा कि एक स्मरण आपको दिला दूं, देवताओं ने कहा है कि जो अपने ही बाप से पैदा हुआ होगा उसी को पगड़ी और वस्त्र दिखायी पड़ेंगे। आपको पगड़ी दिखायी पड़ती है न? राजा ने कहा, बिल्कुल दिखायी पड़ती है। वह पगड़ी वहां थी नहीं, हाथ खाली था और सारे दरबारी ताली बजाने लगे। उनको भी पगड़ी नहीं दिखायी पड़ती थी पर सभी कहने लगे ऐसी सुन्दर पगड़ी तो हमने कभी देखी नहीं थी। पगड़ी बहुत सुन्दर है, बड़ी अद्‌भुत है आदमी ने कभी ऐसी पगड़ी नहीं देखी। अब जब सभी दरबारी कहने लगे कि पगड़ी बहुत सुन्दर है तो राजा मुश्किल में पड़ गया। उस आदमी ने कहा, "अच्छा अब अपनी पगड़ी निकालिए और यह पगड़ी पहन लीजिये।" वह पगड़ी उसने अलग कर दी और वह झूठी पगड़ी जो थी ही नहीं वह राजा ने पहन ली। पगड़ी तक ही बात होती तो ठीक थी लेकिन आगे राजा दिक्कत में पड़ गया। धीरे-धीरे कोट भी उतर गया, फिर आखिरी वस्त्र भी उतारने का वक्त आ गया। राजा नग्न होने लगा लेकिन सारे दरबारी चिल्ला रहे हैं, बहुत सुन्दर वस्त्र हैं! अद्‌भुत! ऐसे वस्त्र कभी देखे नहीं। क्योंकि जो दरबारी जोर से नहीं कहेगा लोग शक करेंगे, पता नहीं अपने पिता से पैदा हुआ है या किसी और से पैदा हो गया है। और जब सारी भीड़ चिल्लाती थी तो एक-एक आदमी को यह लगा कि मेरी आंखें गलत देखती होंगी। मैं ही अपने पिता के बाबत गल्ती में रहा। बाकी सब लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। इतने लोग गलत तो नहीं कह सकते। जब सभी कहते हैं ती ठीक कहते होंगे। सभी तो

गलती में नहीं हो सकते। मैं अकेला गलती में हो सकता हूं इसलिए अगर चुप चाप रह जाऊं तो लोग समझेंगे कि मुझे दिखायी नहीं पड़ रहा है। राजा डरा कि अब अन्तिम वस्त्र उतारे या न उतारे। एक तरफ यह था कि सारा दरबार नग्न देख लेगा और दूसरी तरफ यह डर था कि नग्नता तो फिर भी ठीक है लेकिन अगर दुनिया को यह पता चल गया कि मैं अपने बाप से पैदा नहीं हुआ तो और मुश्किल हो जायगी। अब बड़ी मुश्किल थी--इधर गिरे तो कुआं उधर गिरे तो खाई। आखिर नग्नता को ही स्वीकार करना ठीक था। कमसे कम पिता तो बचता था। नग्न ही देख लेंगे लोग और ये भी हो सकता है कि जब सबको वस्त्र दिखायी पड़ रहे हैं तो वे सच में हों। हो सकता है मैं ही गलती में हूं और व्यर्थ में झंझट हो जाय। तो उसने अंतिम वस्त्र भी छोड़ दिया। वह नंगा खड़ा हो गया। फिर उस आदमी ने कहा, "महानुभाव, देवताओं के वस्त्र पहली दफा पृथ्वी पर उतरे हैं। आपकी शोभा यात्रा निकलनी चाहिए। रथ पर आपको गाँव में घुमाया जाना चाहिए।" राजा बहुत डरा लेकिन अब कोई रास्ता नहीं था। अब आदमी पहली कड़ी पर गल्ती कर जाता हैं तो फिर किसी भी कड़ी पर रुकना बहुत मुश्किल हो जाता है। फिर लौटना मुश्किल हो जाता है। ईमानदारी पहली कड़ी पर अगर नहीं की गयी तो आगे की कड़ियों पर आदमी और बेईमानी में गिरता चला जाता है, फिर उसे मुश्किल हो जाता है कि कहाँ से लौटें क्योंकि हर कड़ी और कड़ी को बांधने का रास्ता बन जाती है। वह मुश्किल में पड़ गया था, इन्कार भी नहीं कर सकता था। रथ पर बैठ कर उसकी शोभा यात्रा निकली। हो सकता है आप भी उस नगर में रहे हों क्योंकि बहुत लोग उस नगर में थे और सबने वह शोभा यात्रा देखी और आप भी रहे होंगे तो आपने भी उन वस्त्रों की तारीफ की होगी क्योंकि कौन चूकता है, कौन मौका छोड़ता है। सब लोग जोर से तारीफ करने लगे कि वस्त्र बहुत सुन्दर हैं। सुनते हैं कि

सिर्फ एक बच्चे ने जो अपने बाप के कन्धे पर बैठा हुआ भीड़ में आ गया था उसने भर यह कहा था कि पिताजी, राजा तो नग्न मालूम होता है। उसके बाप ने कहा, "नासमझ चुप रह, अभी तेरी उम्र कितनी है, अभी तुझे अनुभव नहीं हैं। जब अनुभव होगा तुझे भी वस्त्र दिखायी पड़ने शुरू हो जायेंगे। मुझे वस्त्र दिखायी पड़ते हैं।"

बच्चे कभी-कभी सत्य कह देते हैं लेकिन बूढ़े उनके सत्य को टिकने नहीं देते क्योंकि बूढ़ों का अनुभव ज्यादा है। और अनुभव बड़ी खतरनाक बात है। अनुभव के कारण ही उस बूढ़े ने कहा, चुप रह, जब तुझे भी अनुभव होगा वस्त्र दिखाई पड़ेंगे। हम सब को दिखायी पड़ रहे हैं। हम पागल हैं? कभी-कभी बच्चे कह देते हैं कि इस पत्थर की मूर्ति में हमें भगवान् नहीं दिखायी पड़ते हैं। बूढ़े कहते हैं, चुप, हमें भगवान दिखायी पड़ रहे हैं। वह रामचन्द्र जी खड़े हुए हैं। जब अनुभव होगा, तुझे भी दिखायी पड़ेंगे।

आदमी एक पारस्परिक धोखे (Mutual deception) में बंधा हुआ है और जब सारे लोग एक ही धोखे में बंधे होते हैं तो दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाता है। आपको खोज लेना जरूरी है कि जिन ज्ञान के वस्त्रों को आप वस्त्र समझ रहे हैं वे वस्त्र हैं भी या कि आप उन वस्त्रों में भी नग्न खड़े हुए हैं। यह कसौटी अपने एक-एक विचार को कसकर देख लेने की है कि यह मैं जानता हूं। अगर नहीं जानते हैं तो नर्क जाने को तैयार हो जाना लेकिन झूठे ज्ञान को पकड़ने को तैयार मत होना। ईमानदारी की पहली शर्त है कि जो आदमी नहीं जानता जिस बात को, कह दे कि मैं नहीं जानता हूं। यह स्वीकार न करना बेईमानी की शुरुआत है। बड़ी बेईमानीयाँ दिखाई नहीं पड़तीं, छोटी बेईमानीयां दिखायी पड़ती हैं। एक आदमी दो पैसे की बेईमानी करता है तो हमें दिखायी पड़ता है और एक आदमी पत्थर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर कहता है कि हे परम पिता! हे परमेश्वर!

हालाँकि वह पूरी तरह जानता है कि पत्थर के सामने हाथ जोड़ रहा है, वहाँ कोई परमेश्वर, कोई परमपिता उसे दिखायी नहीं पड़ रहा है लेकिन यह आदमी ईमानदार और धार्मिक मालूम होता है जबकि इससे ज्यादा बेईमान और धोखेबाज आदमी जमीन पर खोजना कठिन है। यह बिल्कुल धोखे की बात कह रहा है, यह सरासर धोखे की बात कह रहा है जिसका इसके भीतर कोई एहसास नहीं हो रहा है लेकिन इतना साहस नहीं जुटा पाता है कि इस बात को समझ ले कि वह क्या कह रहा है? धार्मिक आदमी वही है और धार्मिक होने की शुरुआत इस बात में है कि वह छोटी सी इस बात को पहचान ले कि क्या मैं जानता हूं 'और क्या मैं नहीं जानता हूं।' वह आदमी धार्मिक नहीं है जो कहे कि मैं ईश्वर को जानता हूं और आत्मा को जानता हूं। मैंने स्वर्ग देख लिया और नर्क देख लिया। वह आदमी धार्मिक है जो कहे कि मुझे तो कुछ पता भी नहीं है, मैं बिल्कुल अज्ञानी हूं। मुझे कोई भी ज्ञान नहीं है, मुझे अपना ही पता नहीं है, मैं कैसे कहूं कि मैं ईश्वर को जानता हूँ। सामने मकान के जो पत्थर पड़े हैं उनको भी मैं नहीं जानता। मैं परमात्मा को जानता हूं कैसे कहूं ?

जिन्दगी बहुत रहस्यपूर्ण है, अज्ञात है। । अगर आप अज्ञान की स्वीकृति का साहस कर सकते हैं, तो आपका विचारों के जाल से छुटकारा शुरू हो जाता है अन्यथा शुरू नहीं होता। यह बात समझ लेने की है कि हम अत्यन्त अज्ञानी हैं, हमको कुछ भी पता नहीं है। जो भी हमें मालूम पड़ता है कि पता है वह बिल्कुल झूठा, अधूरा और बासा है। वह हौज की तरह है, वह कुएं की तरह नहीं है और अगर जीवन में एक कुआं बनाना है तो हौज के भ्रम से मुक्त हो जाना अत्यन्त जरूरी है।

फिर मैं अन्त में दोहरा दूँ--एक ही बात मैंने कही है, वह बहुत बुनियादी है। अपने ज्ञान को कसें, खोजें कि वह आपका अपना है या

किसी और का। अगर आपको दिखाई पड़ जाये कि वह किसी और का है तो वह व्यर्थ हो जायगा। और जिस दिन आपको दिखाई पड़ जाय कि मेरे पास अपना कोई भी ज्ञान नहीं है, उसी क्षण से आपके भीतर ज्ञान की किरण जन्म लेना शुरू होती है। उसी क्षण से एक क्रान्ति शुरू हो जाती है।

षष्ठ प्रवचन

विचारजाल से मुक्ति

द्वितीय चरण : विश्वास मात्र से छुटकारा

विचारों की शृंखलाओं में मनुष्य एक कैदी की भांति बंधा है। विचारों के इस कारागृह की नींव में जो पत्थर लगे हैं, उन पत्थरों में एक पत्थर के सम्बन्ध में दोपहर हमने बात की। दूसरे और उतने ही महत्वपूर्ण पत्थर के सम्बन्ध में अभी रात हमें बात करनी है। अगर बुनियाद के ये दो पत्थर हट जायं—सीखे हुए ज्ञान को ज्ञान समझने की भूल समाप्त हो जाय और दूसरा और पत्थर जिसकी मैं बात अभी करूंगा वह हट जाय तो मनुष्य विचारों के जाल से अत्यन्त सरलता से ऊपर उठ सकता है।

दूसरा कौन सा पत्थर है ? कौन-से दूसरे आधार पर मनुष्य के मन में विचारों का भवन और विचारों का जाल गूंथा गया और खड़ा किया गया है शायद आपको ख्याल में भी न होगा। यह ख्याल में भी न होगा हम इतने अंतर्विरोधी (Contradictory) विचारों से कैसे भर गये हैं। हमारी दशा उस बैलगाड़ी की भांति है जिसमें चारों तरफ बैल जोत दिये गये हों और उन सब बैलों को भगाने की कोशिश की जा रही हो ताकि हम मंजिल तक पहुंच जायं। उस बैलगाड़ी के प्राण संकट में पड़ गये हैं, उसका अस्थिपंजर ढीला हुआ जाता है। चारों तरफ बैलों से वह विरोध की दशाओं में खिंच रही है। वह बैलगाड़ी कहीं पहुंच सकती है ? कोई मंजिल पर उसका पहुंचना हो सकता है ? एक ही मंजिल हो सकती है उसकी, उस बैलगाड़ी की मौत हो सकती है और कोई मंजिल नहीं हो सकती। वह बैलगाड़ी मर जायेगी। चारों तरफ बैल उसकी हड्डियां और अस्थि पंजर खींचकर निकल जायेंगे और तो कुछ भी नहीं हो सकता, क्योंकि चारों तरफ विरोधी दिशाओं में एक ही साथ बैल जुते हुए हैं।

हमारे मन में विचारों का अन्तर्द्वन्द्व हमारे प्राण लिए लेता है।

हमारे सब विचार असंगत और स्वविरोधी हैं। वे एक दूसरे के विरोध में खड़े हैं और हमारे सब विचारों के बैल हमारे मन को अलग-अलग दिशाओं में खींच रहे हैं और हम उसके बीच पीड़ित और परेशान हैं। विचारों का यह अन्तर्विरोध हमारे भीतर किस भांति बैठा हुआ है यह हमारे ख्याल में भी नहीं है।

मैं एक बहुत बड़े डाक्टर के घर में मेहमान था। सुबह ही कहीं जाने को था। मैं और वह डाक्टर दोनों घर के बाहर निकलते थे कि डाक्टर के छोटे बच्चे को छींक आ गयी और उस डाक्टर ने कहा, थोड़ी देर रुक जायें, दो मिनट रुक जायें फिर हम चलेंगे। मैंने कहा, तुम बड़े अजीब डाक्टर मालूम होते हो, क्योंकि डाक्टर को तो कम-से-कम पता होना चाहिए कि छींक आने का क्या कारण होता है और छींक के आने से किसी के जाने और रुक जाने का क्या संबंध है? डाक्टर को भी यह पता न हो तो फिर आश्चर्य होगा। मैंने उस डाक्टर को कहा कि अगर मैं बीमार पड़ जाऊं और मरने की भी हालत हो जाय तो भी आपसे इलाज करवाने को राजी नहीं हो सकता हूं। मेरी दृष्टि से तो आपका प्रमाण पत्र छीन लेना चाहिए कि आप डाक्टर हैं। छींक आने से आप रुकते हैं, बड़ी हैरानी की बात है। वह कहने लगे कि बचपन से सुना हुआ ख्याल काम करता है। बचपन से सुना हुआ ख्याल भी काम कर रहा है और वह डाक्टर भी हो गये हैं और ये दोनों विचार एक साथ मौजूद हैं। छींक आती है तो पैर रुकते हैं और वह भली भांति जानते हैं कि निपट बेवकूफी है छींक से रुकने का कोई भी संबंध नहीं है।

हमारे भीतर इस तरह के हजारों विचार एक साथ बैठे हुए हैं और वे सब विचार हमें खींच रहे हैं अलग-अलग दिशाओं को और तब हमारी यह अस्त व्यस्त दशा हो गई है जिसके परिणाम में विक्षिप्तता बिल्कुल स्वाभाविक है क्योंकि हजारों वर्षों से अनन्त-अनन्त अन्तर्विरोधी विचार एक ही मनुष्य के मन में इकट्ठे हो

गये हैं। हजारों पीढ़ियाँ एक साथ एक-एक आदमी के भीतर जी रही हैं। हजारों सदियाँ एक साथ एक आदमी के भीतर बैठी हुई हैं। पाँच हजार साल पहले का ख्याल भी बैठा है और अत्याधुनिक समय का ख्याल भी उसके भीतर बैठा है। इन दोनों विचारों में कोई तुक और कोई सामंजस्य नहीं हो सकता है। हजारों दिशाओं से पैदा हुए ख्याल उसके भीतर बैठे हुए हैं, हजारों तीर्थंकरों और पैगम्बरों, अवतारों और गुरुओं के ख्याल उसके भीतर बैठे हुए हैं और इन सबने एक अद्भुत बात की है। दुनियाँ के सारे धर्म, सारे शिक्षक, सारे उपदेशक और किसी बात पर राजी नहीं रहे पर वे इस बात पर राजी रहे हैं कि आदमी को समझाने के लिए जो हम कहते हैं उस पर विश्वास करो। सभी यह कहते हैं कि जो हम कहते हैं उस पर विश्वास करो। और उन सबकी बातों में विरोध है। हिन्दू कुछ और कहता है, मुसलमान कुछ और कहता है, जैन कुछ और कहता है, ईसाई कुछ और कहते हैं। लेकिन एक मामले में वे सब सहमत हैं कि हम जो कहते हैं, उसपर विश्वास करो और वे सब विरोधी बातें करते हैं और आदमी के प्राणों पर इन सारे लोगों की विरोधी बातें पड़ती हैं और वे सभी चिल्लाते हैं कि हम जो कहते हैं उसपर विश्वास करो और आदमी बेचारा इन सब बातों पर विश्वास कर लेता है। वे सब एक-दूसरे की बातों पर हंसते हैं लेकिन खुद की बेवकूफी पर कोई भी नहीं हँसता है। अगर ईसाई कहते हैं जीसस क्राइस्ट कुंवारी कन्या से पैदा हुए हैं और जो इस बात को नहीं मानेगा वह नर्क में पड़ेगा, इस बात को मानना बिल्कुल जरूरी है, नहीं तो नर्क जाना पड़ेगा। तो गरीब, कमजोर आदमी डरता है कि नर्क जाने से बचने के लिए कोई हर्जा भी क्या है इस बात को मान लेने में। हुए होंगे जीसस क्राइस्ट कुंवारी कन्या से, मान लेने में हर्जा क्या है और नर्क जाने की जरूरत क्या है इस बात के पीछे। वह मान लेता है कि ठीक हुए होंगे। सारी दुनिया के बाकी लोग इस बात पर हँसते

हैं—मुसलमान हँसते हैं, जैन हँसते हैं, हिन्दू हँसते हैं कि हद पागलपन की बात है। कुंवारी लड़की से बच्चा पैदा कैसे हो सकता है ? निहायत नासमझी की बात है। लेकिन मुसलमान कहते हैं कि मुहम्मद अपनी घोड़ी पर बैठे हुए सदेह स्वर्ग पहुँच गये। तो इस पर ईसाई हँसते हैं, इस पर हिन्दू हँसते हैं, इस पर जैन हँसते हैं कि यह क्या पागलपन की बात है। पहली तो बात यह कि घोड़ी मोक्ष जा ही नहीं सकती है। घोड़ा होता तो जा भी सकता था क्योंकि स्त्रियों को मोक्ष जाने की कोई व्यवस्था नहीं है, पुरुष तो मोक्ष जा भी सकते हैं। और फिर सदेह कोई स्वर्ग कैसे जा सकता है ? देह तो यहीं छोड़ देनी पड़ती है, देह तो पृथ्वी की चीज है। तो मुहम्मद घोड़ी पर बैठे हुए सदेह स्वर्ग गये इस पर सब हँसते हैं। ईसाई भी हँसते हैं, जैन भी हँसते हैं, हिन्दू भी। लेकिन मुसलमान कहते हैं कि यह मानो ! अगर नहीं मानोगे तो नर्क चले जाओगे। नर्क में सड़ाये जाओग, कष्ट भोगोगे। यह बात माननी ही पड़ेगी और नहीं मानोगे तो भली भाँति जान लेना, एक ही ईश्वर है जगत में और एक ही उसका पैगम्बर है मुहम्मद। अगर उसकी बात नहीं मानी तो बड़े कष्ट में पड़ सकते हो।

आदमी डराया जाता है कि मानो, तो आदमी मान लेता है कि शायद यह ठीक हो। जैन हँसते हैं मुसलमानों पर, ईसाइयों पर। लेकिन जैन कहते हैं कि महावीर का गर्भ एक ब्राह्मण स्त्री के पेट में आया। लेकिन जैन तीर्थंकर कहीं ब्राह्मणों के घर पैदा हो सकते हैं ? असली और ऊँची जाति तो क्षत्री है, तो तीर्थंकर हमेशा क्षत्रियों के घर पैदा होते हैं। ब्राह्मण भिखमंगा है, उसके घर में कहीं तीर्थंकर पैदा हो सकते हैं ? लेकिन महावीर का गर्भ तो एक ब्राह्मणी के पेट में आया था। देवताओं ने देखा कि यह तो बड़ी गलती हुई जा रही है, कहीं तीर्थंकर ब्राह्मण के घर में पैदा हो सकते हैं ? उन्होंने रातों-रात उसका गर्भ निकालकर क्षत्राणी के गर्भ में रख दिया और

की लड़की निकालकर उस ब्राह्मणी के गर्भ में रख दी। सारी दुनिया के लोग हँसते हैं कि बड़ी मजाक की बात है। एक तो देवताओं को क्या मतलब कि किसी का गर्भ बदलें और फिर यह बात हो कैसे सकती है ? सारी दुनिया हँसती है लेकिन जैन नाराज होते हैं कि हँसते रहो, तुमको पता नहीं कि हमारे तीर्थंकर ने जो कहा है और जो तीर्थंकरों के बाबत कहा गया है वह बिल्कुल सत्य है। जो नहीं मानेगा वह कष्ट भोगेगा नर्क में, हमें कोई फिक्र नहीं है, तुम भोगते रहो।

ये सारे लोग दुनिया के इकट्ठे होकर आदमी से विश्वास माँगते हैं। ये सब कहते हैं कि विश्वास करो। एक जमाना था कि आदमी को सबकी बातें पता नहीं थीं। अपने-अपने घेरे थे, अपने-अपने घेरे की बातें पता थीं तो इतनी उलझन न थी। अब दुनिया बहुत करीब आ गई है और सबको सबकी बातें पता चल गई हैं तो आदमी की उलझन बिल्कुल पागलपन पर पहुँच गई है। अब उसकी समझ के बाहर हो गया है कि यह सब शोर गुल किस बात पर मचाया जा रहा है ? यह कौन सी बात मनवाना चाहते हैं ? क्या मनवाना चाहते हैं ? लेकिन बहुत अच्छी हालत पहले भी नहीं थी। अगर हिन्दू को मुसलमान की बातें पता नहीं थीं, अगर जैन को ईसाई की बातें पता नहीं थीं तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता था। जैन भी जरूरी रूप से एक बात नहीं कहते। दिगम्बर कुछ और कहते हैं, श्वेताम्बर कुछ और कहते हैं और ऐसी-ऐसी बातों पर मतभेद है कि जान कर हैरानी होगी। हम आँखें फाड़कर रह जायेंगे कि यह भी कोई मतभेद की बातें हैं ! जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों में एक तीर्थंकर हुए मल्लीनाथ। दिगम्बर कहते हैं वे पुरुष थे और श्वेताम्बर कहते हैं वे स्त्री थे। श्वेताम्बर कहते हैं वे मल्लीबाई थे, दिगम्बर कहते हैं वे मल्लीनाथ थे। और दोनों कहते हैं कि हमारी बात नहीं मानोगे तो नर्क जाना पड़ेगा। दिगम्बर कहते हैं कि स्त्री

तो कभी तीर्थंकर हो ही नहीं सकती, यह तो बात ही झूठी है इसलिए वे पुरुष ही थे। वह मल्लीनाथ थे, मल्लीबाई न थे। हद हो गई, इस पर भी विवाद हो सकता है कि वह स्त्री है या पुरुष! और जो नहीं मानेगा उसके लिए नर्क का फल है और कष्ट भोगना पड़ता है।

सारी दुनिया के आदमियों के मन को विश्वास दिलाने वाले इन लोगों की शिक्षाओं ने एक उत्पात खड़ा कर दिया है और आदमी का मन इन सारी बातों में घबराया हुआ खड़ा रह गया है। वह सबकी सुन लेता है और उस सबके प्रभाव उसके भीतर छिप जाते हैं और फिर ये विरोधी दिशाओं में उसके प्राणों को खींचने लगते हैं। फिर इन धर्मों से सबके बाद में आया कम्युनिज्म। उसने कहा सब धर्म अफीम का नशा है। इसमें कोई सार नहीं है, यह बिल्कुल झूठ है यह सब बकवास है। असली धर्म तो वह है जो मार्क्स कहते हैं। कम्युनिज्म असली धर्म है, इसको मानना चाहिए और कुछ भी नहीं मानना चाहिए। बाइबिल गलत, गीता गलत, कुरान गलत, वह दास कैपिटल जो है वही असली धर्म ग्रन्थ है, उसको ही मानना चाहिए। फिर इसके पीछे विज्ञान आया, उसने कहा कि यह सब बड़े फजूल हैं। जो भी बातें धर्मग्रन्थों में लिखी हैं वे कोई भी ठीक नहीं हैं। ठीक तो जो विज्ञान कहता है वही है। और एक वैज्ञानिक मर भी नहीं पाता है कि दूसरा वैज्ञानिक कहता है कि वह गलत था, ठीक जो है वह यह है। वह आदमी जिन्दा ही रहता है और तीसरा वैज्ञानिक कहता है कि यह सब गड़बड़ है जो ठीक है वह मैं कहता हूँ। उसे भी पक्का भरोसा नहीं कि दो दिन भी नहीं बीत पायेंगे, कोई चौथा आदमी कहेगा कि यह सब गलत था। जो मैं कहता हूँ वह ठीक है।

आदमी के मन पर सत्य के दावेदारों ने उसके चित्त के भीतर विचारों का एक ऐसा जाल खड़ा कर दिया है जो बहुत विरोधी और सब दिशाओं में खींचता है। इस जाल को खड़ा करने में भय का

उपयोग किया गया है कि अगर आप नहीं मानते हैं तो नर्क जाना पड़ेगा। भय का और प्रलोभन का उपयोग किया गया है इस जाल को खड़ा करने में। यह जो विश्वास का जाल जबरदस्ती आदमी पर थोपा गया है इसके पीछे भय और प्रलोभन के सूत्र काम में लाये गये हैं। अगर मान लोगे तो स्वर्ग है और नहीं मानोगे तो नर्क है। ये सारे धर्मगुरु वही करते रहे हैं जो आज के विज्ञापनदाता कर रहे हैं लेकिन विज्ञापनदाता उतने हिम्मतवर (Bold) नहीं हैं। लक्स टायलेट के बेचने वाले कहते हैं कि फलां सुन्दरी कहती है कि लक्स टायलेट लगाने से मैं सुन्दरी हो गयी। जो लगायेगा वह सुन्दर हो जायगा, जो नहीं लगायेगा वह असुन्दर हो जायगा तो भय पकड़ता है कि कहीं मैं असुन्दर न हो जाऊँ तो आदमी लक्स टायलेट साबुन खरीद लेता है। जैसे कि लक्स टायलेट जब नहीं थी तो लोग सुन्दर नहीं थे। जैसे कि क्लियोपेट्रा, मुमताज, और नूरजहां सुन्दर न रही हों क्योंकि तब लक्स टायलेट तो थी नहीं। अभी ज्यादा हिम्मत नहीं बढ़ी उनकी नहीं तो आगे वे कहेंगे कि जो लक्स टायलेट नहीं लगायेगा, फलाने तीर्थंकर कहते हैं, फलाने पैगम्बर कहते हैं, फलाने जगत्गुरु कहते हैं कि वह नर्क जायगा, वह स्वर्ग नहीं जा सकता। स्वर्ग में तो केवल उनको ही प्रवेश मिलेगा जो केवल लक्स टायलेट साबुन का उपयोग करते हैं। आदमी को डरवाया जा सकता है। स्वर्ग वे ही लोग जायेंगे जो पनामा सिगरेट पीते हैं क्योंकि पनामा सिगरेट पीना और पिलाना बहुत उम्दा बात है और जिसने पनामा सिगरेट नहीं पी उसको नर्क में जाना पड़ेगा। हिन्दुस्तान में बनी बिड़ी पीनी पड़ेगी और अगर कोई विश्वास नहीं करता तो खुद फल भोगेगा। जो विश्वास करता है उसको शुभ फल मिलता है, जो विश्वास नहीं करता है उसको अशुभ फल मिलता है। लेकिन अभी उतनी हिम्मत विज्ञापनदाताओं में नहीं आयी है। वे पुराने विज्ञापन दाता बड़े हिम्मतवर लोग थे। उन्होंने

सरासर झूठी बातें कहकर भी आदमी को डरवा दिया और भयभीत कर दिया और हम उन बातों को मानते रहे और चुपचाप सुनते रहे और चुपचाप स्वीकार करते रहे। असल में कोई भी असत्य अगर बहुत बार दोहराया जाय, हजारों साल तक दोहराया जाय तो उसके दोहराने से ही सत्य जैसा प्रतीत होने लगता है। झूठी से झूठी बात अगर कोई आदमी दोहराये ही चला जाय और दोहराये ही चला जाय तो आपको धीरे-धीरे उसका विश्वास पकड़ने लगेगा कि शायद बात ठीक ही होगी नहीं तो इतने दिन तक कैसे दोहराई जा सकती थी।

गाँव का एक गरीब किसान शहर से जाकर एक बकरी का बच्चा खरीद लाया। वह बकरी के बच्चे को लेकर अपने गाँव की तरफ चला और शहर के दो चार बदमाश लोगों ने सोचा कि किसी भाँति यह बकरी का बच्चा छीन लिया जाय तो आज अच्छे भोजन का और एक उत्सव का आनन्द आ जायगा। कुछ मित्रों को बुला लेंगे और भोज हो जायगा लेकिन छीन कैसे लिया जाय? वह गाँव का गँवार बड़ा तगड़ा और मजबूत आदमी मालूम पड़ता था। वे शहर के शैतान जरा कमजोर थे। उससे छीनना झगड़े की बात थी, उपद्रव हो सकता था। तो फिर कोई होशियारी से काम लिया जाय। उन्होंने एक तरकीब तय की और जब वह गाँव का आदमी शहर से बाहर निकलने को था तो एक बड़े रास्ते पर उन पाँच छः लोगों में से एक आदमी उससे मिला और कहा, नमस्कार!

उस आदमी ने नमस्कार की। उस आदमी ने ऊपर देखा और कहा कि अरे! यह आप कुत्ते का बच्चा सिर पर लिए जा रहे हैं? यह कहाँ से खरीद लिए? बड़ा अच्छा कुत्ता ले आये।

वह किसान हँसा, उसने कहा, पागल हो गये हैं आप? कुत्ता नहीं है, बकरी खरीद कर लाया हूँ, बकरी का बच्चा है।' उस आदमी ने कहा, 'अरे, गाँव में कुत्ते को लिए मत पहुँच जाना नहीं तो

लोग पागल समझेंगे। इसे बकरी समझ रहे हो? यह कह कर वह आदमी अपने रास्ते पर चला गया। किसान हँसा कि बड़ी अजीब बात है। फिर भी उसने एक दफा पैर टटोल कर देखे कि कहीं कुत्ते का बच्चा ही तो नहीं है क्योंकि उस आदमी को क्या प्रयोजन था यह कहने का। देखा कि बकरी ही है। निश्चिन्त होकर आगे बढ़ा था कि दूसरा आदमी मिला। उसने कहा, "नमस्कार, बड़ा अच्छा कुत्ता ले आये हैं। मैं भी कुत्ता खरीदना चाहता हूँ। कहाँ से खरीद लिए आप?" अब उतनी हिम्मत से वह किसान नहीं कह सका कि कुत्ता नहीं है। क्योंकि अब दूसरा आदमी कह रहा था और दो आदमी धोखे में नहीं हो सकते थे। फिर भी वह हँसा। उसने कहा कि कुत्ता नहीं है साहब, बकरी है। वह आदमी कहने लगा, किसने कहा बकरी है? किसी ने बेवकूफ बनाया है मालूम होता है। यह बकरी है? वह आदमी अपने रास्ते पर चला गया। किसान ने जाकर बगल की गली में उस बकरी को उतारकर देखा कि देख लेना चाहिए कि क्या गड़बड़ है लेकिन बकरी ही थी। ये दो आदमी धोखा खा गये। लेकिन डर उसके भीतर भी पैदा हो गया कि मैं किसी भ्रम में तो नहीं हूँ। अबकी बार वह उसको लेकर डरा-डरा सा सड़क से जा रहा था कि तीसरा आदमी मिला। उसने भी कहा कि यह कुत्ता कहाँ से ले आये? अबकी बार तो उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी कि यह कह दे कि यह बकरी है। उसने कहा, 'जी यहीं से खरीदकर लाया हूँ।' अब हिम्मत बहुत मुश्किल थी जुटाना कि कह सके कि यह बकरी है। सोचा कि इसको गाँव लेकर न जाना ही ठीक, जो दो चार पाँच रुपए गये सो एक तरफ, गाँव में बदनामी होगी, लोग पागल समझेंगे सो अलग। जब वह सोच ही रहा था कि पाँचवाँ आदमी मिला। कहा कि वाह गजब कर दिया! आज तक कुत्ते को कंधे पर लिये किसी को नहीं देखा। क्या बकरी समझ रहे हो इसको?

उस आदमी ने देखा कि एकान्त है, कोई नहीं है। उस बकरी को छोड़कर वह भागा अपने गाँव की तरफ कि इसे यहीं छोड़ देना बेहतर है। जो पाँच रुपये गये वे गये, पागलपन से तो बच जाऊँगा। वे पाँच आदमी उस बकरी को उठा कर ले गये।

पांच आदमियों ने बार-बार दोहराया और उस आदमी के लिए कठिनाई हो गयी यह बात मानने में कि जो पांच कहते हैं वे गलत कहते हैं। और जब कहने वाले गेरुआ वस्त्र पहने हों तब और मुश्किल हो जाती है। और जब कहने वाले सचाई और ईमानदारी के मूर्तिमान् रूप हों तब तो और कठिन हो जाता है। और जब कहने वाले ईमानदार हों, जगत् के त्याग करने वाले हों तब तो और भी मुश्किल हो जाता है क्योंकि उनकी बात पर विश्वास न करने की कोई वजह ही नहीं रह जाती। यह भी जरूरी नहीं है कि वह आपको धोखा दे रहे हों। सौ में से निन्यानवे मौके ये हैं कि वे भी धोखा खाये हुए लोग हैं। उनको भी धोखा दिया गया है। वे बेईमान हैं यह जरूरी नहीं है लेकिन वे भी उसी चक्कर में हैं जिसमें आप हैं। एक बात तय है कि जबतक आदमी को विश्वास करने के लिए कहा जायगा तबतक आदमी का शोषण जारी रहेगा, तबतक आदमी शोषण से मुक्त नहीं हो सकता। फिर वह विश्वास चाहे हिन्दू का हो, चाहे जैन का, चाहे मुसलमान का, चाहे किसी का, चाहे कम्युनिस्ट का हो या गैर कम्युनिस्ट का हो, किसी का भी हो, जबतक आदमी से यह कहा जायगा कि हम जो कहते हैं उसपर विश्वास कर लो और नहीं विश्वास करोगे तो दुख उठाओगे और विश्वास करोगे तो सुख पाओगे, तबतक आदमी के भीतर जो विचारों का जाल खड़ा होता है उसे तोड़ने का साहस जुटा पाना बहुत कठिन है। मैं आपसे क्या कहना चाहता हूं? मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि आपके भीतर जो जाल बन गया है विचारों का उसमें हजारों सदियों का हाथ है, उसमें सैकड़ों वर्षों के प्रभाव हैं और अगर उससे छुटकारा पाना है तो एक बात

निश्चित जान लेनी चाहिए कि विश्वास से ज्यादा आत्मघातक और कोई चीज नहीं है। एक बात निश्चित समझ लेनी चाहिए कि विश्वास करना, अंधा विश्वास, आंख बन्द किये चुपचाप मान लेना यही हमारे जीवन की आज तक की पंगुता का बुनियादी कारण रहा है। लेकिन सभी लोग कहते हैं, विश्वास करो। हां, वे यह जरूर कहते हैं, दूसरे की मत सुनो मेरी सुनो। इतना वे जरूर कहते हैं कि दूसरे पर विश्वास मत करो क्योंकि दूसरे गलत हैं, मैं सही हूं, मुझ पर विश्वास करो। मैं आपसे कहना चाहता हूं, किसी पर विश्वास करना घातक है और आपके जीवन को नुकसान पहुंचाता है। विश्वास नहीं, विश्वास बिल्कुल भी नहीं। विश्वास के आधार पर जो खड़ा होगा वह अंधी दुनिया में प्रवेश कर रहा है और उसके जीवन में कभी आँखों वाली रोशनी नहीं उतर सकती। उसके जीवन में कभी प्रकाश उपलब्ध नहीं हो सकता। वह कभी भी जानने में समर्थ नहीं हो पायेगा जिसने दूसरे पर विश्वास कर लिया है।

तो मैं क्या कह रहा हूं, अविश्वास करें आप? नहीं! अविश्वास की भी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन शायद हमें यह ख्याल है कि जब हम विश्वास नहीं करते तो अनिवार्य रूप से अविश्वास करते हैं। यह बिल्कुल गलत ख्याल है। इन दोनों से अलग चित्त की अवस्था भी है जो न विश्वास करती है और न अविश्वास करती है क्योंकि अविश्वास (Disbelief) भी विश्वास (Belief) का ही रूप है। जब हम कहते हैं कि मैं ईश्वर पर विश्वास नहीं करता तो हम क्या कहते हैं? हम यह कहते हैं कि हम ईश्वर के न होने पर विश्वास करते हैं। जब हम कहते हैं कि हम आत्मा पर अविश्वास करते हैं तो हम यह कह रहे हैं कि आत्मा के न होने पर विश्वास करते हैं। विश्वास और अविश्वास दोनों एक ही तरह की चीजें हैं, उनमें कोई फर्क नहीं है। विश्वास विधायक श्रद्धा है और अविश्वास निषेधात्मक श्रद्धा है, लेकिन हैं दोनों श्रद्धा और वही आदमी भीतर के जाल से

मुक्त हो सकता है जो श्रद्धा और विश्वास से ही मुक्त हो जाता है, जो दूसरे की तरफ देखने की दृष्टि और इच्छा से मुक्त हो जाता है, जो यह ख्याल ही छोड़ देता है कि कोई और मुझे सत्य दे सकता है। जब तक मुझे यह ख्याल है कि मुझे और कोई सत्य दे सकता है तब तक मैं किसी न किसी रूप में बंध जाऊंगा । एक से छूटूंगा तो दूसरे से बंध जाऊंगा, दूसरे से छूटूंगा तो तीसरे से बंध जाऊंगा लेकिन मेरा बंधने से छुटकारा नहीं हो सकता है ।

एक आदमी मर जाता है चार आदमी उसकी अर्थी को उठाकर मरघट ले जाते हैं । एक कंधा थकने लगता है तो दूसरे कंधे पर अर्थी के डंडे को रख लेते हैं । थोड़ी देर राहत मिलती है फिर दूसरा कंधा थक जाता है। थोड़ी देर में फिर दूसरा कंधा बदल लेते हैं । जो विश्वास बदल लेता है वह केवल कंधा बदल रहा है, बोझ हमेशा मौजूद रहता है, कोई फर्क नहीं पड़ता। थोड़ी देर के लिए राहत मिल जाती है। एक आदमी हिन्दू से मुसलमान हो जाता है, जैन से ईसाई हो जाता है, सब धर्मों को छोड़कर कम्युनिस्ट हो जाता है या कुछ और भी हो जाता है, लेकिन जबतक वह आदमी एक विश्वास को छोड़ कर दूसरे विश्वास को पकड़ता है तबतक उस आदमी के चित्त के बोझ में कोई अन्तर नहीं आता, केवल कंधे बदल जाते हैं और थोड़ी देर को राहत मिलती है लेकिन उस राहत का कोई अर्थ नहीं।

मैंने सुना है कि एक गाँव में दो आदमी थे। एक आदमी आस्तिक था--परम आस्तिक और दूसरा नास्तिक था--परम नास्तिक। उन दोनों लोगों की वजह से गांव बड़ा परेशान था। ऐसे लोगों की वजह से गाँव हमेशा ही परेशानी में पड़ जाते हैं क्योंकि आस्तिक दिन रात गाँव को समझाता था ईश्वर के होने की बात और नास्तिक दिन-रात खण्डन करता था । गाँव के लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गये थे कि किसके साथ जायें और किस के साथ न जायें।

आखिर गाँव के लोगों ने यह तय किया कि हम बहुत मुश्किल में पड़ गये हैं । इन दोनों आदमियों को कहा जाय कि तुम दोनों गांव के सामने विवाद करो । जो जीत जायगा हम उसी के साथ हो जायेंगे । यह परेशानी हमारे सिर पर मत डालो । तुम दोनों विवाद कर लो । जो जीत जायगा हम उसी के साथ हो लेंगे ।

एक रात, पूर्णिमा की रात में गाँव में विवाद का आयोजन हुआ। सारे नगर के लोग इकट्ठे हुए। आस्तिक ने अपनी आस्तिकता की बातें समझायीं, सब दलीलें दीं, नास्तिकता का खण्डन किया । नास्तिक ने आस्तिकता का खण्डन किया, नास्तिकता के पक्ष में सारी दलीलें दीं। रात भर विवाद चला और सुबह जो परिणाम हुआ वह यह कि आस्तिक रात भर में नास्तिक हो गया और नास्तिक आस्तिक हो गया । उन दोनों को एक-दूसरे की बातें जँच गयीं । गाँव की मुसीबत पुरानी की पुरानी बनी रही । वे एक-दूसरे से राजी (Convince) हो गये और गाँव की परेशानी वहीं की वहीं रही क्योंकि फिर भी गांव में एक आस्तिक था और एक नास्तिक।

हम भी जीवन में एक विश्वास को बदल कर दूसरे विश्वास पर चले जायें तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता । हमारे प्राणों की परेशानी वहीं रहती है इससे कोई भेद नहीं पड़ता । प्राणों की परेशानी न हिन्दू के कारण है न मुसलमान के, न जैन के कारण, न ईसाई के कारण, न कम्युनिज्म के कारण है, न फासिज्म के कारण । प्राणों की परेशानी इस कारण है कि आप विश्वास करते हैं । जबतक आप विश्वास करते हैं तबतक आप बन्धन को आमंत्रित करते हैं, तबतक आप कारागृह में जाने को खुद अपने को आमंत्रण देते हैं। और बंधा हुआ आदमी, बंधा हुआ मन विचारों से कैसे मुक्त हो सकता है ? जिन विचारों को वह प्राणपन से पकड़ता हो और विश्वास करता हो उनसे कैसे मुक्त हो सकता है, वह उनसे कैसे छुटकारा पा सकता है ? उनसे छुटकारा कठिन है । छुटकारा हो

सकता है अगर हम बुनियाद के पत्थर को हटा दें। विश्वास बुनियाद का पत्थर है सारे विचारों के जाल के नीचे। विश्वास के आधार पर मनुष्य को विचारों में दीक्षित किया गया है और जब विचार मन को जोर से पकड़ लेते हैं तो भय भी पकड़ता है कि अगर मैंने इसको छोड़ दिया तो फिर क्या होगा। तो आदमी पूछता है कि अगर इससे बेहतर मुझे कुछ पकड़ने को बता दें तो मैं इसे छोड़ भी दूँ लेकिन पकड़ नहीं छोड़ सकता। और यह उसके ख्याल में नहीं आ पाता कि मन की स्वतंत्रता और मन की मुक्ति विश्वास के परिवर्तन में नहीं, विश्वास मात्र से मुक्त हो जाने में है।

बुद्ध एक गाँव में गये थे। एक अंधे आदमी को कुछ लोग उनके पास ले आये और उन मित्रों ने कहा, 'यह आदमी अंधा है और हम इसके परम मित्र हैं। हम इसे समझाने की कोशिश करते है कि प्रकाश है लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता और इसकी दलीलें ऐसी हैं कि हम हार जाते हैं। यह आदमी हमसे कहता है कि मैं प्रकाश को छूकर देखना चाहता हूँ। अब हम प्रकाश को स्पर्श कैसे करवायें ? यह आदमी कहता है कि छोड़ो, स्पर्श न हो सके तो मैं सुनकर देखना चाहता हूँ मेरे पास कान है। कुछ प्रकाश में आवाज करो तो मैं सुन लूँ। छोड़ो, यह भी न हो सके तो मैं स्वाद लेकर देख लूँ या प्रकाश में कोई गंध लेकर देख लूं।

हमारे पास कोई उपाय नहीं है। प्रकाश तो आँख से देखा जा सकता है और आँख इसके पास है नहीं और यह आदमी कहता है कि तुम फ़ज़ूल ही मुझे अंधा सिद्ध करने को प्रकाश की बातें करते हो। तुम भी अंधे मालूम होते हो और प्रकाश की ईजाद तुमने मुझे अंधा बताने के लिए कर ली है। तो हमने सोचा आप इस गाँव में आये हैं, शायद आप इसको समझा सकें।

बुद्ध ने कहा, 'मैं समझाने के इस पागलपन में नहीं पड़ूंगा।' आदमी

की आज तक मुसीबत उन लोगों ने की है जिन लोगों ने आदमी को ऐसी बातें समझाने की कोशिश की है जो उनको दिखाई नहीं पड़ती हैं। मनुष्य के ऊपर उपदेशक बड़ी महामारी सिद्ध हुए हैं। वे ऐसी बातें समझाते हैं जो उसको दिखाई नहीं पड़ती हैं। तो बुद्ध ने कहा कि मैं यह गलती करने वाला नहीं हूँ, मैं यह समझाने वाला नहीं हूँ कि प्रकाश है। मैं तो इतना कह सकता हूँ कि इस आदमी को तुम गलत जगह ले आये हो। मेरे पास लाने की जरूरत नहीं थी। किसी वैद्य के पास ले जाते जो इसकी आँख का इलाज कर सके। इसे उपदेश की नहीं, उपचार की जरूरत है। तुम्हारे समझाने का सवाल नहीं, तुम्हारी समझाई गई बात का विश्वास करने का सवाल नहीं। इसकी आँख ठीक होनी चाहिए और आँख ठीक हो जाय तो तुम्हें समझाने की जरूरत नहीं पड़ेगी तब यह खुद ही देख सकेगा, खुद ही जान सकेगा।

उनको बात ठीक जँची। वे उसे ले गये और भाग्य की बात थी कि वह अंधा कुछ महीने के इलाज से ठीक हो गया। बुद्ध तो दूसरे गाँव चले गये थे। वह आदमी बुद्ध के चरण छूने गया और उनको उसने प्रणाम किया और कहा कि मैं गलती में था। प्रकाश तो था लेकिन मेरे पास आँख न थी। बुद्ध ने कहा, 'तू गलती में जरूर था लेकिन तूने जिद की कि जबतक आँख नहीं होगी तब तक मानने को राजी न होऊँगा तो तेरी आँख का इलाज भी हो सका। अगर तू मान लेता उन मित्रों की बात कि जो तुम कहते हो तो बात ठीक है तो बात वहीं खत्म हो जाती। आँख के इलाज का सवाल ही नहीं उठता।'

जो लोग विश्वास कर लेते हैं वे विवेक तक नहीं पहुँच पाते। जो लोग चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं वे स्वयं के अनुभव तक नहीं पहुँच पाते। जो अंधे हैं और मान लेते हैं कि दूसरे कहते हैं प्रकाश है तो जरूर होगा, फिर उनकी यात्रा वहीं बन्द हो जाती है। यात्रा तो तब होती है जब बेचैनी बनी रहे। और बेचैनी तभी होती

है जब मुझे लगता है कि कोई चीज है, लेकिन मुझे दिखाई नहीं पड़ती तो मैं कैसे मान लूँ। मैं स्वयं देखूँ तो मानूँ। यह बेचैनी मन में हो कि मेरे पास आँख हो तो मैं स्वीकार करूँ। विश्वास दिलाने वाले लोगों ने यह कहा कि तुम्हें अपनी आँख की कोई जरूरत नहीं। महावीर के पास आँख थी वह काफी है, बुद्ध के पास आँख थी, वह काफी है। हरएक को आँख की क्या जरूरत है ? गीता पढ़ो और मजा करो। कृष्ण को दिखायी पड़ता था, उन्होंने कह दिया। अब सभी को देखने की क्या जरूरत है कि हर एक को देखना चाहिए। तुम तो विश्वास करो। बताने वाले और देखने वाले बता गये हैं, तुम्हारा काम है विश्वास करना। ज्ञान तो उपलब्ध हो गया है, अब तुम्हें जानने की क्या जरूरत है ?

आदमियों को अंधा रखने के लिए इस उपदेश ने काम किया। अधिकतम लोग पृथ्वी पर अंधे रह गये और अधिकतम लोग आज भी अंधे हैं और जैसी स्थिति चल रही है उसमें शायद अधिकतम लोग आगे भी अंधे रहेंगे, क्योंकि अंधेपन को तोड़ने की जो बुनियादी कीमिया होती है उसकी हत्या कर दी गई है, विश्वास का विष देकर उसको समाप्त कर दिया गया है। कहा जाना चाहिए यह कि चाहे कृष्ण की आँखें कितनी भी अच्छी हों और कितनी भी दूर देखती हों, महावीर की आँखें कितनी भी सुन्दर हों, कमल जैसी हों और कितनी ही दूर देखती हों लेकिन महावीर की आँख महावीर की आँख है, मेरी आँख नहीं है और मेरी छोटी-मोटी आँख सही, कमल जैसी न सही, घास के फूल जैसी सही लेकिन मेरी आंख मेरे पास होगी तो ही मुझे दिखाई पड़ सकता है। तो मैं तो अपनी ही आँख की खोज करूंगा, दूसरे की आँखों की पूजा करने से मुझे कुछ उपलब्ध नहीं होगा। लेकिन स्वयं की आँख की खोज शुरू तब होती है जब हम दूसरे की आँखों का आसरा छोड़ देते हैं। जब तक कोई स्थानापन्न (Substitute) है, एक आदमी

के लिए जबतक कोई चीज पूर्ति कर रही है, उसकी तबतक खोज बीन पैदा नहीं होती। जब कोई सहारा नहीं है, कोई पूर्ति नहीं है और कोई मार्ग नहीं है दूसरों से मिलने वाला, तब आदमी के भीतर वह चुनौती जन्म लेती है जिससे वह अपने मार्ग की खोज में निकलता है, खुद की आँख की तलाश करता है। आदमी बहुत आलसी है और अगर उसे बिना मेहनत किये ज्ञान मिल जाता हो तो वह काहे के लिए मेहनत करे, किसलिए उपाय करे। अगर बिना खोजे हुए विश्वास कर लेने से मोक्ष उपलब्ध हो जाता है तो फिर मोक्ष तक की यात्रा हम अपने पैर से क्यों करें। और जब कोई यह कहता हो कि तुम हमको मान लो, हम तुम्हें मोक्ष पहुँचा देंगे तो हम उतना श्रम क्यों करें कि उतने दूर तक स्वयं जायें। जब कोई कहता है कि हमारी नाव में बैठ जाओ, हम पार लगा देंगे तो हम चुप चाप नाव में बैठ जाते हैं और सो जाते हैं। लेकिन कोई आदमी किसी दूसरे की नाव में कहीं भी नहीं पहुँच सकता है। वह और किसी दूसरे की आँख से न देख सकता है, न कभी देखा है, न कभी देखेगा। अपने ही पैरों से चलना होता है, अपनी ही आँखों से देखना होता है। खुद ही जीना होता है, खुद ही मरना होता है। न तो मेरी जगह कोई जी सकता है और न मेरी जगह कोई मर सकता है। मेरी कोई जगह नहीं ले सकता, न मैं किसी की जगह ले सकता हूँ। दुनिया में अगर कुछ असम्भव है तो यह एक बात असम्भव है कि कोई किसी की जगह ले ले।

जिन्दगी के नियम के बाहर है यह बात। कोई जगह नहीं बदली जा सकती है, न कोई किसी की जगह जी सकता है, न मर सकता है, न कोई किसी की जगह जान सकता है, न कोई किसी की जगह आखों को उपलब्ध हो सकता है। लेकिन विश्वास दिलाने वाले लोगों ने आज तक यही समझाया है कि तुम दूसरे की आँख से देखो—तीर्थंकर की आँख से देखो, अवतार की आँख से देखो

और हम इसपर विश्वास करते चले आये हैं इसलिए हम एक अंधे जाल में ग्रसित हो गये हैं । हजारों शिक्षकों ने इतने जोर से शोर गुल मचाया है और हजारों शिक्षकों के अनुयायियों ने इतने जोर से आवाजें की हैं, इतने जोर से उन्होंने घबराहट पैदा की है नर्क की और स्वर्ग का प्रलोभन पैदा किया है कि हमने धीरे-धीरे सब की ही बातें मान लीं और उन सबकी बातों ने हमारे भीतर एक ऐसा विरोधाभास खड़ा कर दिया है कि हमारे जीवन की गाड़ी टूट सकती है लेकिन कहीं पहुंच नहीं सकती । इसलिए समझदार व्यक्ति के लिए जो पहला काम है करने जैसा वह यह है कि वह अपने सारे अंतर्विरोधी विश्वासों को एक साथ तिलांजलि दे दे और क्षमा मांग ले कि मैं विश्वास नहीं करूंगा, मैं जानना चाहूंगा । जिस दिन मुझे ज्ञान उपलब्ध होगा उस दिन मैं मान लूंगा, उसके पहले मेरे लिए मानने जैसी कोई चीज नहीं हो सकती है। यह धोखा है, यह आत्म-प्रवंचना है, मैं अपने को धोखा नहीं दे सकता कि मैं बिना जाने हुए कहूं कि मैं जानता हूं, मैं बिना पहचाने हुए कहूं कि मैं पहचानता हूं। मैं झूठी स्वीकृति दूं, यह मेरे लिए संभव नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि आप अस्वीकार कर रहे हैं। इसका कुल मतलब यह है कि आप स्वीकार, अस्वीकार दोनों से अपने को तटस्थ खड़ा कर रहे हैं। आप यह कह रहे हैं कि हम इन दोनों से राजी नहीं हैं। न हम कहते हैं कि महावीर गलत हैं, न हम कहते हैं कि सही हैं। हम इतना ही कहते हैं कि महावीर जो कहते हैं वह मैं नहीं जानता हूं इसलिए मुझे हां और ना कहने का कोई भी हक नहीं । जिस दिन मैं जानूंगा उस दिन मैं हां कहूँगा। जानूंगा कि गलत है तो ना कहूंगा लेकिन अभी मैं जानता नहीं इसलिए मैं कैसे हां कहूं और कैसे ना कहूं ? अगर यह हमारे चित्त की दशा हो कि हम हां और ना कहने से बच जायं तो हमारे मन का जाल आज और अभी यहीं टूट सकता है। जाल के टूटने में फिर कोई नीचे आधार नहीं रह

जाता है, वह पत्तों का एक महल रह जाता है जो जरा में गिर जायगा । अभी वह पत्थरों का महल है क्योंकि नीचे बुनियाद में सख्त पत्थर रखे हुए हैं और उन पत्थरों को हम देखते नहीं हैं बल्कि हमको तो यही कहा जाता है कि जो श्रद्धा करते हैं वे ही धार्मिक हैं, जो श्रद्धा नहीं करते वे अधार्मिक हैं । मैं आपसे कहता हूं, जो अश्रद्धा करता है वह भी धार्मिक नहीं है, जो श्रद्धा करता है वह भी धार्मिक नहीं है। धार्मिक तो वह है जो सच्चा है और सच्चे का मतलब यह है कि जो नहीं जानता उस पर श्रद्धा नहीं करता, जो नहीं जानता उस पर अश्रद्धा नहीं करता । वह निपट ईमानदारी से घोषणा करता है कि मैं नहीं जानता हूँ, मैं अज्ञानी हूँ इसलिए मेरी स्वीकृति अस्वीकृति का कोई सवाल नहीं है ।

क्या इस मध्य बिन्दु पर आप अपने चित्त को ले जाने की सामर्थ्य या साहस जुटा सकते हैं? जुटा सकते हैं तो विचारों का यह भवन तत्क्षण गिर सकता है, उसके गिरने में कोई भी कठिनाई नहीं।

तीन सूत्र मैंने सुबह कहे थे। एक सूत्र मैंने दोपहर को कहा और एक आपसे अब कहा । इन पांचों सूत्रों पर ध्यान से विचार करना । मेरी बात मानकर ही इनको उपयोग में मत ले आना अन्यथा मैं भी फिर आपके लिए एक उपदेशक ही हो जाता हूं । मैंने कहा, इसलिए मत मान लेना क्योंकि हो सकता है मेरी सभी बातें गलत हों और आप दिक्कत में पड़ जायें । मेरी बातें सभी झूठी हों और व्यर्थ हों और आप दिक्कत में पड़ जायें इसलिए मेरी बात को मत मान लेना । सोचना, खोजना, देखना और अगर ऐसा लगे कि इसमें कोई सचाई है अपने अनुभव में, अपने मन की खोज-बीन में, अपने मन की खिड़की से झांकने पर लगे कि इन बातों में कोई सचाई है तो फिर वह सचाई आपकी अपनी हो जायगी, फिर वह मेरी नहीं रह जाती । फिर वह मेरी आँख नहीं आपकी अपनी आँख हो जाती है और तब आप जो करते हैं वह आपके जीवन को जागरण की दिशा में ले जाने

का मार्ग बन जाता है।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। इसमें आपको सो नहीं जाना है। शरीर शिथिल कर देना है, साँस शिथिल छोड़ देनी है, मन शांत कर लेना है, लेकिन सो नहीं जाना है, भीतर परिपूर्ण जागे रहना है। इसीलिए मैंने कहा कि बाहर का सब सुनते रहना है, क्योंकि अगर आप सुन रहे हैं तो आप जागे रहेंगे और अगर आप नहीं सुन रहे हैं तो आपके सो जाने की संभावना है। नींद अच्छी बात है, नींद बुरी बात नहीं है लेकिन नींद को ध्यान मत समझ लेना। नींद बहुत अच्छी बात है। नींद जरूर लेनी चाहिए लेकिन नींद ध्यान नहीं है यह ध्यान रखना चाहिए।

विवेकानंद ने पहली दफा अमरीका में जब ध्यान की बात कही तो एक अखबार ने एक लेख लिखा और उस लेख में लिखा कि विवेकानन्द जो कह रहे हैं वह तो बड़ी अच्छी चीज है, वह तो नान मेडीशनल टेंकोलाइजर जैसा मालूम होता है, बिना दवा के नींद की दवा मालूम होती है। नींद लाने की अच्छी तरकीब है। तो नींद लाना हो तो बात दूसरी है लेकिन ध्यान लाना हो तो बात बिल्कुल दूसरी है। तो यहाँ जो हम प्रयोग कर रहे हैं उसमें सब शिथिल हो जायेंगे, सब सुनते जायेंगे लेकिन भीतर पूरी तरह जागे रहना है। उस जागे रहने के सूत्र पर कल हम और बात करेंगे तो और स्पष्ट समझ में आसकेगी।

इस प्रयोग को करने के पहले दो तीन बातें ख्याल में ले लें—एक तो यह बड़ा सरल सा प्रयोग है। आप कोई बहुत कठिन काम कर रहे हैं ऐसा भाव न ले लेना मन में क्योंकि जिस काम को हम कठिन समझ लेते हैं वह कठिन हो जाता है——कठिन होने के कारण नहीं, हमारे समझने के कारण। जिस काम को हम सरलता से लेते हैं वह सरल हो जाता है, कठिनता हमारी दृष्टि में होती है। हमें समझाया गया है हजारों साल से कि ध्यान बड़ी कठिन चीज है। यह तो किन्हीं दुर्लभ लोगों को उपलब्ध होती है, यह तो तलवार की धार पर चलना है और यह

तो फलां है, ढिकां है। इन सब बातों ने हमारे मन में ऐसा भाव पैदा कर दिया है कि यह तो कुछ लोगों का काम है, यह सब लोगों के लिए हो नहीं सकता। हमारे लिए तो यही हो सकता है कि भजन कीर्तन करें, राम राम जपा करें या कहीं अपना कोई अखंड पाठ बिठा दें और माइक लगाकर जोर-जोर से चिल्लायें कि खुद का भी लाभ हो, पास पड़ोस के लोगों का भी लाभ हो, हम से यही हो सकता है। यह ध्यान वगैरह तो कुछ थोड़े से लोगों की बात है। यह झूठी बात है। ध्यान प्रत्येक व्यक्ति के लिए संभव है। ध्यान इतनी सरल बात है कि ऐसा कोई आदमी खोजना ही कठिन है जिसके लिए ध्यान न हो सके। लेकिन उसकी तैयारी, उस सरलता के भीतर प्रवेश करने की भूमिका और पात्रता उसे इकट्ठी करनी होती है। बहुत सरल बात है, उतनी ही सरल बात, जितनी कि कोई सरल से सरल बात हो सकती है। कली जैसे फूल बनती है उतनी ही सरल बात है कि मनुष्य का चित्त ध्यान बन जाय लेकिन फूल बने इसके लिए खाद चाहिए। पानी चाहिए, रोशनी चाहिए। ऐसे ही मन ध्यान बने इसके लिए कुछ जरूरतें हैं, उन्हीं जरूरतों की हम बात कर रहे हैं।

सप्तम प्रवचन

हृदय के गुणों का विकास, विनाश नहीं।
हृदय के भावों का दर्शन, दमन नहीं।
हृदय की वृत्तियों का रूपांतरण, घात नहीं।

विचार का केन्द्र मस्तिष्क है, भाव का केन्द्र हृदय है और संकल्प का केन्द्र नाभि है। विचार, चिन्तन, मनन, मस्तिष्क से होता है। भावना, अनुभव, प्रेम, घृणा और क्रोध हृदय से होता है। संकल्प नाभि से होता है। विचार केन्द्र के सम्बन्ध में कल थोड़ी सी बातें हमने कीं। पहले दिन मैंने आपको कहा था कि विचार तंतु बहुत कसे हुए हैं, उन्हें शिथिल करना है। विचार पर अत्यधिक तनाव और बल है। मस्तिष्क अत्यन्त तीव्रता से खिंचा हुआ है। विचार की वीणा के तार इतने खिंचे हुए हैं कि उनसे संगीत पैदा नहीं होता, तार ही टूट जाते हैं, मनुष्य विक्षिप्त हो जाता है और विक्षिप्त हो गया है। विचार की वीणा के तार थोड़े शिथिल करने अत्यन्त जरूरी हैं ताकि वे सम स्थिति में आ सकें और संगीत उत्पन्न हो सके। विचार से ठीक उल्टी स्थिति हृदय की है। हृदय के तार बहुत ढीले हैं। उन्हें थोड़ा कसना जरूरी है ताकि वे सम स्थिति में आ सकें और संगीत पैदा हो सके। विचार के तनाव को कम करना है और हृदय के ढीले तारों को थोड़ा कसाव देना है। विचार और हृदय दोनों के तार अगर सम अवस्था में आजायें, मध्य में आजायें, संतुलित हो जायें तो वह संगीत पैदा होगा जिस संगीत के मार्ग से नाभि के केन्द्र तक की यात्रा की सकती है। विचार कैसे शिथिल हों, कल हमने इस संबंध में बात की है। भाव, हृदय के तार कैसे कसे जा सकें यह बात हमें आज सुबह करनी है।

इससे पहले कि हम ठीक से हृदय के सम्बन्ध में, भाव के सम्बन्ध में, कुछ समझें, मनुष्य जाति एक बहुत लम्बे जिस अभिशाप के नीचे जी रही है, उसे समझ लेना जरूरी है। उसी अभिशाप ने हृदय

के तारों को बिल्कुल ढीला कर दिया है और वह अभिशाप यह है कि हमने हृदय के सारे गुणों की निन्दा की है। हृदय की जो भी क्षमताएँ हैं उन सबको हमने अभिशाप समझा है, वरदान नहीं समझा है और यह भूल इतनी संघातक है और इस भूल के पीछे इतनी नासमझी और इतना अज्ञान है जिसका कोई हिसाब नहीं। क्रोध की हमने निन्दा की है, अभिमान की हमने निन्दा की है, घृणा की हमने निन्दा की है, राग की हमने निन्दा की है, हर चीज की हमने निन्दा की है बिना यह समझे हुए कि हम जिन चीजों की प्रशंसा करते हैं वे इन्हीं चीजों के रूपान्तरण हैं। हमने क्षमा की प्रशंसा की है और क्रोध की निन्दा की है और बिना इस बात को समझे हुए कि क्षमा क्रोध की शक्ति का ही परिवर्तित रूप है। हमने घृणा की निन्दा की है और प्रेम की प्रशंसा की है, बिना यह समझे कि घृणा और प्रेम दोनों के पीछे प्रकट होने वाली शक्ति भिन्न-भिन्न नहीं है। हमने अभिमान की निन्दा की है और विनम्रता की प्रशंसा की है बिना यह समझे हुए कि अभिमान में जो ऊर्जा प्रकट होती है वही विनम्रता बन जाती है। उन दोनों चीजों में बुनियादी विरोध नहीं है, वे एक ही चीज के परिवर्तित बिन्दु हैं। जैसे वीणा के तार बहुत ढीले हों या बहुत कसे हों और उन्हें छूते हैं तो उनसे बेसुरा संगीत पैदा होता है जो कानों को अखरता है और चित्त को घबराता है। वह जो बेसुरापन पैदा हो रहा है उसके विरोध में आकर कोई तारों को तोड़ डाले और वीणा को पटक दे और कहे कि इस वीणा से बहुत बेसुरा संगीत पैदा होता है, यह तोड़ देने जैसी है तो वीणा को तो वह तोड़ सकता है, लेकिन वह यह भी याद रख ले कि संगीत भी उसी वीणा से पैदा होता है जिससे बेसुरे स्वर पैदा होते थे। बेसुरापन वीणा का कसूर नहीं था, वीणा अव्यवस्थित थी इस बात कीं भूल थी। वही वीणा सुव्यवस्थित होती तो जिन तारों से बेसुरापन पैदा होता था उन्हीं से प्राणों को मुग्ध करने वाला संगीत

पैदा हो सकता है। स्वर और बेस्वर एक ही तार से पैदा होने वाली चीजें हैं यद्यपि वे बिल्कुल विरोधी मालूम होती हैं और दोनों के परिणाम विरोधी हैं। दोनों में से एक आनन्द की तरफ ले जाती है, एक दुख की तरफ ले जाती है लेकिन दोनों के बीच में एक ही तार है और एक ही वीणा है। वीणा अव्यवस्थित हो, अराजक हो तो बेसुरापन पैदा होता है। मनुष्य के हृदय से क्रोध पैदा होता है अगर मनुष्य का हृदय सुव्यवस्थित, सुनियोजित, संतुलित नहीं है। वही हृदय संतुलित हो जाय तो जो शक्तियां क्रोध में प्रकट होती हैं वे शक्तियां क्षमा में प्रकट होनी शुरू हो जाती हैं। क्षमा क्रोध का ही रूपान्तरण है। अगर कोई बच्चा बिना क्रोध के पैदा हो जाय तो एक बात निश्चित है, उस बच्चे के जीवन में क्षमा कभी प्रकट नहीं हो सकती। अगर किसी बच्चे के हृदय में घृणा की कोई संभावना न हो तो उस बच्चे के हृदय में प्रेम की भी कोई संभावना नहीं रह जायगी। लेकिन हम इस भूल के नीचे जिये हैं अब तक कि ये दोनों विरोधी चीजें हैं और इनमें एक का विनाश करेंगे तो दूसरा विकसित होगा। यह बिल्कुल ही भूल भरी बात है, इससे ज्यादा खतरनाक कोई शिक्षा नहीं हो सकती, यह बात बिल्कुल अवैज्ञानिक और अत्यन्त अबुद्धिपूर्ण है। क्रोध के विनाश से क्षमा उत्पन्न नहीं होती, क्रोध के रूपान्तरण (Transformation) से, क्रोध के परिवर्तन से क्षमा उपलब्ध होती है। क्षमा क्रोध का नष्ट हो जाना नहीं है, बल्कि क्रोध का संतुलित और संगीतपूर्ण हो जाना है। इसलिए अगर हम क्रोध के विरोध में हैं और क्रोध को नष्ट करने का उपाय कर रहे हैं तो हम वीणा को ही तोड़ने का उपाय कर रहे हैं और इससे एक ऐसा मनुष्य पैदा होगा जो अत्यन्त दीन हीन होगा, जिसके हृदय की कोई भी शक्ति विकसित नहीं हो पायेगी। यह वैसे ही है जैसे किसी आदमी ने अपने घर के आस पास खाद का ढेर लगा रखा हो और

उसके आस पास गंदगी फैल रही हो, बदबू फैल रही हो और वह आदमी परेशान हो और कहता हो कि खाद लाने से तो फूल पैदा होते हैं और फल से सुगन्ध आती है लेकिन हमारे घर में हमने खाद लाकर रख दिया है तो दुर्गन्ध फैल रही है, घर बदबू से भरा जा रहा है, जीना मुश्किल हुआ जा रहा है ।

खाद लाने से जरूर फूल पैदा होते हैं लेकिन घर में खाद को लाने से नहीं । खाद का रूपान्तरण होता है बीजों के माध्यम से और फिर खाद फूलों में प्रवेश करती है और खाद की जो दुर्गन्ध थी वह एक दिन फूलों की सुगंध में परिवर्तित हो जाती है । लेकिन खाद को घर में भर लेने से तो कोई पागल हो जायगा और खाद को फेंक देने से उसके फूल निर्जीव हो जायेंगे, निस्तेज हो जायेंगे । लेकिन खाद का रूपान्तरण हो सकता है, दुर्गन्ध सुगन्ध में परिर्वातित हो सकती है । इसी कीमिया (Alchemy) का नाम योग है, इसी कीमिया का नाम धर्म है । जो जीवन में व्यर्थ है उसको सार्थक की दिशा में परिर्वातत करने की जो कला है वह धर्म है लेकिन धर्म के नाम पर हम आत्मघात कर रहे हैं । धर्म के नाम पर हमारी चेतना परिर्वातत नहीं होती, कोई बुनियादी भूलों के भीतर हम जी रहे है, कोई गहरी अभिशाप की छाया हमको पकड़े हुए है । हृदय इस लिए अविकसित रह गया कि हृदय के मौलिक गुणों के विरोध में ही हम खड़े रहे । यह बात थोड़ी समझ लेनी जरूरी है ।

मैं देख पाता हूं कि मनुष्य का अगर ठीक-ठीक विकास हो तो उसके जीवन में क्रोध का भी अपना अनिवार्य स्थल है, क्रोध की भी अपनी जगह है, उसके सम्पूर्ण जीवन के चित्र में क्रोध का भी अपना रंग है और अगर उसे हम बिल्कुल अलग कर दें तो उसके जीवन का चित्र किन्हीं अर्थों में अधूरा रह जायगा, उसमें कोई रंग की कमी रह जायगी । बचपन से ही हम सिखाना शुरू कर देते हैं कि इन सारी चीजों को अलग कर देना है और अंधे

की तरह हम बच्चों के पीछे पड़ जाते हैं इन सारी चीजों को अलग कर देने के लिए । अलग करने का कुल एक ही परिणाम हो सकता है कि जो जो हम बुरा कहते हैं, बच्चा उसे दबा के बैठ जाय, अपने भीतर दमन कर ले । दमित हृदय शिथिल हृदय होगा, उसके तार ठीक ठीक खिंच नहीं पायेंगे और जो यह दमन होगा यह बुद्धि के द्वारा होगा क्योंकि आप किसी भी बच्चे को सिखायें कि क्रोध बुरा है तो आपकी यह शिक्षा उसके हृदय तक पहुंचने वाली नहीं है । हृदय के पास सुनने के लिए कोई कान नहीं है और हृदय के पास सोचने के लिए कोई शब्द नहीं है । यह सारी शिक्षा बुद्धि में जायगी और बुद्धि हृदय को परिवर्तित नहीं कर सकती । तो एक कठिनाई पैदा हो जायगी । बुद्धि सोच लेती है कि क्रोध करना बुरा है । आप रोज क्रोध करते हैं और बहुत पछताते हैं कि क्रोध करना बुरा है, और अब आगे मैं क्रोध नहीं करूंगा । लेकिन यह बुद्धि का केन्द्र सोच रहा है और हृदय के केन्द्र को इस बात की कोई खबर नहीं कि क्रोध बुरा है और अब आगे क्रोध नहीं करूंगा । कल फिर सुबह आप उठते हैं और जरा सी बात से फिर क्रोध शुरू हो जाता है । आप बहुत हैरान होते हैं कि मैंने पच्चीसों दफे तय किया कि मैं अब क्रोध नहीं करूंगा यह क्रोध फिर क्यों आजाता है । मैं कितनी कितनी बार पश्चात्ताप कर चुका, फिर भी क्रोध क्यों आजाता है । आपको पता ही नहीं है कि क्रोध करने वाला केन्द्र अलग और पश्चात्ताप करने वाला केन्द्र बिल्कुल अलग है । जो केन्द्र निर्णय करता है कि मैं क्रोध नहीं करूंगा वह बिल्कुल भिन्न है और जो केन्द्र क्रोध करता है वह बिल्कुल भिन्न है । ये बिल्कुल दो अलग केन्द्र हैं इसलिए पश्चात्ताप और निर्णय का कोई परिणाम आपके क्रोध पर कभी भी नहीं पड़ पाता । आप क्रोध भी किये जाते हैं और पश्चात्ताप भी किये जाते हैं और दुखी भी हुए चले जाते हैं । जीवन भर आपको ख्याल में नहीं आता है कि कहीं ये दोनों

केन्द्र इतने पृथक् तो नहीं हैं कि एक का निर्णय दूसरे तक पहुँच ही नहीं पाता।

इस तरह आदमी एक आँतरिक विघटन (Inner disintegration) में पड़ जाता है। हृदय का केन्द्र और ही तरह से काम करता है, उस केन्द्र के विकास के लिए कुछ और ही रास्ता है। बुद्धि उस केन्द्र में बाधा देगी तो केन्द्र केवल शिथिल और अस्त व्यस्त होगा। और हम सबके हृदय का केन्द्र बिल्कुल ही अराजक हो गया है, बिल्कुल अव्यवस्थित हो गया है। पहली बात, निश्चित ही क्रोध रूपान्तरित होना चाहिए, लेकिन नष्ट नहीं। इसलिए पहला सूत्र हृदय के तारों को कसने के लिए है—हृदय के गुणों का विकास, विध्वंस नहीं। यह पहला सूत्र ठीक से समझ लेने की जरूरत है—हृदय के सारे गुणों का विकास, विध्वंस नहीं। आप थोड़ी मुश्किल में पड़ेंगे थोड़ा सोच में पड़ेंगे कि क्या क्रोध का भी विकास करना चाहिए? मैं आपको कहूँगा निश्चित ही विकास होना चाहिए, क्योंकि विकसित क्रोध ही फिर एक दिन रूपान्तरित होकर क्षमा बन सकता है अन्यथा कभी भी क्षमा जीवन में उत्पन्न नहीं हो सकती। क्रोध की अपनी गरिमा और अपना गौरव है। दुनिया में जो बड़े से बड़े क्षमाशील लोग हुए हैं, अगर आप उनका जीवन पढ़ेंगे तो आप पायेंगे कि उनके प्राथमिक दिनों में वे बड़े से बड़े क्रोधी लोग थे। दुनियाँ में जो बड़े से बड़े ब्रह्मचारी हुए हैं, अगर आप उनका जीवन पढ़ेंगे तो पायेंगे कि उनके प्राथमिक जीवन में उनसे ज्यादा कामुक, उनसे ज्यादा कामवान् (Sexful) और कोई भी नहीं था। गाँधी के जीवन में इतना ब्रह्मचर्य फलित हुआ, यह गाँधी के प्राथमिक जीवन की अत्यन्त कामुकता का फल है। गाँधी अत्यन्त कामुक थे। जिस दिन गाँधी के पिता की मृत्यु हुई, पत्नी ने कह दिया था कि पिता आज रात बच नहीं सकेंगे, उस रात भी गाँधी अपनी पत्नी से दूर नहीं रह सके। वह अन्तिम

रात थी, बाप के मरने की रात थी। उस रात पिता के पास बैठना सहज और स्वाभाविक था, क्योंकि अन्तिम विदा थी, इसके बाद फिर पिता से मिलना नहीं हो सकेगा, लेकिन आधी रात गये, गांधी अपनी पत्नी के पास पहुँच गये। पिता मरे तब पत्नी के पास बिस्तर पर ही गाँधी थे। इसकी एक बहुत तीव्र चोट गाँधी के चित्त पर पहुंची। गांधी का बाद का सारा ब्रह्मचर्य इसी चोट से विकसित हुआ। यह जो अत्यन्त कामुक चित्त था इसकी सारी ऊर्जा और सारी शक्ति ब्रह्मचर्य की तरफ फलित होगयी। यह कैसे हो सका? यह इसलिए हो सका कि शक्तियाँ हमेशा तटस्थ होती हैं, सिर्फ दिशाओं का परिवर्तन होता है। जो शक्ति काम की तरफ बहती थी वह सारी शक्ति विपरीत दिशा की तरफ बहनी शुरू हो गयी। लेकिन शक्ति थी तो विपरीत बह सकी और शक्ति ही न हो तो विपरीत क्या खाक बहेगी। शक्ति हो तो दूसरी दिशा में भी जा सकती है लेकिन शक्ति ही न हो तो दूसरी दिशा में क्या जायगी, कौन सी चीज जायगी?

सारी शक्तियाँ ठीक-ठीक विकसित होनी चाहिएँ। मनुष्य को नैतिक शिक्षाओं के भ्रम ने अत्यन्त दीन हीन, अत्यन्त वीर्यहीन (Impotent) बना दिया है। पुराने लोग हमसे ज्यादा गहरे अर्थ में जीवन का अनुभव करते थे।

अकबर के दरबार में दो राजपूत युवक आये। दोनों भाई थे और अकबर से जाकर उन्होंने कहा कि हम कोई नौकरी खोजने की तलाश में निकले हैं। अकबर ने पूछा: तुम करना क्या जानते हो? उन्होंने कहा, हम और तो कुछ करना नहीं जानते लेकिन हम बहादुर लोग हैं। हो सकता है हमारी आपको कोई जरूरत हो। अकबर ने कहा: बहादुरी का प्रमाणपत्र लाये हो? क्या सबूत कि तुम बहादुर हो? वे दोनों हंसने लगे और उन्होंने कहा, "बहादुरी का भी कोई प्रमाणपत्र होता है?" अकबर ने कहा, बिना प्रमाणपत्र के नौकरी

नहीं मिल सकती। वे दोनों हंसे, उन्होंने तलवारें निकालीं और एक दूसरे की छाती में एक क्षण में वे तलवारें घुस गयीं। अकबर तो देखता रह गया। वे दोनों जवान जमीन पर पड़े थे, लहू का फव्वारा बह रहा था, लेकिन वे हंस रहे थे। उन्होंने कहा, अकबर, तुझे पता ही नहीं कि बहादुरी का एक ही प्रमाण पत्र हो सकता है, वह है मौत। और तो कोई प्रमाणपत्र नहीं हो सकता।' वे दोनों मर गये। अकबर की आँखों में आंसू आ गये। उसकी कल्पना भी नहीं थी कि ऐसी घटना बढ़ जायेगी।

यह जो इतना तीव्र क्रोध है, जो इतनी तेजस्विता है, यह व्यक्तित्व की बड़ी महिमापूर्ण गरिमा है। इससे सारी मनुष्य जाति वंचित होती चली जाती है। आदमी की सारी तेजस्विता सारा वीर्य नष्ट होता चला जाता है और हम समझते हैं कि हम बहुत अच्छी शिक्षाओं के अंतर्गत यह कर रहे हैं। यह बहुत अच्छी शिक्षाओं के अंतर्गत नहीं हो रहा है। बच्चों का सारा विकास गलत नियमों के अनुकूल हो रहा है, उनके भीतर कुछ भी विकसित नहीं हो पाता।

एक बहुत प्रसिद्ध लामा ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब मैं पाँच वर्ष का था तो मुझे विद्यापीठ में पढ़ने के लिए भेजा गया। रात को मेरे पिता ने मुझसे कहा कि कल सुबह चार बजे तुझे विद्यापीठ भेजा जायगा और स्मरण रहे, सुबह तेरी विदाई के लिए न तो तेरी माँ होगी और न मैं मौजूद रहूंगा। माँ इसलिए मौजूद नहीं रखी जा सकती कि उसकी आँखों में आँसू आ जायेंगे और रोती हुई माँ को तू छोड़कर जायगा तो तेरा मन पीछे की तरफ होता रहेगा और हमारे घर में आज तक कोई ऐसा आदमी पैदा नहीं हुआ जो पीछे की तरफ देखता हो। मैं इसलिए मौजूद नहीं रहूंगा कि अगर तूने एक भी बार घोड़े पर बैठकर पीछे देख लिया तो फिर मेरा तू लड़का नहीं रह जायगा, फिर इस घर का दरवाजा

तेरे लिए बन्द हो जायगा। तो नौकर तुझे विदा दे देंगे सुबह और स्मरण रख, घोड़े पर से पीछे लौटकर मत देखना। हमारे घर में कोई ऐसा आदमी नहीं हुआ जिसने पीछे की तरफ लौटकर देखा हो और अगर तूने पीछे की तरफ लौटकर देखा तो समझ लेना कि फिर इस घर से तेरा कोई नाता नहीं।

पाँच वर्ष के बच्चे से ऐसी अपेक्षा? पाँच वर्ष का बच्चा सुबह चार बजे उठा दिया गया और घोड़े पर बिठा दिया गया। नौकरों उसे विदा कर दिया। चलते वक्त नौकरों ने भी कहा 'बेटे होशियारी से! मोड़ तक दिखायी पड़ता है, पिता ऊपर से देखते हैं। मोड़ तक पीछे लौटकर मत देखना। इस घर में सब बच्चे ऐसे ही विदा हुए लेकिन किसी ने पीछे लौट कर नहीं देखा। और तुम जहाँ भेजे जा रहे हो वह विद्यापीठ साधारण नहीं है। देश के श्रेष्ठतम पुरुष उस विद्यापीठ से पैदा होते हैं। वहाँ बड़ी कठिन परीक्षा होगी प्रवेश की। तो चाहे कुछ भी हो जाय, हर कोशिश करना कि उस प्रवेश परीक्षा में सफल होजाओ, क्योंकि वहाँ से असफल हो गये तो इस घर में तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं रह जायगी।

पाँच वर्ष का लड़का, उसके साथ ऐसी कठोरता! वह घोड़े पर बैठ गया और उसने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मेरी आँखों में आँसू भरने लगे लेकिन पीछे लौटकर कैसे देख सकता था उस घर को, पिता को। जिस घर को छोड़ जाना पड़ रहा है आज उसे लौटकर भी नहीं देखा जा सकता, क्योंकि मेरे घर में कभी किसी ने लौटकर नहीं देखा। और अगर पिता ने देख लिया तो फिर इस घर से हमेशा के लिए वंचित हो जाऊंगा, इसीलिए कड़ी हिम्मत रखी और आगे की तरफ देखता रहा, पीछे की तरफ लौटकर नहीं देखा।

इस बच्चे के भीतर कोई चीज पैदा की जा रही है। इस बच्चे

के भीतर कोई संकल्प जगाया जा रहा है जो इसके नाभि केन्द्र को मजबूत करेगा। यह बाप कठोर नहीं है, यह बाप बहुत प्रेम से भरा हुआ है। हमारे सब माँ बाप गलत हैं जो प्रेम से भरे हुए दिखायी पड़ रहे हैं, वे भीतर के सारे केन्द्र को शिथिल किये दे रहे हैं। भीतर कोई बल, कोई संबल खड़ा नहीं किया जा रहा है।

वह स्कूल में पहुंच गया। पाँच वर्ष का छोटा सा बच्चा, उसकी क्या सामर्थ्य और क्या हैसियत। स्कूल के प्रधान ने, विद्यापीठ के प्रधान ने कहा कि यहाँ की प्रवेश परीक्षा कठिन है। दरवाजे पर आँख बन्द करके बैठ जाओ और जब तक मैं वापस नहीं आऊं तब तक आँख मत खोलना चाहे कुछ भी हो जाय। यह तुम्हारी प्रवेश परीक्षा है। अगर तुमने आँख खोल ली तो हम वापस लौटा देंगे क्योंकि जिसका अपने ऊपर इतना भी बल नहीं है कि कुछ देर तक आँख बन्द किये बैठा रहे वह और क्या सीख सकेगा। उसके सीखने का दरवाजा खतम हो गया, बन्द हो गया। फिर तुम इस काम के लायक नहीं हो, तुम जाकर और कुछ करना।

वह बैठ गया दरवाजे पर आँख बन्द करके। मक्खियाँ उसे सताने लगीं लेकिन आँख खोलकर नहीं देखना है क्योंकि आँख खोलकर देखा तो मामला खत्म हो जायगा। जो दूसरे बच्चे स्कूल में आ जा रहे हैं, कोई उसे धक्का देने लगा है कोई उसे परेशान करने लगा है लेकिन आँख खोलकर देखा तो मामला खराब हो जायगा और नौकरों ने आते वक्त कहा है कि अगर प्रवेश परीक्षा में असफल हो गये तो यह घर भी तुम्हारा नहीं। एक घंटा बीत गया, दो घंटे बीत गये, वह आँख बन्द किये बैठा है और डरा हुआ है कि कहीं भूल से भी आँख न खुल जाय और आँख खोलने के सब प्रलोभन मौजूद हैं वहाँ। रास्ता चल रहा है, बच्चे उसे धक्के देते जा रहे हैं, कोई बच्चा कंकड़ मार रहा है। मन होता है कि देखें कि अब तक गुरु आया या नहीं। एक घंटा, दो घंटा, तीन घंटा, चार घंटा—उसने

लिखा है कि पाँच घंटे और फिर छः घंटे बाद गुरु आया और उसने कहा, 'बेटे, तेरी प्रवेश परीक्षा पूरी हो गयी। तू भीतर आ तू संकल्पवान युवक बनेगा। तेरे भीतर संकल्प है, तू जो चाहे कर सकता है। पाँच छः घंटे इस उम्र में आँख बन्द करके बैठना बड़ी बात है।' उसने उसे छाती से लगा लिया और कहा, 'तू परेशान मत होना, वे बच्चे तुझे सता नहीं रहे थे, वे बच्चे भेजे गये थे। उन्हें कहा गया था कि तुझे थोड़ा परेशान करेंगे ताकि तेरा आँख खोलने का मन हो जाये।' उस लामा ने लिखा है कि कल तक मैं सोचता था कि मेरे साथ बड़ी कठोरता बरती जा रही है लेकिन अब जीवन के अन्त में मैं धन्यवाद से भरा हूं, उन लोगों के प्रति जो मेरे प्रति कठोर थे। उन्होंने मेरे भीतर कुछ सोई हुई चीजें पैदा कर दीं, कोई सोया हुआ बल जगा दिया।

लेकिन हम उल्टा कर रहे हैं—बच्चे को डाँटना भी नहीं है, मारना भी नहीं है और अभी तो सारी दुनिया में शारीरिक दंड बिल्कुल बन्द कर दिया गया है। बच्चे को कोई चोट नहीं पहुंचायी जा सकती है, कोई शारीरिक दंड नहीं दिया जा सकता। यह निहायत बेवकूफी से भरी बातें है क्योंकि दंड अत्यन्त सम्पूर्ण था, वह शत्रुता नहीं थी बच्चों के प्रति, उनके भीतर सोये हुए कुछ केन्द्र, उसी के अंतर्गत जागते थे। उनके भीतर रीढ़ खड़ी होती थी, मजबूत होती थी। उनके भीतर कोई बल पैदा होता था, उनके भीतर क्रोध भी जगता था, अभिमान भी जगता था और उनके भीतर कोई रीढ़ खड़ी होती थी। हम बेरीढ़ (Invertebrate) के आदमी पैदा कर रहे हैं, जो जमीन पर सरक सकते हैं लेकिन बाज पक्षियों की तरह आकाश पर नहीं उड़ सकते। एक सरकता हुआ, रेंगता हुआ आदमी हम पैदा कर रहे हैं जिसके पास कोई रीढ़ नहीं और हम सोचते हैं कि हम दया और प्रेम और नीति के अंतर्गत यह कर रहे हैं। उसको भी हम यही सिखाते हैं कि क्रोध मत करना, उसको भी

हम यही सिखाते हैं कि तेरे भीतर कोई तेजस्विता प्रकट न हो, तू बिल्कुल शाँत व ढीला ढाला आदमी बनना, शिथिल । इस आदमी के जीवन की कोई आत्मा नहीं हो सकती, इस आदमी के भीतर कोई आत्मा नहीं हो सकती क्योंकि आत्मा के लिए जैसी तीव्र सारे हृदय की भावनाएं चाहिएं वे उसके भीतर कोई भी नहीं होने वाली हैं ।

एक मुसलमान खलीफा था उमर। एक शत्रु से १२ वर्षों से उसका युद्ध चल रहा था। बमुश्किल आखिरी लड़ाई में उसने शत्रु के घोड़े को मार डाला और उसकी छाती पर सवार हो गया। वह भाला उठाकर उसकी छाती में छेदने को ही था, तभी उस शत्रु ने उमर के ऊपर थूक दिया। उमर ने भाला अलग फेंक दिया और उठकर खड़ा हो गया। वह शत्रु हैरान हुआ । उसने कहा कि उमर, बारह वर्षों के बाद ऐसा अवसर तुम्हें मिला था, इसे क्यों चूकते हो ? उमर ने कहा, मैं तो सोचता था कि तू मेरे मुकाबले का दुश्मन है, लेकिन थूक के तुमने मेरे मुंह पर ऐसी नीचता प्रकट की है कि अब तुझे मारने का कोई सवाल नहीं रहा। मैं तो सोचता था कि तू मेरे मुकाबले का आदमी है इसलिए बारह साल से लड़ाई चलती थी लेकिन जब भाला उठाकर मैं तुझे मारने लगा तो तूने मेरे ऊपर थूक दिया जो एक बहादुर का लक्षण नहीं । तुझे मार के मैं क्यों पाप लेने वाला होऊं, दुनिया क्या कहेगी कि कमजोर आदमी को मारा, जो थूकने की ताकत रखता था और कोई ताकत नहीं। इसलिए बात खत्म हो गयी, तुझे मारने का पाप मैं लेने वाला नहीं हूं ।

ये जो लोग थे, अद्भुत लोग थे । दुनिया में अस्त्र-शस्त्रों और मशीनों की ईजाद ने आदमी के भीतर जो भी महत्त्वपूर्ण था वह सब कुछ नष्ट कर दिया । सीधी लड़ाइयों का अपना मूल्य था । मनुष्य के भीतर छिपी हुई चीजों को वे प्रगट कर देती थीं । आज

एक सैनिक कोई सीधी लड़ाई नहीं लड़ता । हवाई जहाज में उड़कर बम पटक देता है, उससे बहादुरी का कोई सम्बन्ध नहीं। उससे भीतर के गुणों का कोई वास्ता नहीं । एक मशीनगन पर बैठकर बटन दबाता रहता है । उससे कोई वास्ता नहीं । तो आदमी की जिन्दगी में जो भी छिपा हुआ था उसके जागने की सारी संभावना क्षीण हो गयी और तब आदमी इतना दीन हीन, इतना दुर्बल दिखायी पड़ता है तो कोई आश्चर्य नहीं है । उसके भीतर सारे तत्त्व जुड़कर खड़े ही नहीं हो पाते । मेरी दृष्टि में मनुष्य के भीतर के सारे गुणों का तीव्रतम चरम विकास होना चाहिए और चरम विकास हो तो ही इस चरम बिन्दु पर रूपान्तरण हो सकता है । सब परिवर्तन चरम बिन्दुओं पर होते हैं, नीचे कोई परिवर्तन नहीं होते । पानी को हम गरम करते हैं तो पानी कुनकुना होकर भाप नहीं बनता । कुनकुना पानी भी पानी ही होता है, लेकिन सौ डिग्री पर जब अपनी चरम गर्मी को उपलब्ध होता है तब एक क्रान्ति होती है। पानी सौ डिग्री पर भाप बनता है, उसके पहले भाप नहीं बनता । कुनकुना पानी भाप नहीं बनता ।

हम सब कुनकुने (Lukewarm) आदमी हैं। हमारी जिन्दगी में भी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता क्योंकि एक विशिष्ट डिग्री तक हमारे हृदय की, हमारे चित्त की सारी शक्तियां विकसित होनी चाहिएँ तो उनमें क्रान्ति हो सकती है, तो उनमें परिवर्तन हो सकता है । क्रोध की एक ठीक-ठीक तेजस्विता उपलब्ध हो तो ही क्षमा में उसका रूपान्तरण हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता है । लेकिन हम तो क्रोध के शत्रु हैं । हम तो लोभ के शत्रु हैं, हम तो राग के शत्रु हैं । तो हम कुनकुने आदमी हो जाते हैं और कुनकुनी जिन्दगी जो रहती है उसमें कोई क्रांति कभी नहीं हो पाती। इस कुनकुनेपन का मनुष्य के ऊपर इतना घातक असर हुआ है जिसका कोई हिसाब नहीं । मेरी दृष्टि में इसलिए पहली बात ध्यान में लेने

की यह है कि हमारे व्यक्तित्व के, हमारे हृदय के सारे गुण ठीक से विकसित हों और ठीक से विकसित क्रोध भी एक अपना सौन्दर्य रखता है जो हमें दिखायी नहीं पड़ता है। ठीक से विकसित क्रोध का भी अपना सौन्दर्य है, ठीक से विकसित क्रोध का भी व्यक्तित्व में अपना तेज है, अपनी ऊर्जा है, अपना अर्थ है। वह व्यक्तित्व में अपने ढंग का सहयोग देता है, अपने ढंग का दान (Contribution) देता है। हृदय की जितनी भावनाएं हैं वे सब तीव्रतम रूप से विकसित होनी चाहिएँ!

विध्वंस नहीं, विकास। यह पहली बात हुई। दूसरी बात है दमन नहीं, दर्शन। क्योंकि जितना हम हृदय की भावनाओं का दमन करते हैं उतना ही हमारा हृदय अचेतन होता चला जाता है।

जिस चीज को हम दबाते हैं वह चीज उतनी आँख से ओझल और अंधेरे में सरक जाती है। हृदय की सारी शक्तियों का स्पष्ट दर्शन होना चाहिए। अगर आपको क्रोध आजाय तो राम राम जपकर उसको दबाने की कोशिश मत करिये। क्रोध आ जाय तो एकांत कमरे में बैठकर द्वार बन्द करके क्रोध पर ध्यान करिये, क्रोध को पूरी तरह देखिये कि यह क्रोध क्या है, यह क्रोध की शक्ति क्या है? मेरे भीतर यह क्रोध कहां से पैदा होता है, क्यों पैदा होता है, किस भांति मेरे चित्त को घेर लेता है और मुझे प्रभावित कर लेता है? एकांत में ध्यान करिए क्रोध पर, क्रोध को पूरा देखिये, समझिये पहचानिये, कहाँ से पैदा होता है, क्यों पैदा होता है, तो आप धीरे-धीरे क्रोध के मालिक बन जायेंगे। और जो आदमी अपने क्रोध का मालिक हो जाता है उसके हाथ में एक बड़ी शक्ति आ गयी, उसके हाथ में एक बड़ा बल आ गया, वह आदमी बलशाली हो गया, वह आदमी आत्मबली हो गया। तो क्रोध से लड़ने का सवाल नहीं है, क्रोध को जानने का सवाल है। क्योंकि स्मरण रखें, ज्ञान से बड़ी कोई भी शक्ति नहीं है और अपनी शक्तियों

से लड़ने से कोई बड़ी मूर्खता नहीं है। जो अपनी ही शक्तियों से लड़ता है वह इसी तरह की गलती कर रहा है जैसे कोई आदमी अपने ही दोनों हाथों को लड़ाने लगे। तो दोनों हाथ लड़ेंगे पर कोई हाथ कभी जीत नहीं सकेगा क्योंकि दोनों हाथ मेरे ही हैं, दोनों हाथों के पीछे से मैं ही लड़ रहा हूं। दोनों हाथों में मेरी ही शक्ति प्रवाहित हो रही है तो दोनों हाथों की लड़ाई में मेरी ही शक्ति नष्ट हो रही है। दोनों हाथों में न तो बायां जीतेगा, न तो दायां। एक बात तय है कि दोनों हाथों की लड़ाई में मैं हार जाऊँगा। मेरी सारी शक्ति व्यर्थ में अपव्यय हो जायेगी। जब आप क्रोध से लड़ते हैं तो क्रोध में जो शक्ति है वह किसकी है? वह आपकी ही है। क्रोध में जो शक्ति प्रकट हो रही है वह आपकी है क्रोध से जो शक्ति लड़ रही है वह आपकी है। आप अपने को ही तोड़कर लड़ेंगे तो आप खंडित से खंडित होते चले जायेंगे। विघटन इसका परिणाम होगा, आप अखंड व्यक्ति नहीं रह जायेंगे। अपने ही भीतर जो व्यक्ति अपने से ही लड़ता है, पराजय के अतिरिक्त उसके जीवन में कुछ भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। लड़िये मत, जानिये अपनी शक्तियों को, पहचानिये।

इसलिए दूसरा सूत्र है दमन नहीं, दर्शन। हम कई अपरिचित शक्तियों के समूह हैं। हम बहुत अनजान शक्तियों के केन्द्र हैं जिन शक्तियों का हमें कोई परिचय नहीं, कोई बोध नहीं। हजारों साल पहले भी आकाश में बिजली चमकती थी तब आदमी डरता था, भयभीत होता था, हाथ जोड़कर बैठ जाता था, घबराता था। तब बिजली जो थी वह भय का कारण थी लेकिन आज हम जानते हैं, बिजली हमने बांध ली है, आज बिजली भय का कारण नहीं है, सेवक बन गई है। आज घर-घर में उससे प्रकाश होता है, बीमार का इलाज होता है, मशीन चलती है। आदमी की सारी जिन्दगी आज उससे प्रभावित है, उससे संचालित है। लेकिन हजारों साल तक आदमी सिर्फ डरता था क्योंकि बिजली को जानता नहीं था कि बिजली क्या है।

एक बार जान लिया कि क्या है तो हम उसके मालिक हो गये।

ज्ञान मालिक बना देता है। हमारे भीतर भी बिजली से बड़ी ताकतें प्रज्वलित हैं। क्रोध चमकता है, घृणा चमकती है, प्रेम चमकता है, हम घबरा जाते हैं, डर जाते हैं कि यह क्या हो रहा है क्योंकि इन सारी शक्तियों को हम जानते नहीं कि ये क्या हैं। अपनी जिन्दगी को एक प्रयोगशाला बनाइए और भीतर की उन सारी ताकतों को जानने, निरीक्षण करने और पहचानने के प्रयास में संलग्न हो जाइए। भूल कर भी दमन तो करिये मत, भूल कर भी भयभीत मत होइए लेकिन जो भी भीतर है उसे जानने की फिक्र करिये। क्रोध आ जाय तो सौभाग्य समझिये और जो आदमी क्रोध में आपको ला दे उसको धन्यवाद दीजिये कि उसने एक मौका दिया है। आपके भीतर एक ताकत जग गई है, अब आप उसको देख सकेंगे और एकांत में उस ताकत को शांति से देखिये, पहचानिये, खोजिये, वह क्या है। जितना आपका यह जानना बढ़ेगा, जितनी आपकी यह समझ (understanding) गहरी होगी, उतने ही आप अपने क्रोध के मालिक हो जायेंगे, उतना ही आप पायेंगे कि वह आपके हाथ में खेलने वाली एक ताकत हो गई है। और जिस दिन आप क्रोध के मालिक हैं उस दिन आप क्रोध को परिवर्तित कर सकते हैं, बदल सकते हैं। जिसके हम मालिक हैं उसे हम बदल सकते हैं, जिसके हम मालिक नहीं, उसे हम बदलेंगे कैसे और जिससे आप लड़ते हैं, ध्यान रखें, उसके आप मालिक कभी भी नहीं हो सकते हैं। शत्रु का मालिक होना असम्भव है, केवल मित्र ही मालिक हो सकता है, और अपने ही भीतर की ताकतों के अगर आप शत्रु हो गये तो आप कभी उनके मालिक नहीं हो सकते। प्रेम के अतिरिक्त कोई विजय नहीं। यह जो भीतर सारी शक्तियों का भण्डार है इससे न तो घबराइए, न इसकी निन्दा करिये, इसको पहचानिये कि क्या छिपा है भीतर।

आदमी के भीतर इतना छिपा है जिसका कोई हिसाब नहीं।

हम अभी आदमी की शुरुआत भी नहीं हैं। दस बीस हजार साल में शायद जो आदमी होगा, हम उससे उतने ही फासले पर हो जायेंगे जैसे बन्दर हमसे फासले पर हो गया। वह बिल्कुल नई जाति हो सकती है क्योंकि आदमी के भीतर कितनी शक्तियाँ हैं उनका अभी हमें कोई बोध नहीं। वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क का बहुत-सा हिस्सा बिल्कुल बेकार पड़ा हुआ है उसका कोई उपयोग ही नहीं हो रहा है। मस्तिष्क का थोड़ा सा हिस्सा काम कर रहा है, बाकी सारा हिस्सा बन्द पड़ा है। यह जो बाकी हिस्सा है, यह व्यर्थ तो नहीं हो सकता क्योंकि प्रकृति में कुछ भी व्यर्थ नहीं है। हो सकता है, आदमी का अनुभव, आदमी का ज्ञान विकसित हो तो यह बन्द पड़ा हुआ हिस्सा भी सक्रिय हो जाय और काम करने लगे और तब मनुष्य और क्या जान सकेगा उसके लिए अभी हम कुछ भी नहीं कह सकते।

एक आदमी अंधा है तो उसके लिए प्रकाश जैसी चीज दुनिया में नहीं रह जाती। आंख नहीं है तो प्रकाश नहीं है। जिन प्राणियों के पास आंख नहीं है उन्हें पता भी नहीं हो सकता है कि प्रकाश भी है जगत में। उन्हें कल्पना भी नहीं हो सकती, वे सपना भी नहीं देख सकते कि प्रकाश भी है जगत में। हमारे पास पांच इंद्रियां हैं। कौन कह सकता है कि छह इंद्रियां होतीं तो हम कुछ और चीज जानते जो कि जगत में हो। कौन कह सकता है कि सात इंद्रियां होतीं तो हम और चीजें जानते जो कि जगत में हों और कौन कह सकता है कि इंद्रियों की कितनी सीमा है, कितनी हो सकती हैं। हम जो जानते हैं वह अत्यल्प है और हम जो जीते हैं वह उससे भी अत्यल्प है। तो हमारे भीतर हम जितना जानेंगे, जितना प्रवेश करेंगे, जितना परिचित होंगे उतना ही ज्यादा हमारी जीवन शक्ति विकसित होती है और हमारी आत्मा सघन होती है।

दूसरा सूत्र ध्यान में लेने जैसा है कि हम अपनी किसी भी शक्ति

का दमन न करें, बल्कि उसे जानें, पहचानें, खोजें, देखें और इसी के साथ एक हैरानी का अनुभव आपको होगा कि अगर आप क्रोध को जानने गये, अगर आपने बैठकर शांति से क्रोध को देखने और दर्शन का प्रयास किया तो आप पायेंगे कि जैसे ही आप दर्शन करने को प्रवृत्त होंगे वैसे ही क्रोध विलीन हो जायेगा। जैसे ही आप क्रोध को निरीक्षण करेंगे वैसे ही क्रोध तिरोहित हो जायगा। तब आपको एक बात दिखायी पड़ेगी कि क्रोध आपको पकड़ता है मूर्छा में। जब आप होश से भरते हैं तो क्रोध विलीन हो जाता है। अगर आपके मन में काम-वासना उठ रही है और आप उसका निरीक्षण करने चले गये हैं तो आप पायेंगे, वह विसर्जित हो गयी है। तब आप पायेंगे कि काम पैदा होता है मूर्छा में और निरीक्षण करने से विलीन हो जाता है। तो आपके हाथ में एक अद्भुत सूत्र उपलब्ध हो जायगा। वह यह कि मूर्छा के अतिरिक्त क्रोध और काम और लोभ का मनुष्य के ऊपर कोई बल नहीं है, जैसे ही वह निरीक्षण करता है होश (Awareness) से भरता है, वैसे ही ये विलीन हो जाते हैं।

एक मेरे मित्र थे, उनको बहुत क्रोध की बीमारी थी। वे मुझसे कहे कि मैं तो बहुत परेशान हो गया हूं और अब मेरे वश के बाहर है यह बात। आप ही कुछ रास्ता मुझे बता दीजिये ताकि मुझे कुछ भी न करना पड़े क्योंकि मैं तो हैरान हो गया हूं। मुझे अब आशा नहीं रही कि मैं कुछ कर सकता हूं, इस क्रोध के बाहर हो सकता हूं। मैंने उन्हें एक कागज पर लिखकर दे दिया एक छोटा सा वचन कि 'अब मुझे क्रोध आ रहा है' और मैंने कहा, इस कागज को अपनी जेब में रखें और जब भी आपको क्रोध आये, निकाल कर कृपा करके इसको पढ़ लें और फिर वापस रख दें। मैंने कहा, इतना तो आप कर ही सकते हैं। यह तो इतना अत्यल्प है कि इससे कम और करने के लिए क्या आपसे प्रार्थना की जाय। मेरे कागज को पढ़ लिया करें और वापस रख लिया करें। उन्होंने कहा हां, यह मैं कोशिश करूंगा।

कोई दो तीन महीने बाद मुझे मिले मैंने पूछा, क्या हिसाब है? उन्होंने कहा, मैं तो हैरान हो गया। इस कागज ने तो मंत्र का काम किया। क्रोध आता और मैं इसको निकालता। निकालता हूं तभी मेरे हाथ पैर ढीले हो जाते हैं। हाथ खीसे में डाला और मुझे ख्याल आया कि क्रोध आ रहा है। कुछ बात ढीली हो जाती है और भीतर से वह पकड़ चली जाती है क्रोध की, वह जो प्राणों को पकड़ लेने की बात है पंजे में वह बात एकदम ढीली पड़ जाती है। हाथ खीसे में गया और उधर हाथ ढीला पड़ा और अब तो पढ़ने की जरूरत भी नहीं पड़ती। क्रोध आने पर ख्याल आता है और वह भीतर खीसे में पड़ी चिट दिखायी पड़ने लगती है।

वह मुझसे पूछने लगे कि इस चिट का ऐसा परिणाम कैसे हुआ? मैंने कहा इसमें कोई भी रहस्य नहीं है। यह तो सीधी सी बात है। चित्त की जो भी विकृतियां हैं, जो भी अराजकताएं हैं, चित्त का जो भी असंतुलन है वह मूर्छा में ही पकड़ता है, होश आया कि वह विलीन हो जाता है।

तो निरीक्षण के दो फल होंगे—ज्ञान विकसित होगा इन सारी शक्तियों का और दूसरा परिणाम होगा कि ये शक्तियां जिस रूप में पकड़ती हैं पागल की तरह उस रूप में इनके पकड़ने की सामर्थ्य क्षीण हो जायगी, शिथिल हो जायेगी और धीरे-धीरे आप पायेंगे कि पहले तो क्रोध आ जाता है तब आप निरीक्षण करते हैं लेकिन धीरे-धीरे आप देखेंगे कि क्रोध आता है और साथ ही निरीक्षण भी आ जाता है। फिर धीरे-धीरे आप पायेंगे कि क्रोध आने को होता है और निरीक्षण आ जाता है और जिस दिन क्रोध के पहले निरीक्षण का बोध आ जाता है उस दिन क्रोध के पैदा होने की कोई संभावना नहीं रह जाती, कोई विकल्प नहीं रह जाता। पश्चात्ताप मूल्य का नहीं है, पूर्व बोध मूल्य का है क्योंकि पश्चात्ताप होता है पीछे और पीछे कुछ भी नहीं किया जा सकता, पीछे रोना-धोना बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि जो हो चुका है उसे

अब अनकिया (undone) करना असंभव है। क्योंकि अतीत की तरफ लौटने की कोई गुंजाइश नहीं, कोई मार्ग नहीं, कोई द्वार नहीं। लेकिन जो नहीं हुआ उसे बदला जा सकता है। पश्चात्ताप का कोई मतलब नहीं है वह बिल्कुल नासमझी से भरा हुआ है। क्रोध किया, वह गलती हो गयी और फिर पश्चात्ताप वह दोहरी गलती हो गयी। व्यर्थ ही आप परेशान हो रहे हैं उसका कोई मूल्य नहीं है। पूर्व बोध तब विकसित होगा जब आप निरीक्षण करें, धीरे-धीरे चित्त की सारी वृत्तियों का निरीक्षण करें।

दमन नहीं, दर्शन यह दूसरा सूत्र हुआ। तीसरा सूत्र है रूपान्तरण (Transformation)। चित्त की प्रत्येक वृत्ति रूपान्तरित होती है, हो सकती है। हर चीज के अनेक रूप हैं। हर चीज अपने से विपरीत रूपों में भी परिवर्तित हो सकती है। ऐसी कोई वृत्ति नहीं है, ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है जो शुभ की दिशा में, मंगल की दिशा में प्रवाहित न की जा सके। स्मरण रखें कि जो चीज अशुभ बन सकती है वह अनिवार्यरूपेण शुभ बन सकती है। जो चीज अमंगल बन सकती है वह अनिवार्यरूपेण मंगल बन सकती है। मंगल और अमंगल, शुभ और अशुभ दिशाएं हैं। सिर्फ दिशा परिवर्तित हो और सारी चीज दूसरी हो जाती है।

एक आदमी दिल्ली से भागा चला जा रहा था और उसने किसी से पूछा कि दिल्ली कितनी दूर है ? उस आदमी ने कहा, अगर सीधे ही भागे चले जाते हो तो सारी पृथ्वी का चक्कर लगेगा तब दिल्ली पहुंच सकते हो, क्योंकि दिल्ली की तरफ आपकी पीठ है। और आप अगर पीछे लौट पड़ते हैं तो दिल्ली से ज्यादा निकट और कोई भी गांव नहीं है। दिल्ली केवल लौटने और पीछे देखने की बात है और आप दिल्ली पहुँच जायेंगे।

वह आदमी भागे जा रहा है जिस दिशा में उस दिशा में पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करे तो ही पहुंच सकता है और लौट पड़े तो

पहुंचा ही हुआ है, अभी और यहीं पहुंच सकता है। हम जिन दिशाओं में बहे जाते हैं उन दिशाओं में ही बहते रहेंगे तो हम कभी भी नहीं पहुंच सकते क्योंकि पृथ्वी छोटी है और चित्त बड़ा है। पृथ्वी की परिक्रमा एक आदमी पूरी तरह भी करले, चित्त की परिक्रमा असम्भव है, वह बहुत बड़ा है, बहुत विराट है, बहुत अनन्त है। पृथ्वी की परिक्रमा पूरी भी हो जायगी एक दिन, वह आदमी वापस दिल्ली आ सकता है लेकिन चित्त और भी बड़ा है पृथ्वी से, उसकी पूरी परिक्रमा बहुत लम्बी है। तो लौटने का बोध, दिशा परिवर्तन का, वापस लौटने का बोध तीसरी बात है। अभी हम जैसे बहे जा रहे हैं, वह गलत बहे जा रहे हैं। गलत का क्या सबूत है ? गलत का सबूत है कि हम जितना बहते हैं उतना खाली होते हैं, जितने बहते हैं उतने दुखी होते हैं। जितने बहते हैं उतने अशांत होते हैं, जितने बहते हैं उतने अधंकार से भरते हैं। तो निश्चित ही हम गलत बहे जा रहे हैं।

आनन्द एक मात्र कसौटी है जीवन की। जिस जीवन में आप बहे जा रहे हैं अगर वहाँ आनन्द उपलब्ध नहीं होता है तो जानना चहिए कि आप गलत बहे जा रहे हैं। दुख गलत होने का प्रमाण है और आनन्द ठीक होने का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त कोई कसौटी नहीं। न किसी शास्त्र में खोजने की जरूरत है, न किसी गुरु से पूछने की जरूरत है। कसने की जरूरत है कि मैं जहाँ बहा जा रहा हूं वहाँ अगर मेरा आनन्द बढ़ता जा रहा है, गहरा होता जा रहा है तो मैं ठीक जा रहा हूं और अगर दुख बढ़ता जा रहा है, पीड़ा बढ़ती जा रही है, चिन्ता बढ़ती जा रही है तो मैं गलत जा रहा हूं। इसमें किसी को मान लेने का भी सवाल नहीं है। अपनी जिन्दगी में खोज कर लेने का सवाल है कि हम रोज दुख की तरफ जाते हैं या रोज आनन्द की तरफ जाते हैं। अगर आप अपने से पूछेंगे तो कठिनाई नहीं होगी। बूढ़े

भी कहते हैं कि हमारा बचपन बहुत आनंदित था। इसका मतलब क्या हुआ कि वह गलत बह गये क्योंकि बचपन तो शुरुआत थी जिन्दगी की ओर, तब वह आनंदित थे और अब वे दुखी हैं। शुरुआत आनंदित थी और अन्त दुख ला रहा है तो जरूर गलत बहे हैं। होना उल्टा चाहिए था। होना यह चाहिए था कि बचपन में जो आनंद था वह रोज-रोज बढ़ता चला जाता। बुढ़ापे में आदमी कहता कि बचपन सबसे दुःख की स्थिति थी क्योंकि वह तो जीवन का प्रारम्भ था, वह तो जीवन की पहली कक्षा थी। अगर एक विद्यार्थी विश्वविद्यालय में पढ़ने जाय और कहे कि पहली कक्षा में ज्यादा ज्ञान था और धीरे-धीरे ज्ञान कम होता जा रहा है तो हम कहेंगे कि तुम पढ़ रहे हो, तुम ज्ञान की तरफ बढ़ रहे हो? हद हैरानी की बात है। पहली कक्षा में अज्ञान ज्यादा था यह समझ में आने वाली बात थी, ज्ञान कम था यह समझ में आने वाली बात थी और अब ज्ञान बढ़ना था, अज्ञान कम होना था। जीवन की पहली कक्षा में लोग कहते हैं कि बहुत सुख था। कवि गीत गाते हैं बचपन बड़ा आनन्दपूर्ण था। पागल हो गये हैं ये कवि! क्योंकि अगर बचपन आनन्दपूर्ण था तो जिन्दगी तुमने गंवायी और जिन्दगी उपलब्ध नहीं की। तो अच्छा था कि तुम बचपन में मर जाते तो तुम सुखी मर जाते। जब तुम व्यर्थ ही दुखी मरोगे। तो धन्यभागी हैं वे जो बचपन में मर गये। जो आदमी जितना जिन्दा रह रहा है उतना आनन्द बढ़ना चाहिए लेकिन हमारा आनन्द घटता है। वे कवि गलत नहीं कहते जीवन के अनुभव की बात कह रहे हैं बेचारे। ठीक ही कह रहे हैं। हमारा आनन्द घटता ही चला जाता है। रोज-रोज हमारा सब घटता जा रहा है जबकि रोज बढ़ना था। तो हम कुछ गलत जाते हैं। हमारी जीवन दिशा कुछ भूल भरे मार्ग पर प्रवाहित होती है। हमारी ऊर्जा कुछ गलत प्रवाहित होती है। इसकी निरन्तर खोजबीन, इसका परीक्षण, इसकी कसौटी मन में साफ होनी

चाहिए। और अगर आपको साफ हो जाय कसौटी और खोज स्पष्ट हो जाय कि मैं गलत बह रहा हूं तो ठीक बहने के लिए दुनिया में आपको कोई बाधा नहीं दे रहा है सिवाय आपके, अतिरिक्त आपके इस जगत में आपको ठीक बहने के लिए कोई भी बाधा नहीं दे रहा है।

दो फकीर एक संध्या अपने झोंपड़े पर पहुंचे। वे चार महीने से बाहर थे और वर्षा आ गयी थी तो अपने झोंपड़े पर वापस लौटे थे। दोनों झोंपड़े के करीब आये तो युवा फकीर एक दम क्रोध से भर गया और दुखी हो गया। वर्षा की हवाओं ने आधे झोंपड़े को उड़ा दिया था, आधा ही बचा था। चार महीने भटक कर आये थे इस आशा में कि वर्षा में अपने झोंपड़े में विश्राम कर सकेंगे, पानी से बच सकेंगे। यह तो मुश्किल हो गयी, झोंपड़ा आधा टूटा हुआ पड़ा था, आधा झोंपड़ा उड़ा हुआ था। उस युवा संन्यासी ने लौट कर अपने बूढ़े संन्यासी से कहा कि यह तो हद हो गयी। इन्हीं बातों से तो भगवान पर शक आ जाता है, संदेह हो जाता है। महल खड़े हैं पापियों के नगर में, उनका कुछ बाल बाँका नहीं हुआ। हम गरीबों की झोंपड़ी का, जो दिन रात उसी की प्रार्थना में समय बिताते हैं, आधा छप्पर टूट गया। इसलिए मुझे शक होता है कि भगवान है भी या कि हम सब गलती में पड़े हैं, पागलपन में पड़े हैं। तो हो सकता है पाप ही असली सचाई हो क्योंकि पापियों के महल खड़े रह जाते हैं और प्रार्थना करने वालों के झोंपड़े उड़ जाते हैं। वह क्रोध से भर गया और निन्दा से भर गया। उसे अपनी सारी प्रार्थनाएँ व्यर्थ मालूम पड़ीं लेकिन वह जो बूढ़ा साथी था वह हाथ आकाश की तरफ जोड़कर खड़ा हो गया और उसकी आंखों से आनंद के आँसू बहने लगे। युवक तो हैरान हुआ। उसने कहा क्या करते हैं आप? उस बूढ़े ने कहा कि मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं क्योंकि आँधियों का क्या भरोसा था, पूरा छप्पर ही उड़ा ले जा

सकती थीं। भगवान ने बीच में कोई बाधा दी होगी इसलिए आधा छप्पर बचा, नहीं तो आँधियों का क्या भरोसा था, पूरा छप्पर भी उड़ सकता था। हम गरीबों का भी उसे ख्याल है तो उसे धन्यवाद दे दें, हमारी प्रार्थनाएं सुनीं, हमारी प्रार्थनाएं व्यर्थ नहीं गयीं, नहीं तो आधा छप्पर बचना भी मुश्किल था।

फिर वे रात दोनों सोये। सोच ही सकते हैं आप दोनों अलग-अलग ढंग से सोये क्योंकि जो क्रोध और गुस्से से भरा था और जिसकी सारी प्रार्थनाएं व्यर्थ हो गयीं वह रात भर करवट बदलता रहा और रात भर उसके मन में न मालूम कैसे-कैसे दुःस्वप्न चलते रहे, चिन्ताएं चलती रहीं। वह चिन्तित था। वर्षा ऊपर खड़ी थी, बादल आकाश में घिर गये थे, आधा छप्पर उड़ा था, आकाश दिखायी पड़ा था। कल वर्षा शुरू होगी, फिर क्या होगा? दूसरा बहुत गहरी नींद सोया क्योंकि जिसके प्राण धन्यवाद से भरे हैं और कृतज्ञता से भरे हैं उसकी निद्रा जैसी सुखद निद्रा और किसकी हो सकती है। वह सुबह उठा और नाचने लगा और उसने एक गीत गाया और उस गीत में उसने कहा कि हे परमात्मा, हमें पता भी न था कि आधे झोंपड़े में इतना आनंद हो सकता है। अगर हमें पहले से पता होता तो हम तेरी हवाओं को कष्ट भी न देते, हम खुद ही आधा छप्पर अलग कर देते। ऐसी आनन्ददायी नींद तो कभी सोया ही नहीं। आधा छप्पर नहीं था तो जब भी रात आँख खुली तो तेरे आकाश के तारे दिखायी पड़े। तेरे घिरते हुए बादल भी दिखायी पड़े। अब तो बड़ा आनन्द रहेगा, वर्षा आने को है, कल से पानी पड़ेगा, हम आधे छप्पर में सोये भी रहेंगे और रात तेरी बूंदों की आवाज, तेरी बूंदों का संगीत भी हमारे पास ही पड़ता रहेगा। हम पागल रहे अब तक। हमने कई बरसातें ऐसे ही पूरे छप्पर के भीतर छिपे हुए बिता दीं। हमें पता ही न था कि आधे छप्पर का भी कोई आनन्द हो सकता है। अगर हमें मालूम होता, हम तेरी आँधियों को तकलीफ भी न देते,

हम खुद ही आधा छप्पर अलग कर देते।

उस दूसरे युवक ने पूछा, मैं यह क्या सुन रहा हूं, यह सब क्या बकवास है, यह क्या पागलपन है? यह तुम क्या कहते हो? तो उस बूढ़े ने कहा मैंने बहुत खोजा और यह अनुभव किया कि जिस बात से दुख बढ़ता है वह जीवन दिशा गलत है और जिस बात से आनन्द बढ़ता हो, वह जीवन दिशा सही है। मैंने भगवान को धन्यवाद दिया, मेरा आनन्द बढ़ा। तुमने भगवान पर क्रोध किया तुम्हारा दुख बढ़ा। तुम रात बेचैन रहे, मैं रात शांति से सोया। अभी मैं गीत गा रहा हूं, तुम क्रोध से जले जा रहे हो। बहुत पहले मुझे समझ में आ गया कि जो आनन्द बढ़ाता है वह जीवन सही है और मैंने अपनी सारी दिशा को उसी तरफ प्रवाहित किया है। मुझे पता नहीं कि भगवान है या नहीं, मुझे पता नहीं, उसने हमारी प्रार्थनाएं सुनी या नहीं लेकिन सबूत है मेरे पास कि मैं आनंदित हूं और नाच रहा हूँ और तुम रो रहे हो और क्रोधित हो रहे हो और परेशान हो। तुम्हारा दुख जैसे जी रहे हो उसके गलत होने का सबूत है।

तो तीसरी बात है निरन्तर इस बात का परीक्षण कि किन दिशाओं में मेरा आनन्द खंडित होता है। किसी से पूछने जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह रोज-रोज की जिन्दगी में, रोज-रोज की कसौटी हमारे पास है। आनन्द की कसौटी है, जैसे पत्थर पर सोने को कसते हैं और जांच लेते हैं कि सोना सही है या गलत और जो गलत है उसे एक तरफ फेंक देते हैं और जो सही है उसे तिजोरी में रख लेते हैं। आनन्द की कसौटी पर रोज-रोज कसते रहें कि क्या है सही और क्या है गलत। जो गलत है वह फिंक जायगा, जो सही है, उसकी सम्पदा धीरे-धीरे इकट्ठी हो जायगी।

अंतिम प्रवचन : समापन

साधना की अंतिम सीढ़ी :
'मैं' से मुक्ति

आज शिविर की अंतिम बैठक है और विदा की इस बैठक में कुछ अन्य सूत्रों पर मुझे आपसे बात करनी है ।

मनुष्य के मस्तिष्क में, मनुष्य की बुद्धि में तीव्र तनाव है और यह तनाव विक्षिप्तता के करीब पहुंच गया है । इस तनाव को शिथिल कर लेना है । ठीक इसके विपरीत मनुष्य के हृदय में बड़ी शिथिलता है, मनुष्य के हृदय के तार बहुत ढीले छूट गये हैं । उन्हें वापस कस लेना है । यह हृदय के तार कैसे कसे जायेंगे, इस संबंध में थोड़े से सूत्र मैंने सुबह कहे । अंतिम सूत्र की बातें अभी करनी हैं ।

मनुष्य के हृदय के तार ही मनुष्य की जीवन वीणा के सबसे बड़े संगीत के स्रोत हैं । जिस जीवन के पास हृदय खो जाता है और जिस मनुष्य के पास और जिस सदी के पास हृदय क्षीण हो जाता है उस सदी और उस युग के पास जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुन्दर है, जो भी सत्य है वह सब विलीन हो जाता है । अगर हम चाहते हैं कि सत्य, सुन्दर और शिव जीवन में प्रविष्ट हो तो बिना हृदय के तारों को वापस संजोये कोई रास्ता नहीं है । हृदय के तार संयोजन की, हृदय के तार ठीक-ठीक अवस्था में लाने की जहां संगीत पैदा हो सके, जो दिशा है उस दिशा का नाम ही प्रेम है । इसलिए मैं प्रेम को प्रार्थना भी कहता हूं, प्रेम को प्रभु प्राप्ति का मार्ग भी कहता हूं, प्रेम को परमात्मा भी कहता हूं । प्रेम के अतिरिक्त जो प्रार्थना है वह झूठी, थोथी और व्यर्थ है । प्रेम के अतिरिक्त प्रार्थना में जो शब्द हैं उनका कोई भी मूल्य नहीं । प्रेम के अतिरिक्त जो परमात्मा की तरफ यात्रा करने को उत्सुक हुआ हो वह कभी भी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकेगा । प्रेम सूत्र है—हृदय की वीणा को संगीतपूर्ण बनाने का । प्रेम के

संबंध में ही कुछ समझ लेना जरूरी है।

पहला भ्रम यह है कि हम सोचते हैं कि हम सब प्रेम को जानते हैं। यह भ्रम इतना घातक है जिसका कोई हिसाब नहीं क्योंकि जो चीज हमें जानी हुई प्रतीत होती है उसकी साधना की तरफ हम कोई प्रयास ही नहीं करते हैं। मनुष्य जाति को बड़े से बड़े जो भ्रम हैं उनमें एक भ्रम यह है कि हम प्रेम को जानते हैं। हर आदमी को यह भ्रम है कि वह प्रेम को जानता है लेकिन हमें यह पता ही नहीं कि जो प्रेम को जान लेगा वह साथ ही परमात्मा को जानने की क्षमता को उपलब्ध हो जाता है। अगर हम प्रेम को जानते हैं तो जीवन में कुछ भी जानने को शेष नहीं रह जाता है लेकिन हमारे जीवन में तो सभी कुछ जानने को शेष है। तो जिस प्रेम को हम प्रेम समझते हैं वह प्रेम ही नहीं होगा, हमने किसी और ही बात को प्रेम समझ लिया होगा। हमने चित्त की किसी और दशा को प्रेम का नाम दे दिया होगा। और जब तक, यह भ्रम न टूट जाय तब तक, जब हमें ख्याल ही है कि हमें उपलब्ध है, तो हम प्रेम की तलाश और खोज कैसे करेंगे? इसलिए पहली बात तो यह ध्यान में लेने की है कि हमें प्रेम का कोई भी पता नहीं है। हम सब प्रेम नहीं करते क्योंकि हमारे भीतर प्रेम की कोई धारा ही नहीं है। और जब हम कहते हैं किसी से कि हम प्रेम करते हैं तो असल में प्रेम नहीं करते हैं, हम उससे प्रेम मांगते हैं। हम सभी प्रेम मांगते हैं और जो खुद ही प्रेम मांग रहा है वह प्रेम कैसे दे सकेगा। भिखमंगा सम्राट कैसे हो सकता है? मांगने वाला देने वाला कैसे हो सकता है? हम सभी एक दूसरे से प्रेम मांगते हैं। हमारे प्राण भिखारी हैं। हम मांगते हैं कि कोई हमें प्रेम दे दे। पत्नी पति से प्रेम मांगती है, पति पत्नी से प्रेम मांगता है। मा बेटे से प्रेम मांगती है, बेटे माँ से प्रेम माँगते हैं। मित्र-मित्र से प्रेम मांगते हैं। हम सब एक-दूसरे से प्रेम माँगते हैं बिना यह जाने कि हम जिससे

प्रेम माँग रहे हैं वह भी हमसे प्रेम माँग रहा है। दो भिखारी एक दूसरे के सामने झोली फैलाये हुए खड़े हैं। जब तक कोई आदमी प्रेम माँगता है तब तक वह प्रेम देने में समर्थ नहीं हो सकता है। प्रेम की माँग इस बात की खबर है कि उसके भीतर प्रेम का झरना नहीं है। अन्यथा वह बाहर से प्रेम क्यों मांगता। प्रेम वही दे सकता है जिसका प्रेम की माँग के ऊपर उठना हो गया है, जो देने में समर्थ हो गया है। प्रेम एक दान है, भिक्षा नहीं। प्रेम एक माँग नहीं है, प्रेम एक भेंट है। प्रेम भिखारी नहीं है, प्रेम सम्राट है। प्रेम सिर्फ देना ही जानता है, माँगना जानता ही नहीं। माँगने वाला प्रेम प्रेम नहीं हो सकता है और स्मरण रहे कि जो प्रेम को माँगता है उसे इस जगत में कभी भी प्रेम नहीं मिल सकेगा। जीवन के कुछ अनिवार्य नियमों में से, शाश्वत नियमों में से एक नियम यह है कि जो प्रेम को माँगता है उसे प्रेम कभी नहीं मिलता है, जो प्रेम बाँटता है उसे प्रेम मिलता है लेकिन उसे प्रेम की कोई माँग नहीं होती। जो प्रेम माँगता है उसे प्रेम मिलता ही नहीं। प्रेम तो उसी द्वार पर आता है जिस द्वार पर प्रेम की माँग मिट जाती है। जो माँगना बन्द कर देता है उसके घर पर वर्षा शुरू हो जाती है और जो माँगता रहता है उसका घर बिना वर्षा के रह जाता है, क्योंकि माँगने वाले चित्त की यह पात्रता नहीं कि प्रेम उसकी तरफ बहे। माँगने वाले चित की यह ग्राहकता (Receptivity) नहीं कि प्रेम उस द्वार पर आये। वह तो देने वाला, बाँट देने वाला चित्त उस ग्राहकता को, पात्रता को उपलब्ध होता है। उस द्वार पर आकर प्रेम दस्तक देता है और कहता है मैं आ गया हूं, द्वार खोलो। हमारे द्वारों पर प्रेम ने आकर कभी दस्तक दी है? नहीं दी, क्योंकि हम कभी प्रेम को देने में ही समर्थ नहीं हो सके हैं। और यह भी स्मरण रहे कि हम जो देते हैं वही हम पर वापस लौट आता है। जीवन के दूसरे शाश्वत नियमों में से एक यह है कि हम जो देते हैं वही वापस हम पर लौट

आता है। सारा जगत एक प्रतिध्वनि से ज्यादा नहीं है। हम घृणा देते हैं, घृणा वापस लौट आती है, हम क्रोध देते हैं, क्रोध वापस लौट आता है। हम गालियाँ देते हैं, गालियाँ वापस लौट आती हैं। हम काँटे फेंकते हैं, काँटे वापस लौट आते हैं। हमें वही उपलब्ध हो जाता है जो हमने फेंका था, वही अनन्तगुना होकर वापस लौट आता है। अगर हम प्रेम बाँटते हैं तो प्रेम भी अनन्तगुना होकर वापस लौट आयेगा। अगर नहीं लौटा तो जान लेना कि प्रेम हमने बाँटा नहीं और प्रेम हम बाँटते भी कैसे? प्रेम हमारे पास है ही नहीं और प्रेम हमारे पास होता तो हम प्रेम को द्वार-द्वार माँगते हुए क्यों फिरते? हम जगह-जगह भिखारी क्यों बनते, हम क्यों माँगते कि हमको प्रेम चाहिए?

एक फकीर था फरीद। उसके गाँव के लोगों ने उससे कहा, 'फरीद, अकबर तुझे बहुत आदर देता है। अकबर से प्रार्थना करके एक स्कूल, एक मदरसा खुलवा दे।' फरीद ने कहा, 'मैंने आज तक किसी से कुछ माँगा नहीं। मैं तो फकीर हूं, सिर्फ देना ही जानता हूं।' गाँव के लोग बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा हम तो जानते हैं कि फकीर माँगता है, क्यों कहते हो फकीर देना ही जानता है? खैर जो भी हो यह सूक्ष्म और गम्भीर बातें हम नहीं समझ सकते। तुम तो हम पर कृपा करो और एक मदरसा खुलवा दो।

गाँव के लोग नहीं माने तो फरीद अकबर से मिलने गया। सुबह ही सुबह जल्दी पहुंच गया था ताकि घर ही मिलना हो जाय। अकबर उस समय अपनी मस्जिद में नमाज पढ़ रहा था। फरीद उसके पीछे जाकर खड़ा हो गया। अकबर की नमाज पूरी हो गयी, प्रार्थना पूरी हो गयी। उसने दोनों हाथ ऊपर उठाये और कहा, 'हे परमात्मा! मेरे धन को बढ़ा, मेरी सम्पत्ति को बढ़ा। मेरे राज्य को बढ़ा।' फरीद वापस लौट पड़ा। अकबर उठा, देखा, फरीद वापस लौटता है। भागा, रास्ते पर रोका और कहा, कैसे आये और कैसे

लौट चले? फरीद ने कहा, मैंने सोचा था तू एक सम्राट है। पर पाया कि तू भी एक भिखारी है। हमने सोचा था कि हम गाँव के लिए एक मदरसा माँग लेंगे। हमें पता भी नहीं था कि अभी तू भी माँगता है कि धन और बढ़ जाय, सम्पत्ति और बढ़ जाय। एक भिखारी से माँगना तो शोभा योग्य नहीं है। हमने सोचा था कि तू एक सम्राट है और पाया कि तू भी एक भिखारी है तो हम वापस लौट जाते हैं।

हम सभी भिखारी हैं और हम सभी भिखारियों से माँगे चले जा रहे हैं, वह जो उनके पास नहीं है। और जब हमें नहीं मिलता है तो हम रोते हैं, चिल्लाते हैं और दुखी होते हैं और कहते हैं कि हमें प्रम नहीं मिल रहा है। प्रेम कहीं बाहर से मिलने वाली बात नहीं है। प्रेम तो भीतर के अंतस जीवन का संगीत है। कोई प्रेम आपको दे नहीं सकता। प्रेम आपमें जन्म ले सकता है लेकिन बाहर से आपको मिल नहीं सकता है। न कहीं कोई दूकान है, न कोई बाजार है, न कहीं कोई बेचने वाला है जहाँ से आप प्रेम खरीद लें। किसी भी मूल्य पर प्रेम नहीं खरीदा जा सकता। प्रेम तो अन्तस्स्फुरण है। वह तो भीतर कोई सोई हुई शक्ति का जाग जाना है और हम सब प्रेम को बाहर खोजते हैं। हम सब प्रेम को प्रेमी में खोजते हैं जो कि बिल्कुल झूठी और फजूल बात है। प्रेम को खोजना है अपने में और हमारी तो कल्पना में भी नहीं आ सकता है कि स्वयं के भीतर प्रेम कैसे होगा क्योंकि प्रेम हमें हमेशा प्रेमी का ख्याल दिलाता है, किसी और का ख्याल दिलाता है लेकिन हमारे भीतर कैसे प्रेम पैदा होगा यह हमें स्मरण में भी नहीं है इसलिए हमारे भीतर कोई शक्ति प्रेम की पड़ी ही रह जाती है। हम बाहर माँगते रहते हैं उसे जोकि हमारे भीतर था और चूंकि हम बाहर माँगते रहते हैं इसलिए भीतर दृष्टि नहीं जाती और भीतर जिसका जन्म हो सकता था उसका जन्म नहीं हो पाता है।

प्रेम प्रत्येक मनुष्य की अनिवार्य सम्पदा है जो जन्म के साथ ही लेकर हर आदमी पैदा होता है। धन आदमी साथ लेकर पैदा नहीं होता। धन सामाजिक सम्पदा है लेकिन प्रेम आदमी साथ लेकर पैदा होता है। वह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है; वह उसकी निजी संपदा है, वह उसके साथ है, वह उसका पाथेय है जो जन्म के साथ उसे मिला और जीवन भर उसका साथ दे सकता है। लेकिन बहुत कम सौभाग्यशाली हैं जो देखते हैं कि भीतर प्रेम कहाँ है और कैसे उसे खोजा जाय। हमारी सम्पदा की कोठरी बंधी रह जाती है, वह खुल ही नहीं पाती है और हम दूसरे के द्वारों पर भीख माँगते फिरते हैं, हाथ फैलाये फिरते हैं कि हमें प्रेम चाहिए। सारी दुनिया में एक ही मांग है कि हमें प्रेम चाहिए और सारी दुनिया में एक ही शिकायत है कि हमें प्रेम नहीं मिल रहा है। जब प्रेम नहीं मिलता है तो हम दोष देते हैं दूसरों को कि लोग बुरे हैं इसलिए प्रेम नहीं मिलता। पत्नी पति को कहती है कि तुम गड़बड़ हो कि प्रेम मुझे नहीं मिलता है। पति पत्नी को कहता है कि इसमें कुछ भूल है कि मुझे प्रेम नहीं मिल पाता। हरएक एक-दूसरे को दोषी ठहराता है कि मुझे प्रेम नहीं मिल पाता और इसका ख्याल ही नहीं है कि प्रेम कभी किसी को बाहर से मिलता ही नहीं। प्रेम आंतरिक सम्पदा है और प्रेम ही हृदय वीणा का संगीत है। लेकिन उससे वह संगीत पैदा ही नहीं हो पाता। कौन-सी बाधा इस संगीत के पैदा होने में खड़ी हो गयी है और कौन सी गाँठ है जो कोठरी को बाँधे है और खुलने नहीं देती? कभी उस गाँठ पर आपने ख्याल किया? कभी आपने सोचा कि वह गाँठ क्या हो सकती है?

एक अभिनेता मर गया था। वह एक बहुत कुशल अभिनेता था, कुशल कवि था, नाटककार था। उसकी मृत्यु हो गई थी। मरघट पर उसे विदा करने बहुत लोग इकट्ठे हुए थे। जिस फिल्म कम्पनी में वह अभिनेता था उसका मालिक भी आया था। उस मालिक ने उस

अभिनेता के शोक में, दुख में बोलते हुए कुछ बातें कहीं। उस मालिक ने कहा,—'इस अभिनेता को अभिनेता बनाने वाला मैं हूँ। यह मैं ही था जिसने इसे अंधकारपूर्ण गलियों से निकालकर प्रकाशित राजपथ पर पहुँचाया। यह मैं ही था कि जिसने सबसे पहले इसे नाटक में जगह दी थी। मैं ही था जिसने इसकी पहली किताब प्रकाशित करवाई। मैं ही था जिसके कारण यह सारी दुनियाँ में ख्याति उपलब्ध कर पाया।' वह इतना ही कह पाया था। मैं भी उस मरघट पर मौजूद था, हो सकता है आप में से कोई मौजूद रहा हो। इतना ही वह कह पाया था कि वह मुर्दा जो बँधा हुआ पड़ा था एकदम उठकर बैठ गया और उसने कहा, 'माफ करिये, इबर कब्र में किसको गड़ाया जाने वाला है, आपको या मुझको (Excuse me sir, who is to be buried here, you or I?) आप किसके सम्बन्ध में भाषण कर रहे हैं? वह मालिक कहे चला जा रहा था कि मैं ही हूँ जिसने इसे प्रकाश में लाया, मैं ही हूँ जिसने इसकी किताब छपवायी, मैं ही हूँ जिसने इसको नाटक में पहली जगह दी, मैं ही हूँ।

मुर्दा भी बरदाश्त नहीं कर सका इस 'मैं' के शोरगुल को। वह उठ आया और कहा कि माफ करिये, एक बात बता दीजिये कि कब्र में किसको दफनाया जाना है, मुझको या आपको? आप किसके सम्बन्ध में बोल रहे हैं? मुर्दा भी बरदाश्त नहीं कर पाते इस 'मैं' के शोर को और हम जिन्दा आदमी इस 'मैं' के स्वर को गुंजाये चले जाते हैं तो जिन्दा आदमी कैसे बरदाश्त कर सकता है। आदमी के भीतर दो ही स्वर होते हैं। जिस आदमी के भीतर 'मैं' का स्वर होता है उसके अन्दर प्रेम का स्वर नहीं होता है और जिस आदमी के भीतर प्रेम का स्वर होता है उसके भीतर 'मैं' का स्वर नहीं होता है। ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते। ये असंभावना है। यह वैसी ही असम्भावना है जैसे एक बार अंधकार ने जाकर भगवान

से यह प्रार्थना की कि सूरज मेरे पीछे पड़ा हुआ है, मुझे परेशान कर रहा है। सुबह से मेरा पीछा करता है, सांझ तक मुझे थका डालता है। रात में सोकर विश्राम भी नहीं कर पाता कि दूसरे दिन फिर सुबह मेरे पीछे पड़ जाता है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने कभी कोई कसूर किया हो, कोई भूल चूक की हो, कोई किसी को नाराज किया हो। यह उपद्रव क्यों है, मेरे पीछे क्यों पड़ा हुआ है, मैंने क्या बिगाड़ा है? भगवान ने सूरज को बुलाया और कहा कि तुम बेचारे अंधकार के पीछे क्यों पड़े हो? वह वैसे ही छिपता फिरता है, जगह-जगह शरण लेता फिरता है और तुम उसका पीछा करते हो चौबीस घंटे। सूरज ने कहा, कौन अंधकार? मेरा तो आज तक उससे मिलना भी नहीं हुआ। मैं उसे पहचानता भी नहीं हूँ। कौन अंधकार? कैसा अंधकार? मैंने उसे अबतक देखा नहीं, मेरी कोई मुलाकात नहीं लेकिन अगर भूल चूक हो गई हो अनजाने तो आप उसे मेरे सामने बुला दें ताकि मैं क्षमा माँग लूँ। मैं क्षमा माँगने को बिल्कुल तैयार हूँ, पहचान लूँ तो फिर दोबारा उसका पीछा भी न करूँ। सुनते हैं इस बात को हजारों अरबों साल हो गये। भगवान की फाइल में बात वहीं पडी है। अभी तक भगवान अंधकार को सूरज के सामने ला नहीं सके और आगे भी न ला सकेंगे यह मैं कहे देता हूँ। वह कितने ही सर्वशक्तिशाली हों मगर अंधकार को सूरज के सामने लाने की शक्ति उनमें भी नहीं है। क्योंकि अंधकार और सूरज एक साथ खड़े नहीं हो सकते।

नहीं खड़े हो सकते तो कुछ कारण है। कारण यह है कि अंधकार की अपनी कोई सत्ता नहीं है कि सूरज के सामने खड़ा हो जाय। अंधकार तो केवल सूरज की अनुपस्थिति है, तो एक ही चीज मौजूद और गैर मौजूद एक ही साथ कैसे हो सकती है? अंधकार तो केवल अनुपस्थिति है सूरज की। अंधकार अपने आप में कुछ भी नहीं है। वह केवल सूरज का न होना है, वह केवल प्रकाश का न

होना है। तो प्रकाश के सामने प्रकाश का न होना कैसे खड़ा हो सकता है? ये दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं? इसलिए भगवान् भी समर्थ नहीं हो सकेगा। इसी भाँति अहंकार और प्रेम भी एक साथ नहीं हो सकते। अहंकार भी अंधकार की भाँति है। वह प्रेम की अनुपस्थिति है, वह प्रेम की गैर मौजूदगी है। वह प्रेम की मौजूदगी नहीं है। हमारे भीतर प्रेम अनुपस्थित है इसलिए हमारे भीतर 'मैं' का स्वर बजता चला जाता है और हम इस 'मैं' के स्वर को उठाकर कहते हैं कि मैं प्रेम करना चाहता हूं, मैं प्रेम देना चाहता हूं, मैं प्रेम पाना चाहता हूं। आप पागल हो गये हैं। 'मैं' का और प्रेम का संबंध न कभी हुआ है और न कभी हो सकता है और यही मैं प्रेम की आवाज किये चला जाता है कि मैं प्रार्थना करना चाहता हूं, 'मैं' परमात्मा को पाना चाहता हूं, 'मैं' मोक्ष जाना चाहता हूं। यह वैसी ही बातें हैं जैसे अंधकार कहे कि 'मैं' सूरज से गले मिलना चाहता हूं, मुझे सूरज का आलिंगन करना है। मुझे सूरज से प्रेम करना है। मुझे तो सूरज के घर में मेहमान बनना है। अंधकार जैसी ही 'मैं' की ये बातें हैं कि मुझे प्रेम करना है, मुझे प्रार्थना करनी है, मुझे परमात्मा से मिलना है। 'मैं' के लिए यह द्वार नहीं है क्यों कि 'मैं' प्रेम की ही अनुपस्थिति है। 'मैं' प्रेम का ही अभाव है और जितना ही हम 'मैं' का स्वर मजबूत करते चले जायेंगे उतना ही हमारे भीतर प्रेम की संभावना क्षीण होती चली जायगी। अहंकार जितना होगा उतना ही प्रेम नहीं होगा। अहंकार पूरा हो जायगा, प्रेम की पूरी तरह मृत्यु हो जायगी।

हमारे भीतर कोई प्रेम नहीं हो सकता है क्योंकि हम खोजेंगे तो पायेंगे कि हमारे भीतर 'मैं' का स्वर चौबीस घंटे बज रहा है। हम साँस लेते हैं तो 'मैं' के साथ, हम पानी पीते हैं तो 'मैं' के साथ। हम रास्ते पर चलते हैं तो 'मैं' के साथ, हम मंदिर में प्रवेश करते हैं तो 'मैं' साथ, मैं के अतिरिक्त हमारे जीवन में और क्या है? हमारे वस्त्र हमारे 'मैं' के

वस्त्र हैं, हमारे पद हमारे 'मैं' के पद हैं। हमारा ज्ञान, हमारे 'मैं' का ज्ञान है। हमारी तपश्चर्या, हमारी सेवा, हमारे मैं की सेवा है। हमारा सब कुछ, हमारा संन्यास भी हमारे मैं का संन्यास है। 'मैं' संन्यासी हूं, ऐसा स्वर भीतर तीव्रता से उठता रहता है। 'मैं' कोई गृहस्थ नही हूं, मैं कोई साधारण जन नहीं हूं, मैं संन्यासी हूं, मैं सेवक हूं, मैं ज्ञानी हूं, मैं धनी हूं, मैं यह हूं मैं वह हूं। लेकिन यह जो मैं के आस पास खड़ा किया हुआ भवन है यह प्रेम से अपरिचित रह जायगा और तब हृदय की वीणा पर वह संगीत पैदा नहीं हो सकेगा जो प्राणों को प्राणों के पास ले जाय, जो प्राण के केन्द्र में ले जाय, जो जीवन के मध्य में ले जाय, जो जीवन के सत्य से परिचित करा दे, वह द्वार ही नहीं खुलेगा, वह द्वार बन्द ही रह जायगा। इसलिए यह बात केन्द्रीय रूप से समझ लेने की है कि आपका 'मैं' कितना बजनी है, कितना गहरा है? और कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप उसको और वजन दिये जाते हैं। और गहरा किये जाते हैं, रोज रोज उसको मजबूत किये जाते हैं? अगर आप उसको मजबूत किये चले जा रहे हैं अपने ही हाथों से तो फिर आप यह आशा छोड़ दें कि आपके भीतर प्रेम का आविर्भाव हो सकता है, कि वह प्रेम की बन्द गांठ खुल सकती है, और प्रेम की सम्पदा उपलब्ध हो सकती है। फिर यह ख्याल छोड़ दें। इसमें कोई उपाय नहीं। इसलिए मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप प्रेम करने लग जाये क्योंकि अहंकार यह भी कह सकता है कि मैं प्रेमी हूं और 'मैं' प्रेम करता हूं। और अहंकार के नीचे जो प्रेम है वह एकदम झूठा है इसलिए मैंने कहा कि हमारा सारा प्रेम झूठा है क्योंकि वह अहंकार के नीचे है और अहंकार की छाया है। स्मरण रहे कि अहंकार के अंतर्गत जो प्रेम है वह घृणा से भी खतरनाक है क्योंकि घृणा स्पष्ट और सीधी और साफ है और प्रेम शक्ल बदल कर आया हुआ है। उसे पहचानना मुश्किल हो जायगा। अहंकार के नीचे जो प्रेम से आपको अपनी छाती से लगाता है

आप थोड़ी देर में ही पायेंगे कि वह साथ नहीं था, वह लोहे की जंजीरें थीं जिन्होंने आपके प्राणों को जकड लिया था। अहंकार के नीचे जो प्रेम से आपको अच्छी बातें कहता है और मधुर वचन कहता है और गीत गाता है, थोड़ी देर में ही आपको पता चलेगा कि गीत केवल प्रारंभिक प्रलोभन था गीतों के भीतर बहुत जहर था। और जो प्रेम फूलों की शकल लेकर आता है अहंकार की छाया में, फूल को पकड़ते ही आपको पता चल जायगा कि भीतर बड़े कांटे थे जिन्होंने आपको वेध दिया है।

मछलियां पकड़ने लोग जाते हैं और कांटे के ऊपर आटा लगाकर मछलियां पकड़ते हैं। और अहंकार मालिक बनना चाहता है दूसरे लोगों का, तब वह प्रेम का आटा लगाकर गहरे कांटे से लोगों को छेद लेता है। प्रेम के धोखे में जितने लोग दुख और पीड़ा पाते हैं उतने लोग किसी नर्क में भी पीड़ा और दुख नहीं पाते। प्रेम के इस धोखे में सारी पृथ्वी और सारे मनुष्य की जाति नर्क भोगती है लेकिन फिर भी यह ख्याल नहीं आता है कि अहंकार के नीचे प्रेम झूठा है इसलिए यह सारा नर्क पैदा हुआ है। अहंकार जिस प्रेम में जुड़ा है वह प्रेम ईर्ष्या का ही एक रूप है और इसलिए प्रेमी जितने ईर्ष्यालु (Jealous) होते हैं उतना कोई भी ईर्ष्यालु नहीं होता। अहंकार से जो प्रेम जुड़ा है वह घृणा की, दूसरे के मालिक बन जाने की तरकीब और साज़िश है; इसलिए प्रेम की बातें करने वाले लोग जितनी लोगों की गर्दन कस लेते हैं उतना और कोई नहीं कसता। यह सारी स्थिति अहंकार के नीचे प्रेम के कारण पैदा होती है और अहंकार के साथ प्रेम का कभी भी कोई संबंध नहीं हो सकता।

जलालुद्दीन एक बहुत प्यारा गीत गाता था। वह गांव-गांव जाता और उस गीत को जरूर दोहराता और जब भी लोग कहते कि परमात्मा के संबंध में हमें बताओ तो वह उसी गीत को गाने

लगता। उस गीत में एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर गया और जाकर द्वार की सांकल खटखटायी। प्रेयसी ने पूछा कौन हो तुम? 'प्रेमी ने कहा, जैसे सभी प्रेमी कहते हैं कि मैं हूं तेरा प्रेमी, भीतर फिर सन्नाटा हो गया। फिर उत्तर न आया। भीतर से फिर कोई आवाज नहीं आयी। वह प्रेमी जोर से दरवाजा खट-खटाने लगा लेकिन भीतर जैसे कोई था ही नहीं। वह जोर से चिल्लाने लगा कि भीतर सन्नाटा क्यों हो गया? उत्तर दो, मैं तुम्हारा प्रेमी आया हूं। लेकिन जितने जोर से वह कहने लगा कि मैं तुम्हारा प्रेमी आया हूं वह घर उतना ही मरघट जैसे सन्नाटा से भर गया। वहां से कोई भी उत्तर न आया। तब उसने सिर पीटा और कहा, एक बार तो उत्तर दो। भीतर से एक ही उत्तर आया कि इस घर में दो के लिए जगह नहीं है। प्रेम का द्वार केवल उनके लिए खुलता है जो 'मैं' को छोड़ आये होते हैं। तो अभी तुम जाओ, आना फिर कभी। वह प्रेमी वापस लौट गया और वर्षों उसने तपश्चर्या की और वर्षों उसने साधना की और प्रार्थना की। कितने ही चांद बड़े हुए और छोटे हुए और कितने ही सूरज निकले और ढले और कितने वर्ष बीते और फिर वह वापस लौट आया उस द्वार पर, और उसने आकर द्वार पर फिर दस्तक दी। फिर वही प्रश्न कोई पीछे से पूछने लगा, "कौन हो तुम?" इस बार उस प्रेमी ने कहा, 'तू ही है।'

जलालुद्दीन कहता था कि द्वार खुल गये लेकिन मेरा मन द्वार खुलवाने को अभी राजी नहीं होता। जलालुद्दीन से मिले बहुत वर्ष हो गये इसलिए उसको कहने का कोई रास्ता नहीं है कि द्वार अभी नहीं खुल सकता है, द्वार जरा जल्दी खुलवा दिये क्योंकि जो कहता है कि 'तू ही है' उसे अपने 'मैं' के होने का पूरा पता है। जिसे 'मैं' का पता नहीं रह जाता है उसे 'तू' का भी पता नहीं रह जाता। गलत है यह बात कि प्रेम में एक ही समाता है। प्रेम में दो

तो समाते ही नहीं लेकिन गलत है यह बात कि प्रेम में एक ही समाता है। प्रेम में न तो दो रह जाते हैं, न एक रह जाता है। क्योंकि जहां एक है, जान लेना दूसरा भी मौजूद है। एक का बोध दूसरे से ही हो सकता है। जहां 'तू' मौजूद है वहां 'मैं' भी मौजूद है। तो 'मैं' अभी वापस लौटा देता हूं उस प्रेमी को। उसने कहा 'तू ही है, मैं नहीं हूं।' लेकिन जो यह कहता है कि मैं नहीं हूं, तू ही तू है, वह जानता है कि वह है, इस तरह से है। वह केवल तरकीब सीख कर आ गया है। पहली दफा उसने देख लिया कि 'मैं हूं' कहने पर द्वार बन्द रह गये। इतने वर्षों में वह सोच विचार के आ गया कि मुझे क्या कहना चाहिए। मुझे कहना चाहिए कि मैं नहीं हूं, तू ही है। लेकिन कौन कहेगा यह और किसलिए कहेगा? ख्याल में रहे कि 'तू' जहाँ है वहां 'मैं' की छाया है। जिसका 'मैं' मिट जाता है उसके लिए 'तू' भी शेष नहीं रह जाता है।

तो 'मैं' तो उसे वापस लौटा देता हूं। फिर उस प्रेयसी ने कह दिया, यहाँ कोई जगह नहीं दो के लिए। वह चिल्लाने लगा और कहने लगा कि अब दो कहाँ? अब तो मैं हूं ही नहीं, तू ही है। लेकिन वह प्रेयसी कहने लगी, तुम वापस लौट जाओ, तुम तरकीब सीख कर आ गये हो लेकिन अभी दो मौजूद हैं। अगर दो मौजूद न होते तो द्वार खुलवाने की तुम कोशिश भी नहीं करते क्योंकि फिर कौन द्वार खुलवाता और किस के द्वार खुलवाता? तुम वापस लौट जाओ, प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते। और वह प्रेमी वापस लौट गया और फिर वर्ष आये और गये लेकिन वह लौट कर नहीं आया, फिर वह कभी लौटा ही नहीं। फिर तो उसकी प्रेयसी ही उसे खोजती हुई उसके पास पहुंच गयी।

जिस दिन हमारे 'मैं' की छाया विलीन हो जाती है और जिस दिन न तो 'मैं' बचता है, न तो 'तू' बचता है, उस दिन आपको परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता, परमात्मा ही आपको खोजता चला

जाता है। आज तक कोई मनुष्य परमात्मा को नहीं खोज सका क्योंकि मनुष्य की यह सामर्थ्य कहाँ कि परमात्मा को खोज ले? लेकिन जब कोई मनुष्य मिटने को राजी हो गया हो, न हो जाने को राजी हो गया हो, शून्य हो जाने को राजी हो गया हो तो परमात्मा उसे जरूर खोज लेता है। परमात्मा ही खोजता है, मनुष्य कभी परमात्मा को नहीं खोज पाता है क्योंकि खोजने में भी अहंकार मौजूद रहता है कि मैं खोज रहा हूं, मुझे ईश्वर को पाना है। 'मैंने धन पा लिया, मैंने पार्लियामेंट में जगह पा ली, मैंने बड़ा मकान बना लिया, अब आखिरी एक मंजिल और रह गयी कि मुझे ईश्वर को भी पाना है। मैं क्या ऐसा कर सकता हूं कि बिना ईश्वर को पाये छोड़ दूं। यह मेरी आखिरी विजय का मामला है। यह विजय करनी ही है। मुझे ईश्वर को भी पाना है'। यह अहंकार की ही घोषणा और आग्रह और खोज है। इसलिए धार्मिक आदमी वह नहीं है जो ईश्वर को खोजने निकल जाता है, धार्मिक आदमी वह है जो अपने 'मैं' को खोजने निकलता है और जितना ही खोजने जाता है, पाता है, 'मैं' तो है ही नहीं। और जिस दिन 'मैं' नहीं रह जाता है उस दिन वह गांठ खुल जाती है जो प्रेम को बाँधे हुए है।

तो अन्तिम बात है, अपने 'मैं' को खोजने चले जाइए, आत्मा को खोजने नहीं, क्योंकि आत्मा का आपको कोई पता नहीं। परमात्मा को खोजने नहीं क्योंकि परमात्मा की आपको दूर की खबर नहीं। जिसकी खबर ही नहीं है उसे खोजियेगा कैसे? जिसका कोई पता ही नहीं मालूम उसे ढूंढ़ियेगा कहाँ? जिसका कोई और छोर नहीं, कोई पता ठिकाना नहीं, निवास की खबर नहीं उसे खोजियेगा कहाँ? लेकिन हाँ, एक बात का हमें पता है। अपने इस 'मैं' का पता है। तो सबसे पहले इस 'मैं' को ही खोज लेना चाहिए कि क्या है और कहाँ है और कौन है। और जैसे ही इसे खोजने जायेंगे वैसे ही आप हैरान हो जायेंगे कि यह 'मैं' तो है

ही नहीं। वह तो बिल्कुल ही झूठी खबर थी, यह तो मेरी ही कल्पना थी। मैं सोचता था कि 'मैं' भी हूं,' यह तो मेरा ही पाला-पोसा भ्रम था।

छोटे बच्चे पैदा होते हैं, काम चलाने के लिए हम उनका नाम रख लेते हैं। किसी को कहते हैं राम, किसी को कहते हैं कृष्ण, किसी को कुछ और। किसी का कोई नाम नहीं होता, काम चलाऊ नाम रख लेते हैं लेकिन बाद में निरन्तर सुनते-सुनते आदमी को यह भ्रम हो जाता है कि यह मेरा नाम है, मैं राम हूं, मैं कृष्ण हूं। और अगर राम को गाली दे दें तो लड़ने को खड़ा हो जायगा कि आपने मुझे गाली दे दी। कहाँ से ले आया वह नाम। कोई जन्म के साथ नाम लेकर पैदा नहीं होता। हर आदमी अनाम पैदा होता है लेकिन नाम की एक सामाजिक उपादेयता (Social utility) है, उपयोगिता है। बिना नाम के चिट लगानी और लेबल लगानी मुश्किल है इसलिए नाम रख लेते हैं। दूसरों को पुकारने के लिए नाम रख लेते हैं। वह सामाजिक उपयोगिता है और खुद को अगर बार-बार नाम लेकर पुकारें तो बड़ा भ्रम पैदा होगा कि हम खुद को पुकार रहे हैं कि किसी और को, इसलिए खुद को पुकारने के लिए 'मैं' एक नाम है, संज्ञा है। और नाम दूसरों को पुकारने के लिए संज्ञा हैं, 'मैं' खुद को पुकारने के लिए एक संज्ञा है। दोनों ही संज्ञाएं कल्पित हैं और इन्हीं दो संज्ञाओं के आस पास हम सारे जीवन के भवन को खड़ा कर लेते हैं जो केवल दो कोरे शब्द हैं और कुछ भी नहीं है। जिनके पीछे कोई सत्य नहीं, जिनके पीछे कोई वस्तु नहीं, सिर्फ नाम, सिर्फ संज्ञाएं।

एक दफा ऐसी भूल हो गयी। एक छोटी भी लड़की थी एलाइस। वह भटकती-भटकती परियों के देश पहुंच गयी। जब वह परियों की रानी के पास पहुंची तो रानी ने उस एलाइस से पूछा—एक छोटा सा प्रश्न पूछा:—"तुम्हें कोई मिला रास्ते में मेरी तरफ आते हुये?

(Did you meet somebody on the way towards me ?)
एलाइस ने कहा, कोई नहीं (Nobody) लेकिन रानी समझी कि नोबडी नाम का कोई आदमी इसको मिला। और भ्रम मजबूत हो गया क्योंकि फिर रानी का डाकिया, चिट्ठी पत्री लाने वाला संदेश-वाहक भी आया और रानी ने उससे भी पूछा। उसने भी कहा कोई नहीं (Nobody) मिला। रानी ने कहा बड़ी अजीब बात है। क्योंकि रानी समझी कि नोबडी नाम का कोई आदमी एलाइस को भी मिला, और इसको भी मिला। तो उसने अपने मेसेंजर से कहा कि "इसका मतलब है कि 'कोई नहीं' तुमसे बहुत धीमें चलता है' (It seems No body walks slower than you)। लेकिन उस वाक्य के दो अर्थ हो गये। उसका एक अर्थ हुआ कि तुमसे धीमा कोई नहीं चलता। वह मेसेंजर डरा क्योंकि संदेशवाहक की तो खूबी यही होनी चाहिए कि वह तेज चलता है। तो उसने कहा कि 'उससे तेज तो कोई नहीं चलता है' (Nobody walks faster than me) रानी ने कहा, 'बड़ी मुश्किल हो गयी। तुम कहते हो, नोबडी तुमसे तेज चलता है तो उसको अब तक आ जाना चाहिए था अगर वह तुमसे तेज चलता था।' अब उस मेसेंजर को ख्याल आया कि कुछ गलती हो गयी है। उसने कहा, कोई नहीं, कोई नहीं है (Nobody is Nobody) रानी बोली, 'यह भी कोई समझाने की बात है। मैं जानती हूं कि 'कोई नहीं' कोई नहीं ही है लेकिन उसको अब तक आ जाना चाहिए था। वह है कहाँ ?

आदमी के साथ ऐसी ही भाषा की भूल हो जाती है। सब नाम नोबडी हैं। किसी नाम का इससे ज्यादा मतलब नहीं है। सब 'मैं' का ख्याल नोबडी है, इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है। लेकिन भाषा की भूल से ऐसा ख्याल पैदा होता है कि मैं कुछ हूं। मेरा नाम कुछ है। आदमी पत्थरों पर लिख जाता है नाम कि शायद पत्थर बच जायेंगे पीछे, लेकिन पता नहीं हमें कि जितनी रेत बन गयी है

समुद्रों के किनारे, वह सब भी कभी पत्थर थी। सब पत्थर रेत साबित होते हैं। रेत पर लिख दो नाम या पत्थर पर लिख दो नाम, एक ही बात है। दुनिया की इस लम्बी कथा में रेत और पत्थर में कोई फर्क नहीं। समुद्र के किनारे बच्चे लिख आते हैं रेत पर अपने नाम। सोचते होंगे, कल लोग निकलेंगे और देखेंगे। लेकिन समुद्र की लहरें आती हैं और रेत को पोत जाती हैं। बूढ़े हंसते हैं, 'अरे पागल हो ! रेत पर लिखे नाम का कोई मतलब नहीं।' लेकिन बूढ़े पत्थरों पर लिखते हैं और उनको पता नहीं कि सब रेत पत्थर से बनती है। बूढ़ों और बच्चों में कोई फर्क नहीं। बेवकूफी में सब बराबर एक ही उम्र के हैं।

एक सम्राट चक्रवर्ती हो गया। चक्रवर्ती का मतलब कि वह सारी पृथ्वी का मालिक हो गया था। ऐसा मुश्किल से कभी होता है। चक्रवर्तियों को एक विशेषता उपलब्ध होती थी जो किसी को उपलब्ध नहीं होती है। कथा है पुरानी। चक्रवर्तियों को एक सौभाग्य मिलता था जो किसी को नहीं मिलता था और वह यह था कि सुमेरु पर्वत पर, स्वर्ग में जो पर्वत है, उस पर्वत पर उनको हस्ताक्षर करने का मौका मिलता था। यह मौका सबको नहीं मिलता था। कभी कोई चक्रवर्ती होता है अनन्त काल में कि सारी पृथ्वी को जीत लेता है तब उसे सुमेरु पर्वत पर हस्ताक्षर करने का मौका मिलता है। वह जो सुमेरु पर्वत है, वह सबसे अडिग चट्टान है सारे जगत की। एक व्यक्ति चक्रवर्ती हो गया, वह बहुत खुश हुआ। यह सौभाग्य उसको मिला कि अब वह सुमेरु पर्वत पर जाकर हस्ताक्षर करेगा। वह बड़े ठाट बाट से फौज फाँटे लेकर स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया। द्वारपाल ने उससे कहा कि आप आगये ? लेकिन यह भीड़ भाड़ भीतर नहीं जा सकेगी। आपको अकेले ही जाना पड़ेगा और साथ में आप कुछ हथौड़ी वगैरह नाम खोदने के लिए कोई सामान ले आये हैं ? उसने कहा, 'मैं सामान ले आया हूं।' तो द्वारपाल ने कहा कि पहले तो आपको यह करना पड़ेगा, सुमेरु पर्वत अनन्त पर्वत है लेकिन इतने

चक्रवर्ती हो गये कि अब उस पर दस्तखत करने की जगह नहीं बची। तो आपको पहले किसी का नाम मिटाना पड़ेगा फिर दस्तखत करने पड़ेंगे क्योंकि जगह नहीं बची है।सारे पर्वत भर गये हैं।

वह अन्दर गया, पर्वत था अनन्त, कई हिमालय समा जायें उसकी उपचोटियों में, पर उस पर इंच भर जगह भी नहीं बची थी। उसने तो सोचा था अनंत काल में एकाध चक्रवर्ती होता है लेकिन उसे पता ही नहीं था कि कितना काल अनंत हो चुका है कि अनंतकाल में भी एक चक्रवर्ती हो तो भी पर्वत भर गया है उधर कोई जगह नहीं। वह बहुत उदास और हैरान हो गया। पहरेदार कहने लगा, आप उदास न हों। मेरे पिता भी यही काम करते थे और उनके पिता भी यही काम करते थे। हम पीढ़ी दर पीढ़ी हमेशा यही सुनते आये हैं कि जब भी दस्तखत करने पड़ते हैं, जगह मिटाकर ही करने पड़ते हैं। कभी जगह खाली नहीं मिलती।

चक्रवर्ती वापस लौटने लगा। उसने कहा, "जब नाम मिटाकर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं तो पागलपन है क्योंकि मैं कर के गया और कल कोई दूसरा मिटाकर फिर करेगा और जहाँ पहाड़ इतना बड़ा है और इतने नाम हैं, पढ़ता कौन होगा? मतलब क्या रहा? मुझे क्षमा कर दो, मैं भूल में पड़ गया हूं। बात व्यर्थ हो गयी है।" लेकिन इतने समझदार लोग कम होते हैं। पत्थर पर नाम लिखवाते हैं, मंदिर पर नाम लिखवाते हैं, स्मारक बनवाते हैं और भूल ही जाते हैं कि बिना नाम के पैदा हुये थे। नाम अपना कोई था ही नहीं। पत्थर खराब किया सो अलग, मेहनत करवायी सो अलग और विदा होते हैं तो अनाम विदा होते हैं।

नाम है बाहर के जगत से दिखने वाला भ्रम और 'मैं' है भीतर की तरफ से दिखने वाला भ्रम। 'मैं' और नाम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। नाम दीखता है बाहर की तरफ से, 'मैं' दीखता है भीतर की तरफ से और जब तक यह नाम और मैं का भ्रम शेष

रहता है तब तक वह गाँठ नहीं खुलती है जिससे प्रेम उत्पन्न होता है। तो अंतिम बात मुझे यह कहनी है कि थोड़ा खोजें, थोड़ा सुमेरु पर्वत पर जायें और देखें कि कितने हस्ताक्षर हो गये हैं। आपको भी करने हैं मिटा कर? थोड़ा पहाड़ों के किनारे जायें और उनको रेत बनते देखें। थोड़ा समुद्रों के किनारे बच्चों को दस्तखत करते देखें। चारों तरफ अपने को देखें कि हम क्या कर रहे हैं। हम कहीं रेत पर हस्ताक्षर करने में जीवन व्यय तो नहीं कर रहे हैं। और अगर ऐसा लगे तो थोड़ा खोज बीन करें, इस 'मैं' के भीतर घुसें और खोजें और खोजें। एक दिन आप पायेंगे कि 'मैं' नोबडी है। वहाँ कोई भी नहीं है। वहाँ एक गहरा सन्नाटा और शान्ति है। वहाँ कोई 'मैं' नहीं है और जिस दिन यह पता चल जाता है कि भीतर कोई 'मैं' नहीं है उसी दिन उस सबका पता चल जाता है 'जो है,' जो वस्तुतः है, जो अस्तित्व है, जो आत्मा है, जो परमात्मा है।

इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम द्वार है परमात्मा का और अहंकार द्वार है अज्ञान का। अहंकार द्वार है अंधकार का और प्रेम द्वार है प्रकाश का। यह अंतिम बात विदा होते आपसे कह देनी थी। प्रेम पर इस दिशा से थोड़ी खोज करना लेकिन वह खोज अहंकार की खोज से शुरू होगी और प्रेम की उपलब्धि पर पूरी होती है। तो इस तरफ से थोड़ा खोजना कि यह अहंकार की छाया सच में है, है यह कहीं, है कहीं अहंकार? कहीं है 'मैं'? जो आदमी इस खोज में निकलता है वह 'मैं' को नहीं पाता है लेकिन परमात्मा को पा लेता है। 'मैं' की खूंटी से जो बंधा है प्रभु के सागर में उसकी कोई यात्रा नहीं। यह अंतिम बात फिर से कहनी है, वैसे यही प्रथम भी है और अंतिम भी है।

'मैं' प्रथम है मनुष्य के जीवन का और 'मैं' ही अंतिम है। 'मैं' में ही बंधा हुआ आदमी दुख पाता है। 'मैं' से मुक्त होकर

आनन्द को उपलब्ध हो जाता है। 'मैं' के अतिरिक्त और कोई कहानी नहीं और कोई कथा नहीं। 'मैं' के अतिरिक्त और कोई सपना नहीं और 'मैं' के अतिरिक्त और कोई असत्य नहीं। तो इस 'मैं' को खोज लें, और प्रेम के द्वार खुल जायेंगे। 'मैं' की चट्टान टूट जाये तो प्रेम के झरने बहने शुरू हो जायेंगे। हृदय तब प्रेम के संगीत से भरता है और जहाँ हृदय प्रेम के संगीत से भरता है वहां फिर एक और ही यात्रा शुरू होती है जिसे शब्दों में कहना कठिन है। वह फिर जीवन के केन्द्र पर पहुंचा देती है।

आचार्य रजनीश

उपनिषदों में जिसे जीवन्मुक्त कहा गया है आचार्य रजनीश वही जीवन्मुक्त साधक और रहस्यदर्शी हैं। उनका साहित्य उनकी आत्मानुभूतियों का यथार्थ प्रतिबिम्ब है।

हिन्दी में

१	साधनापथ	३.००
२	सिंहनाद	१.५०
३	मिट्टी के दीए	३-००
४	अज्ञात की ओर	१-००
५	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	०-४०
६	प्रेम के पंख	०-७५
७	सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण	१-२५
८	क्रान्ति-बीज	३-००
९	अमृत-कण	०-६०
१०	अहिंसादर्शन	०-४०
११	मैं कौन हूँ	२-००
१२	सूर्य की उड़ान	१-००
१३	नए मनुष्य की जन्म की दिशा	०-४०
१४	संभोग से समाधि की ओर	३-५०
१५	नए संकेत	१-७५
१६	अन्तर्यात्रा	३-५०

Works in English

1	Path of Self-realization	2.25
2	Who am I	3.00
3	The Earthen Lamps	4.50
4	Wings of Love and Random Thoughts	3.50
5	Seeds of Revolutionary Thought	4.50
6	Philosophy of Non-violence	0.80